योगायोग

यो गा यो ग

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक
इलाचन्द्र जोशी

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

१

आज आषाढ का सातवाँ दिन है। अविनाश घोषाल की वर्षगाँठ। उसके जीवन का बत्तीसवाँ वर्ष आज पूरा हुआ है। सबेरे से ही बधाई के तार चले आ रहे है। और आ रहे है गुलदस्ते।

हमारी कहानी का आरंभ यही से होता है। पर आरंभ के पहले भी एक आरंभ होता है। साँझ का दीया जलाने के पहले सुबह बत्ती तैयार करनी होती है।

इस कहानी के पौराणिक युग की खोज करने पर पता चलता है कि घोषाल-वंश किसी समय सुन्दर वन की तरफ रहता था; उसके बाद वह चला आया हुगली ज़िले के नूर नगर में। ठीक बताया नही जा सकता कि बाहर से पुर्तगालियों के दबाव से उसे इस ओर आना पड़ा, या भीतर से समाज के धक्के से। जो लोग मरे मन से पुराना घर छोड़ सकते है उनमें तेजी के साथ नया घर बसाने की शक्ति भी पाई जाती है। इसीलिए घोषाल-वश के ऐतिहासिक युग के आरंभ से ही देखा जाता है कि उनके यहाँ ज़मीन-जायदाद, गाय-भैस, नौकर-चाकर की कमी कभी नही रही, और तिथि-त्योहार, उत्सव-समारोह भी धूम-धाम से मनाये जाते रहे है। आज भी उनके पुराने गाँव शेयाकुलि में प्रायः दस बीघे विस्तार वाला घोषाल-तालाब कुँई के अवगुंठन के भीतर से, पंकरुद्ध कंठ से अतीत गौरव की गवाही दे रहा है। उस तालाब पर उनका केवल नाम ही शेष रह गया है, उसके जल पर चटर्जी-वंश के जमींदारों का अधिकार है। उन्हे अपनी पैतृक महिमा को क्यों जलांजलि देनी पड़ी थी, यह जानना आवश्यक है।

घोषाल-वंश के इतिहास के मध्यम परिच्छेद से पाया जाता है कि चटर्जी-वंश के जमीदारो के साथ उनकी खटपट शुरू हो गई थी। इस बार जो झगडा हुआ वह विषय-संपत्ति को लेकर नही; वरन् देवता की पूजा को लेकर। घोषाल-वंश के लोगों ने स्पर्द्धा के साथ जो प्रतिमा गढ़ी थी, वह चटर्जी-वश वालों की प्रतिमा से दो हाथ ऊँची थी। चटर्जी-वंश वालों ने उसका जवाब दिया। रातों-रात प्रतिमा-विसर्जन के रास्ते मे बीच-बीच में उन्होंने इस नाप से तोरण बनाये,

जिनमें घोषाल-वंश वालों की प्रतिमा का सिर बार-बार टकरा जाता था। ऊँची प्रतिमा वाला दल तोरण तोड़ने दौड़ता था और नीची प्रतिमा वाला दल विपक्षियों के सिर तोड़ने दौड पड़ता था। फल यह हुआ कि देवी ने उस बार बँधे हुए राशन की अपेक्षा बहुत अधिक रक्त वसूल किया। फौजदारी का मामला चला। वह मामला रुका घोषाल-वंश के सर्वनाश के किनारे तक आकर।

आग जब बुझी तब काठ का एक टुकड़ा भी बाकी न बचा। सब-कुछ राख हो गया। चटर्जी-वंश वालों की वास्तुलक्ष्मी का मुख भी श्रीहीन हो गया। विवश होने पर संधि हो सकती है, पर उसमें शांति नहीं होती। जो पक्ष खड़ा है और जो चित पड़ा हुआ है, दोनो के ही भीतर अभी तक क्रोध उबल रहा था। चटर्जी-वंश वालों ने घोषाल-वंश वालो पर अंतिम चोट चलाई समाज के खाँडे से। उन्होंने यह अफ़वाह फैला दी कि घोषाल-वंश वाले किसी जमाने में भंगज ब्राह्मण थे, यहाँ आकर उन्होंने यह बात दबा दी है, और अब केंचुए ने काले साँप का रूप धारण कर लिया है। जिन्होंने यह कोंचा दिया उनके पास रुपये के जोर के कारण गले का भी जोर था। इसलिए स्मृतिरत्न वाले मुहल्ले मे भी इस अपकीर्ति के प्रचार में बढा-चढाकर ढोल बजाने वालों का दल जुट गया। कलंक-भंजन के लिए यथेष्ट प्रमाण तक दक्षिणा घोषाल-वंश वालों के पास उस समय नहीं था। अतएव चंडी-मंडप-विहारी समाज के अत्याचार से तग आकर उन्हे दूसरी बार जमीन-जायदाद छोड़नी पड़ी। वहाँ से रजबपुर जाकर किसी तरह बस गए।

जो लोग मारते हैं वे भूल जाते है, पर जो मार खाते है वे सहज में नहीं भूल पाते। लाठी उनके हाथ से खिसक जाती है, इसलिए वे मन-ही-मन लाठी से खेलते रहते हैं। एक लंबे अर्से तक हाथ ठंडा पड़े रहने के कारण उनके वंश में मानसिक लाठी का ज़ोर बराबर बना हुआ है। उन लोगों के घर में अभी तक सच-झूठ के मिश्रण के साथ इस प्रकार के क़िस्से जमा है कि चटर्जी-वंश वालों को किस तरह उन लोगों ने पछाड़ा था। फूँस की झोंपड़ी के भीतर, आषाढ़ की साँझ में बच्चे उन क़िस्सो को बड़ी उत्सुकता से सुनते रहते हैं। चटर्जी-वंश वालों का विख्यात दाशु सरदार जब रात में सो रहा था तब बीस-पच्चीस लठैतों ने उसे पकड़कर किस प्रकार घोषाल-वंश वालों की कचहरी में बे-मालूम ढंग से ग़ायब कर दिया था, यह किस्सा आज भी सौ वर्षों से घोषाल-वंश वालों के यहाँ सुना जाता है। पुलिस जब उस मामले की खानातलाशी के लिए आई तब घोषाल-वंश के नायब भुवन विश्वास ने सहज भाव से बताया, हाँ, वह कचहरी में अवश्य आया था—अपने काम से; मौका पाकर मैंने उसे

कुछ अपमानित भी किया है; सुना है कि इसी दुःख से वह घर-बार छोड़कर कहीं चला गया है। पर इस तरह की बात से हाकिम का संदेह नहीं गया। भुवन ने कहा, हुज़ूर, यदि इसी साल उसका पता न लगा लूँ तो मेरा नाम भुवन विश्वास नही। न जाने कहाँ से उसने दाशु के आकार-प्रकार का एक आदमी खोज निकाला। उसे भेज दिया सीधा ढाका। वहाँ उसने एक लुटिया चुराई और पुलिस में अपना नाम बताया दाशरथि मंडल। उसे एक महीने की क़ैद की सजा दी गई। जिस दिन वह जेल से छूटा उसी दिन भुवन ने मजिस्टरी में इस बात की सूचना दी कि दाशु सरदार ढाका की जेल में क़ैद है। खोज करने पर पता चला कि दाशु जेल मे अवश्य था, पर जेल के बाहर वाले मैदान में अपनी दुलाई फेंककर भाग निकला है। प्रमाण पाया गया कि वह दुलाई दाशु सरदार की ही थी। उसके बाद वह कहाँ चला गया इसकी खबर देने की जिम्मेदारी भुवन की नहीं थी।

इस प्रकार के किस्से दिवालिये वर्तमान के भूतकालीन चैक के समान है। गौरव के दिन चले गए है, इसीलिए गौरव का पुरातत्त्व एकदम खोखला होने के कारण इतनी आवाज करता है।

जो भी हो, जिस प्रकार तेल समाप्त होता है, जिस प्रकार दीया बुझता है, उसी प्रकार एक समय ऐसा भी आता है जब रात बीत जाती है। घोषाल-परिवार का सूर्योदय दिखाई दिया मधुसूदन के भाग्य के ज़ोर से।

२

मधुसूदन के पिता आनन्द घोषाल रजबपुर के आढतियों के यहाँ मुन्शी का काम करते थे। मोटे अनाज और मोटे कपड़े से उनके परिवार की गुज़र होती थी। गृहिणियों के हाथ में सीप के सस्ते कंगन होते थे, पुरुषों के गले में रक्षा-मंत्र से अभिषिक्त पीतल का कवच और बेल की गिरी से रगड़ा हुआ खूब मोटा जनेऊ रहता था। ब्राह्मण-मर्यादा का प्रमाण क्षीण होने पर जनेऊ के परिमाण में काफ़ी वृद्धि हो गई थी।

मुफस्सिल के स्कूल में मधुसूदन की पहली शिक्षा हुई थी। साथ ही अवैतनिक शिक्षा उसने प्राप्त की थी नदी के किनारे, आढ़त के प्रांगण में पाट की गाँठों के ऊपर चढ़कर। माल बेचने वालों, खरीदने वालों, और बैलगाड़ियों के गाड़ी-

वानो के बीच वह मुक्ति का अनुभव करता था, जहाँ बाजार में टीन से पटे हुए शेडों के भीतर सजी रहती है गुड़ से भरे घड़ों की कतारें, तमाखू के पत्तों की गड्डियाँ, गाँठ बँधे हुए विलायती रैपर, मिट्टी के तेल के कनस्तर, सरसों के ढेर, दाल के बोरे, बड़े-बड़े तराजू और बटखरे। वही, उन्ही सब चीज़ों के चारों ओर चक्कर लगाने मे उसे बाग मे टहलने से भी अधिक आनन्द मिलता था।

बाप ने सोचा कि लडके को कही ठिकाने से लगाया जा सकता है। किसी तरह दो-चार परीक्षाएँ पास करा लेने पर स्कूल-मास्टरी से लेकर मुख्तारगीरी और वकालत तक भद्र गृहस्थों के जो कुछ मोक्षतीर्थ है उनमे से किसी-न-किसी मे मधु अवश्य ही जमा लेगा। दूसरे तीन लड़कों की भाग्य-सीमा-रेखा गुमाश्ता-गीरी तक ही बँधी रह गई। उनमे से किसी ने तो आढ़तियों के यहाँ और किसी ने ताल्लुकेदार के दफ़्तर में कान मे कलम ठूँसकर 'शिक्षानवीस'—अथवा 'एंप्रेंटिस'—का काम शुरू कर दिया। इधर मधुसूदन आनन्द घोषाल के क्षीण सर्वस्व पर निर्भर करके कलकत्ता के एक मेस मे जाकर रहने लगा।

अध्यापकों को आशा थी कि यह लड़का परीक्षा में कालेज का नाम उजागर करेगा। पर सहसा एक दिन उसके पिता की मृत्यु हो गई। पढ़ाई की सभी पुस्तके नोटबुक सहित बेचकर मधु ने प्रतिज्ञा की कि वह कोई धंधा करेगा। छात्रो के हाथ सेकेंडहैण्ड पुस्तकें बेचकर व्यवसाय आरंभ किया गया। माँ रोने लगी। उसे बड़ी आशा थी कि परीक्षा पास करने के रास्ते से होकर लड़का भद्र श्रेणी के व्यूह के भीतर प्रवेश पा सकेगा, और उसके बाद घोषाल-वंश-दंड के अगले सिरे पर उड़ेगी क्लर्की की जय-पताका।

मधुसूदन बचपन से ही जिस प्रकार माल चुनने में पक्का था उसी प्रकार दोस्तों के चुनाव में भी वह पूरा घाघ था। इसमें वह कभी ठगा नही गया। छात्रों में उसकी घनिष्ठता सबसे अधिक थी कन्हाई गुप्त से। उसके पूर्वज बड़े-बड़े व्यापारियों के कारिन्दे रह चुके थे। उसके पिता एक प्रसिद्ध केरोसीन कंपनी के आफ़िस मे किसी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित थे।

मधुसूदन के सौभाग्य से इन्हींकी एक लडकी का विवाह तय हुआ। मधु-सूदन कमर में चादर बाँधकर पूरी शक्ति से काम पर जुट गया। छप्पर बाँधना, फूल-पत्तों से मंडप सजाना, प्रेस में जाकर सोने की स्याही में निमंत्रण-पत्र छपाना, चौकी, कार्पेट आदि किराये पर ले आना, फाटक पर खड़े रहकर अतिथियों का स्वागत करना, चिल्ला-चिल्लाकर अतिथियों को भोजन परोसना, सभी कामों में वह बड़ी तत्परता से सम्मिलित हो जाता था। इस सुयोग में उसने ऐसी विषय-बुद्धि और व्यवहार-कुशलता का परिचय दिया कि रजनी बाबू बहुत

ही प्रसन्न हो गए। वह काम-काजी आदमी को अच्छी तरह पहचानते थे। वह समझ गए कि यह लड़का उन्नति करेगा। अपनी गाँठ से रुपया 'डिपोजिट' करके मधुसूदन को उन्होंने रजबपुर की केरोसीन-एजेंसी में बिठा दिया।

सौभाग्य की दौड़ शुरू हुई। उस यात्रा-पथ में केरोसीन का डिपो न जाने कहाँ बिन्दु के आकार में पीछे पड़ा रह गया। पूँजी के खाने के मोटे-मोटे अंकों के ऊपर पाँव रखते-रखते मधुसूदन का व्यवसाय बड़ी तेज रफ्तार से आगे बढ़ता हुआ गली से सदर रास्ते मे, खुदरे से थोक मे, दुकान से आफिस मे और उद्योग-पर्व से स्वर्गारोहण-पर्व तक पहुँच गया। सभी कहने लगे, "इसीको कहते है भाग्य !" अर्थात् पूर्वजन्म के 'स्टीम' से ही इस जन्म की गाड़ी चल रही है। पर मधुसूदन स्वयं जानता था कि उसे ठगने में भाग्य के अदृष्ट चक्र ने कोई बात उठा नही रखी थी; पर चूँकि उसने स्वय कभी हिसाब में भूल नहीं की थी, इसीलिए जीवन की परीक्षा के अंक-फल में परीक्षक असफलता-सूचक चिह्न अंकित करने से चूक गया। जो लोग हिसाब की भूल से फेल होने वालों मे आगे रहते है, परीक्षक के पक्षपात पर वे ही कटाक्ष-पात किया करते है।

मधुसूदन गुरु-गंभीर प्रकृति का व्यक्ति है। इसलिए वह अपनी स्थिति के संबंध मे अधिक बातें नही किया करता। पर अन्दाज़ लगाने वाले तो जान ही जाते है कि सूखी नदी मे बाढ़ आ गई है। गृहपालित बगभूमि में ऐसी स्थिति मे मनुष्य सहज ही विवाह की चिंता करता है। जीवित-कालवर्ती संपत्ति-भोग को वशावली के पथ से होकर मृत्यु के पार सुदूर भविष्य तक प्रसारित करने की इच्छा उनमें प्रबल होती है। कन्या के भार से ग्रस्त लोग मधु को विवाह के लिए उत्साहित करने में कोई कसर नहो रखते थे। पर मधुसूदन कहता था, "पहले एक पेट अच्छी तरह से भर जाने पर ही तो दूसरे पेट का भार अपने ऊपर लिया जा सकता है।" इससे यह बात स्पष्ट समझ में आ जाती है कि मधुसूदन का हृदय चाहे कैसा क्यों न हो, पेट उसका छोटा नही है।

मधुसूदन की सतर्कता से रजबपुर मे पाट का व्यवसाय जम गया। सहसा मधुसूदन ने सबसे पहले नदी के किनारे की सारी परती ज़मीन खरीद ली। उस समय दर सस्ती थी। ईंटो के पजावे जल उठे, नेपाल से साल की बडी-बड़ी लकड़ियाँ आईं, सिलहट से चूना आया और कलकत्ता से मालगाड़ियों मे भरकर करोगेटेड लोहा आने लगा। बाजार के लोग देखकर दंग थे। वे सोचने लगे, 'यह लो ! हाथ में कुछ पूँजी इकट्ठी हो गई थी, पर उसे टिकने देने का सब्र कहाँ ! अब बदहजमी की बारी है। सारा कारोबार चौपट करने की तैयारियाँ हो रही है।'

पर मधुसूदन ने इस बार भी हिसाब मे भूल नही की थी। देखते-देखते रजबपुर मे व्यवसाय की धूम मच गई। दलाल आकर जुट गए, मारवाड़ी लोग आये, कुलियो को बुलाया गया, कलें बिठाई गई, चिमनियो से कुण्डलायित धूमकेतु आकाश में दूर-दूर तक कालिमा फैलाने लगे।

हिसाब के खाते की जाँच किये बिना ही अब मधुसूदन की महिमा दूर ही से दिख जाती है। सारे गंज का अब वह अकेला मालिक है। दीवार से घिरी हुई दुमंज़िली इमारत के फाटक पर पत्थर मे खुदा हुआ है 'मधु चक्र'। यह नाम उसके कालेज के पुराने सस्कृत-अध्यापक ने रखा है। मधुसूदन के प्रति उनके मन में अब अचानक पहले से बहुत अधिक स्नेह उमड़ आया है।

इस बार विधवा माँ ने डरते-डरते कहा, "बेटा, अब मेरे मरने के दिन आ गए। क्या बहू का मुख देख ही नहीं पाऊँगी ?"

मधु ने गभीर भाव से संक्षेप मे उत्तर दिया, "विवाह करने में भी समय नष्ट होता है और विवाह करके भी वही परिणाम निकलता है। मुझे इन सब बातों के लिए फ़ुरसत कहाँ है ?"

पीछे पड़ जाय, इतना साहस उसकी माँ में नहीं है। और फिर समय की भी तो बाज़ार-दर है। सभी जानते है कि मधुसूदन अपनी बात का पक्का है।

कुछ समय और बीता। उन्नति के ज्वार के धक्के से कारोबार का आफ़िस मुफस्सिल से कलकत्ता आ पहुँचा। पोते-पोतियो का मुख देखने के सुख की कल्पना से निराश होकर माँ परलोक चली गईं। घोषाल-कंपनी का नाम आज देश-विदेश में फैल चुका है। उसका व्यवसाय मूल विलायती कंपनी के साथ-साथ समान पग रखता हुआ आगे बढ़ा चला जा रहा है। उसके प्रत्येक विभाग में एक-एक अंगरेज़ मैनेजर नियुक्त है।

इस बार मधुसूदन ने स्वयं कहा, 'विवाह के लिए फ़ुरसत हो गई है।' कन्या के बाज़ार में उसका क्रेडिट उस समय सबसे ऊँचे पर था। अत्यंत अभिमानी घर के भी मान-भंजन की क्षमता उसमें थी। चारो ओर से अनेक कुलवती, गुण-वती, रूपवती, धनवती और विद्यावती कुमारियों की खबर उसके पास तक पहुँचती रहती थी। उसने आँख नचाते हुए कहा, "मुझे चटर्जी-वश की लड़की चाहिए।"

चोट खाया हुआ वंश चोट खाये हुए भेड़िये की तरह होता है—बड़ा ही भयंकर।

३

अब कन्या-पक्ष का हाल सुनिये।

नूरनगर के चटर्जी-वंश की स्थिति इस समय अच्छी नहीं है। ऐश्वर्य का बाँध टूट गया है। छै आने वाले हिस्सेदार संपत्ति का बटवारा करके चले गए, अब वे बाहर से लाठी हाथ में लेकर दस आना जमीन की सीमा पर हाथ साफ़ कर रहे है। इसके अतिरिक्त राधाकांत जी के मंदिर और उससे संबधित ज़मीन के प्रबंध के अधिकार को लेकर दस और छै के अनुपात में सूक्ष्म भाग की जो चेष्टा चल रही थी उसका फल यह देखने में आया कि उस देवोत्तर सम्पत्ति का अन्य भाग वकीलों और मुख्तारों के आँगनो में बिखर गया। उनके मुंशी भी उस लाभ से वंचित न रहे। नूरनगर मे वह पुराना प्रताप अब नहीं रह गया—आय बहुत कम हो गई और व्यय चौगुना बढ़ गया। नौ रुपये सैकड़ा की दर से ब्याज के नौ पाँव वाले मकड़े ने ज़मींदारी के चारों ओर जाल बुनना शुरू कर दिया है।

परिवार में दो भाई है और पाँच बहनें। कन्याधिक्य के अपराध का जुर्माना अभी तक नहीं चुकाया जा सका। चार बहनों का विवाह पिता की जीविता-वस्था में ही कुलीन घरों में हो गया था। इस कुल के धन की बिसात वर्तमान युग की है, पर ख्याति पुराने युग की है। इन्हे जमाइयो को जो दहेज़ चुकाना पड़ा वह कौलीन्य की लंबी कीमत और खोखली ख्याति के बड़े पैमाने के हिसाब से। इसीलिए नौ प्रतिशत ब्याज वाले सूत की ऋण-रूपी फाँस मे बारह प्रतिशत की गाँठ पड़ गई। छोटे भाई ने सिर पटकते हुए कहा, "विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करके लौटना चाहता हूँ। रोज़गार के बिना काम नहीं चलेगा।" वह तो चला गया विलायत और परिवार का भार पड़ा बड़े भाई विप्रदास के कंधे पर।

ऐसे समय पूर्वोक्त घोषाल-वंश और चटर्जी-वंश के भाग्य की पतंगों के बीच फिर एक बार पेच लड़ गया। इतिहास इस प्रकार है :

बड़ा बाज़ार के तनसुखदास हलवाई की इन्हें एक मोटी रकम चुकानी थी। नियमित रूप से ये लोग सूद देते चले आ रहे थे। कभी कोई बात नहीं उठी। ऐसे समय पूजा की छुट्टियों में विप्रदास का सहपाठी अमूल्यधन आया आत्मीयता दिखाने। वह था बडे एटार्नी आफ़िस का आर्टिकल्ड हेड क्लर्क। इस चश्माधारी युवक ने नूरनगर की स्थिति कनखियों से झाँककर मालूम कर ली। उसके कलकत्ता

लौटते ही तनसुखदास ने रुपयों के लिए तकाजा शुरू कर दिया। बोला, "मैंने चीनी का नया कारोबार खोल दिया है, रुपये की बड़ी आवश्यकता है।"

विप्रदास सिर पर हाथ रखकर बैठ गया।

इसी संकट-काल में चटर्जी और घोषाल इन दो नामों के बीच दुबारा द्वन्द्व-समास घट गया। इसके पहले ही मधुसूदन 'सरकार बहादुर' से 'रायबहादुर' का खिताब पा चुका था। पूर्वोक्त छात्र-बंधु ने आकर कहा, 'इस समय नये राजा का मिजाज अच्छा है, इस समय उससे सुविधानुसार रुपया उधार मिल सकता है।' और उधार मिल गया—चटर्जी-परिवार की सभी फुटकर देनदारियाँ एक तरफ करके ग्यारह लाख रुपया सात प्रतिशत सूद पर। विप्रदास ने आराम की एक लंबी साँस ली।

कुमुदिनी चटर्जी-परिवार की अंतिम अविवाहिता बहन थी, साथ ही उनका पैतृक सम्बन्ध भी अब अंतिम स्थिति में था। दहेज जुटाने और पात्र जुटाने की कल्पना भी आतंक उत्पन्न करती थी। देखने में कुमुदिनी सुन्दरी थी। लंबा कद, इकहरा शरीर। मानो रजनीगंधा का पुष्पदंड हो। आँखें बड़ी न होने पर भी गाढ़ी काली थीं। और नाक की रेखा एकदम निर्दोष थी—लगता था, जैसे फूल की पंखुड़ी से उसका निर्माण हुआ हो। रंग उसका शंख की तरह चिकना और गोरा था। दोनों हाथ सुगढ़ और कोमल थे। उन हाथों की सेवा पाना कमला का वरदान है—उसे कृतज्ञ होकर ग्रहण करना होता है। उसके मुख पर वेदना-मिश्रित सकरुण धैर्य का भाव सब समय छाया रहता था।

कुमुदिनी अपने ही कारण स्वयं संकुचित रहती है। उसके मन में यह विश्वास जम चुका है कि वह अभागिनी है। वह जानती है कि पुरुष अपनी शक्ति से परिवार को चलाते है और स्त्रियाँ लक्ष्मी को घर में लाती है अपने भाग्य के ज़ोर से। उसके द्वारा यह न हो सका। जब से उसकी उम्र समझने योग्य हुई तब से वह अपने चारों ओर दुर्भाग्य की पाप-दृष्टि देखती चली आ रही है। इसके अतिरिक्त परिवार पर जगद्दल पत्थर के भार की तरह पडी हुई है उसकी वह अविवाहित स्थिति। इस स्थिति में दुःख जितना बड़ा है, उतना ही बड़ा अपमान भी है। कोई उपाय नही—सिर पीटने के सिवा। विधाता ने स्त्रियो को उपाय खोज निकालने का रास्ता दिया ही नही, दी केवल पीड़ा पाने और सहने की शक्ति। क्या कभी कुछ असंभव नहीं घट सकता? किसी देवता का वर, किसी यक्ष द्वारा रक्षित गुप्त धन, पूर्वजन्म के किसी शेष पावने का एक मुहूर्त्त में भुगतान? कभी-कभी वह रात में पलंग से उठकर बाग़ में मर्मर शब्द करने वाले झाऊ के पेड़ों की चोटियों की ओर एकटक देखती हुई

मन-ही-मन बोल उठती है, 'कहाँ हो मेरे राजपुत्र ? कहाँ है तुम्हारा सात राजाओं वाला धन ? मेरे भाइयो को बचाओ ! मै चिरकाल तक तुम्हारी दासी बनकर रहूँगी ।'

वंश की दुर्गति के लिए वह जितना ही अपने को अपराधी ठहराती है, उतना ही अधिक वह अपने हृदय का सुधा-पात्र उँडेलकर भाइयों को स्नेह देती है । उसका वह स्नेह कठिन दुःख से निचोडा हुआ है । उसके भाई भी, यह सोचकर कि वे कुमू के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं, बड़ी व्यथा के साथ उसे स्नेह के घेरे मे बाँधे रहते है । इस मातृ-पितृ-हीना को ऊपर वाले ने जिस स्नेह की प्राप्ति से वंचित रखा है, उसके भाई भी उसकी पूर्ति के लिए सदा उत्सुक रहते है । वह तो चंदा की चाँदनी का एक टुकड़ा है, जिसने अकेले दैन्य के समस्त अंधकार को मधुर बना रखा है । जब वह बीच-बीच में अपने को दुर्भाग्य का वाहन मानकर धिक्कारने लगती है तब विप्रदास हँसता हुआ बोलता है, 'कुमू, तू स्वयं ही तो हम लोगों का सौभाग्य है—यदि तुझे हमने न पाया होता तो घर में श्री रहती कहाँ ?'

कुमुदिनी ने घर ही पर लिखना-पढ़ना सीखा है। बाहर का परिचय उसे नहीं के बराबर है । पुराने और नये, दो युगो के प्रकाश तथा अंधकार के बीच उसका वास है । उसका संसार छायामय है—वहाँ राज करती है सिद्धेश्वरी, गंधेश्वर, घेटू, षष्ठी आदि ग्राम्य देवियाँ ; उस दुनिया में विशेष-विशेष दिनो में चंद्रमा देखना पाप है ; वहाँ शंख बजाकर ग्रहण की कुदृष्टि भगाई जाती है ; एक विशेष मुहूर्त्त (अंबुवाची) मे दूध पीने से साँप का भय दूर होता है ; वहाँ मंत्र पढ़े जाते हैं, बकरा बलि देने की मानता मानी जाती है, सुपारी, शुद्ध चावल और पाँच पैसे से देवता को मनाया जाता है । उस जगत् का कारोबार शुभ और अशुभ को लेकर है ; स्वस्त्ययन के जोर से वहाँ भाग्य-संशोधन की आशा की जाती है—ऐसी आशा, जो हजार बार व्यर्थ सिद्ध होती है । प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अधिकतर शुभ लग्न की शाखा में शुभ फल नहीं फलता, तथापि यथार्थ मे यह शक्ति नही है कि प्रमाण द्वारा स्वप्न का मोह भंग कर सके । स्वप्न-लोक में विचार नही चलता । वहाँ केवल मानते जाना होता है । इस संसार में दैव के क्षेत्र में युक्ति की सुसंगति, बुद्धि का कर्तृत्व, और अच्छे-बुरे का विचार न होने के कारण ही कुमुदिनी के मुख पर सब समय एक दीन करुणा छाई रहती है । वह जानती है कि बिना अपराध किये ही वह लांछित है । आठ बरस पहले उस लांछना को उसने एकांत रूप से अपनी ही मान लिया था—यह उसके पिता की मृत्यु के समय की बात है ।

४

पुराने धनी परिवार मे पुरातन काल जिस दुर्ग में वास करता है उसकी बनावट बहुत पक्की होती है। अनेक ड्योढियाँ पार करने के बाद नया युग वहाँ प्रवेश पा सकता है। जो लोग वहाँ निवास करते है, वे नये युग में पहुँचने में काफी 'लेट' हो जाते है। यही कारण था कि विप्रदास के पिता मुकुन्दलाल दौड़ते हुए नूतन युग को पकड नही पाए।

उनका कद लंबा और रंग गोरा था। बाल काक-पक्ष की तरह बड़े और घुँघराले थे। उनकी बड़ी-बड़ी तनी हुई आँखो मे अदम्य प्रभुत्व की दृष्टि थी। भारी गले से वह जब किसी को पुकारते थे तब नौकर-चाकरो का हृदय थर-थर काँप उठता था। वह एक पहलवान नियुक्त करके नियमित रूप से कुश्ती लड़ा करते थे, शरीर मे शक्ति की भी कमी नही थी, फिर भी सुकुमार देह में श्रम के चिह्न का लेश भी नही दिखाई देता था। वह मलमल का सफ़ेद, चिट्टा और चुन्नटदार कुर्ता और फरासडांगा या ढाका की धोती पहनते थे। जब वह चलते थे तब दूर ही से उनके कपड़ों से इस्तंबूल के इत्र की सुगंध उड़ती रहती थी। पानो से भरा हुआ सोने का डिब्बा हाथ में लेकर खानसामा उनके पीछे-पीछे चलता था। दरवाज़े के पास तमगा लगाये हुए अर्दली सब समय हाज़िर रहता था। सदर दरवाज़े पर बूढा चद्रभान जमादार सुरती मलने और भाँग घोटने से अवकाश पाकर जब बेंच पर बैठता था तब अपनी लंबी दाढी को दो भागों में बाँटकर, बार-बार उमेठकर दोनों कानो के ऊपर बाँध देता था। निचली कोर्ट के दरबान तलवार हाथ में लेकर पहरा देते रहते थे। ड्योढ़ी की दीवार पर लटकती थीं बाँकी तलवारे, नाना प्रकार की ढाले, पुराने ज़माने की बंदूक, बल्लम और बरछियाँ।

बैठकखाने में मुकुन्दलाल बैठते थे गद्दी के ऊपर, पीठ पीछे एक तकिया रहता था। पारिषद् लोग नीचे बैठते थे। दाएँ-बाएँ दोनों ओर खड़े हुक्काबरदार जानते थे कि उन दरबारियों में से किसके सम्मान की रक्षा किस प्रकार के हुक्के से होती है—बँधे हुए हुक्के से, बिना बँधे हुक्के से या नारियल वाली गुड़गुड़ी से। कर्ता महाराज के लिए बहुत बडे आकार का हुक्का पेश किया जाता था, जो गुलाब-जल से सुगंधित रहता था।

मकान के एक और हिस्से में विलायती बैठकख़ाना था, जहाँ अठारहवीं शती का असबाब भरा पड़ा था। सामने ही एक बहुत बड़ा शीशा था, जिसके

सुनहरे फ्रेम के दोनो ओर पंख वाली परी-मूर्तियों के हाथो में बत्तीदान रखे हुए थे। नीचे टेबिल पर सोने के जल से चित्रित काले पत्थर की एक घड़ी रखी थी और अनेक विलायती खिलौने, जो शीशे के बने हुए थे, रखे थे। खड़ी पीठ वाली चौकी, सोफा, ऊपर से लटकता हुआ झाड़-लैंप—सभी हालैंड के कपडे से ढके थे। दीवार पर पूर्वजों के आयल-पेण्टिग और उनके साथ वंश के मुरब्बी दो-एक राजपुरुषो के चित्र। विलायती कार्पेट से सारा फ़र्श ढका था, जिसमें गाढे रंग के मोटे-मोटे फूल कढ़े हुए थे। विशेष-विशेष अवसरों पर, ज़िले के अंगरेज़ अधिकारियों के निमत्रण के उपलक्ष्य में इस कमरे का घूँघट हटता था। सारे मकान में यही एक-मात्र आधुनिक कमरा था, पर देखने पर लगता था, जैसे यही सबसे पुराना और भुतहा आधुनिक कमरा था, जो अव्यवहार के कारण रुद्ध गंध की घुटन से भरा हुआ, दैनिक जीवन-यात्रा के सम्पर्क से वचित और गूँगा था।

मुकुन्दलाल की जो शौकीनी थी वह उस युग के शिष्टाचार का एक अत्यावश्यक अंग थी। उसके लिए जो बेधड़क रुपया खर्च किया जाता था, उसीसे धन की मर्यादा रक्षित थी। अर्थात् उससे यह बात स्पष्ट होती थी कि धन बोझ बनकर सिर पर नहीं चढ़ पाया, पादपीठ बनकर पाँवों के तले पड़ा रहा। उनकी शौकीनी के आम दरबार में दान-दाक्षिण्य और खास दरबार मे भोग-विलास—दोनो ही मुक्त रूप में चलते थे। एक ओर जहाँ आश्रितों के प्रति वात्सल्य अकृपण रूप से चलता था वहीं दूसरी ओर औद्धत्य-दमन में अदमनीय अधैर्य का परिचय मिलता था। किसी एक आकस्मिक रूप से धनी पड़ोसी ने गंभीर अपराध मे कर्ता के माली के लड़के का कान थोड़ा-सा उमेठ दिया था। उस धनी को इस धृष्टता के लिए सबक सिखाने में जितना रुपया खर्च हुआ था, आज उतना रुपया कोई अपने लडके को कालेज की शिक्षा दिलाने में भी नहीं लगाता। साथ ही माली के लड़के की भी उपेक्षा नहीं की गई। चाबुकों की मार से उसे बिस्तर पर पड़े रहने को मजबूर कर दिया गया था। क्षणिक क्रोध के आवेश में उस पर चाबुक की मार अधिक मात्रा में पड़ी थी, इस कारण उसे उन्नति का सुयोग मिल गया। सरकारी ख़र्च में उसके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था कर दी गई, जिसके फलस्वरूप वह आज मुख्तारी करता है।

पुराने जमाने के धनियों की प्रथा के अनुसार मुकुन्दलाल का जीवन दुमहला था। एक महल में गार्हस्थ्य-जीवन चलता था और दूसरे महल में राग-रंग। अर्थात् एक महल मे दश कर्म चलते थे और दूसरे महल में एकादश अकर्म। घर में हैं इष्टदेवता और घर की गृहिणी। वहाँ होती थी पूजा-अर्चना और अतिथि-सेवा। वहाँ तीज-त्योहार मनाये जाते थे, व्रत-उत्सव होते थे, कंगालों को

अन्न-दान किया जाता था और ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। वहाँ गुरु-पुरोहित और टोले-मुहल्ले के लोगों से संपर्क रहता था। और राग-रंग वाला महल घर की सीमा के बाहर था। वहाँ नवाबी युग का मजलिसी समारोह सरगर्म रहता था। वहाँ आना-जाना होता था प्रत्यंत-पुरवासिनियो का, जिनके संसर्ग को उस युग के धनी सामाजिक शिक्षा-दीक्षा का एक अंग समझते थे। इन दो कक्षो के दो परस्पर-विरोधी ग्रह-उपग्रहों को लेकर तत्कालीन गृहिणियो को बहुत-कुछ सहना पडता था।

मुकुन्दलाल की स्त्री नंदरानी बड़ी अभिमानिनी थी। यह सब सहन करने का अभ्यास उन्हें था। उसका कारण था। वह यह निश्चित रूप से जानती थी कि बाहर की ओर उनके पति की तान की दौड चाहे कितनी ही दूर तक क्यों न हो, टेक वही है, और भीतर का खिचाव उन्हीकी ओर है। इसीलिए जब उनके पति अपने प्रेम के प्रति स्वयं ही अन्याय करते थे, तब वह उन्हें सहन नही होता था। इस बार भी यही हुआ।

५

रास के अवसर पर धूम मच गई। कुछ तो कलकत्ता से और कुछ ढाका से आमोद का सरंजाम आया। घर के आँगन मे कभी कृष्ण-यात्रा होती थी और कभी कीर्तन। वहाँ स्त्रियों और टोले-मुहल्ले के साधारण लोगों की भीड़ लगी रहती थी। साधारणतः तामसिक आयोजन होता था बैठकखाने में। अंत.पुरिकाएँ रात में उनीदी आँखो से, हृदय में पीड़ा की फाँस लिये, दरवाज़े के छिद्रों से होकर उस राग-रंग का कुछ-कुछ आभास पा सकती थी। पर इस बार कर्ता को यह धुन सवार हुई कि बाई-नाच की व्यवस्था होगी नदी के ऊपर बजरे में।

क्या हो रहा है, यह देखने का उपाय न होने से नंदरानी का मन रुँधी हुई वाणी के अधकार मे छटपटाता हुआ रोने लगा। इस सबके बावजूद घर के काम-काज—लोगों को खिलाना-पिलाना, देखना-सुनना, यह सब ऊपर से प्रसन्न भाव से ही करना पड़ता था। हृदय के भीतर का जो काँटा हिलते-डुलते सब समय गड़ता ही रहता था उसकी प्राणघाती पीड़ा बाहर से कोई जान नही पाता था। उधर से रह-रहकर तृप्त कंठो की यह आवाज़ कानों में आती रहती थी, 'जय हो रानी माँ की!'

अंत में उत्सव की मियाद समाप्त हुई और सारा घर खाली हो गया। केवल केले के फटे पत्तों और सकोरों और कुल्हड़ों के भग्नावशेषों पर कौवों और कुत्तो का कलरव-मुखर उत्तरकांड चलने लगा। फर्राशों ने सीढ़ियाँ लगाकर भाड़ खोल लिये, शामियाने उतार दिये, भाड़ के टुकडे, अवशिष्ट मोमबत्तियाँ और नकली फूलो के भालरों को लेकर टोले के लड़के आपस में छीना-भपटी करने लगे। उस भीड़ के बीच से चाँटों की आवाज़ और रोने-चीखने का शब्द तार-स्वर में आतिशबाज़ी के राकेट की तरह जैसे आकाश को चीर रहा था। अंत:पुर के आँगन से शेष बचे हुए जूठे भात और तरकारी की अम्ल-गंध से सारी हवा गधा रही थी। वहाँ सर्वत्र क्लांति, अवसाद और मलिनता दिखाई देती थी। यह शून्यता तब और अधिक असह्य हो उठी जब मुकुन्दलाल आज भी न लौटे। पहुँच न होने के कारण नंदरानी के धैर्य का बाँध फटकर सहसा टूक-टूक हो गया।

दीवान जी को बुलाकर वे पर्दे की ओट से बोली, "कर्ता से कह दीजियेगा, वृन्दावन मे अपनी माँ के पास मुझे अभी जाना है। उनकी तबीयत ठीक नही है।"

दीवान जी कुछ समय तक गंजे सिर पर हाथ फेरते रहे। उसके बाद धीमी आवाज में बोले, माँ जी, कर्ता को बतलाकर जाना ठीक रहता। खबर मिली है कि आज या कल तक घर लौट आयँगे।"

"नही, मुझे देर हो जायगी।"

नंदरानी को भी यह समाचार पहले मिल चुका है कि कर्ता आज या कल तक लौट आयँगे। इसीलिए उन्हे जाने की इतनी जल्दी पड़ी है। वह निश्चित रूप से जानती है कि तनिक रोने-धोने और अनुनय-विनय से सारा झगड़ा चुक जायगा। हर बार ऐसा ही होता रहा है। उपयुक्त दंड असमाप्त ही रह जाता है। पर इस बार इस तरह से काम नहीं चलेगा। इसीलिए दंड की व्यवस्था पहले ही से करके दंडदाता को भागना पड़ रहा है। विदा होने के ठीक एक क्षण पहले पाँव रुक गए। पलंग पर पछाड खाकर फफक-फफककर रोने लगीं। फिर भी जाना नही रुका।

कार्तिक का महीना था, दिन के प्रायः दो बजे थे। धूप तेज़ थी। रास्ते के किनारे वाले पेड़ों की मर्मर-ध्वनि के साथ मिलकर बीच-बीच में फटे गले से निकली हुई कोयल की कूक सुनाई देती थी। जिस रास्ते से होकर पालकी चली जा रही थी वहाँ से कच्चे धान के खेतों के उस पार नदी दिखाई देती थी। नंदरानी रह न सकीं। पालकी का दरवाजा खोलकर उस ओर देखने लगीं।

उस पार बजरा बँधा था। मस्तूल के ऊपर झंडा उड रहा था। दूर से लगा, जैसे बजरे की छत के ऊपर चिर-परिचित गोपी हरकारा बैठा है। उसकी पगड़ी के तमगे पर सूरज का प्रकाश चकमक-चकमक कर रहा है। तत्काल नंदरानी ने पूरे जोरों से पालकी का दरवाजा बंद कर दिया। उनका हृदय जैसे पत्थर बन गया।

६

मुकुंदलाल तूफान के धक्के से टूटे हुए मस्तूल और फटे पाल वाले जहाज की तरह सकोच के साथ बंदरगाह मे आ भिडे। अपराध के बोझ से उनका हृदय भारी था। राग-रंग की स्मृति ने अतिभोजन के बाद बची हुई जूठन की तरह मन को अरुचि से भर दिया था। जो लोग उस राग-रंग के उत्साहदाता और संयोजक थे, यदि वे उस समय उनके सामने होते तो चाबुकों की मार से उनकी मरम्मत कर डालते। मन-ही-मन वह यह प्रतिज्ञा कर रहे थे कि अब फिर कभी ऐसा नहीं होने देंगे। उनके बिखरे हुए बाल, लाल आँखे और सूखा हुआ मुँह देखकर किसी को उन्हें गृहिणी का समाचार देने का साहस नही हुआ। मुकुंदलाल डरते हुए अंतःपुर गये। "बड़ी बहू, माफ करो, मैंने अपराध किया है, अब आगे कभी ऐसा नहीं होगा", यह बात मन-ही-मन रटते हुए सोने के कमरे के दरवाजे के निकट कुछ रुककर धीरे-धीरे भीतर घुसे। मन-ही-मन वह निश्चित रूप से यह समझे बैठे थे कि अभिमानिनी पलंग पर लेटी होंगी। जाते ही उनके पाँव पकड़ लेंगे, यह सोचकर जब उन्होंने भीतर पाँव रखा तब देखा कि कमरा सूना पड़ा है। दिल बैठ गया। यदि सोने के कमरे में नंदरानी को लेटा हुआ पाते, तो समझ जाते कि अपराध क्षमा करने के लिए मानिनी आधे रास्ते तक आगे बढ चुकी है। पर जब उन्होंने देखा कि बड़ी बहू उस कमरे मे नहीं है, तब वह समझ गए कि उनका प्रायश्चित्त लंबा और कठिन होगा। संभवतः आज रात तक प्रतीक्षा करनी पड़े, या उससे भी अधिक देर हो सकती है। पर इतनी देर तक धैर्य धारण किये रहना उनके लिए असंभव था। उन्होंने सोचा कि संपूर्ण दंड तत्काल सिर-माथे स्वीकार करके क्षमा प्राप्त करेंगे, नहीं तो पानी तक नहीं पियेंगे। इतनी देर हो गई, अभी तक उन्होंने स्नान-भोजन नहीं किया है, यह देखकर क्या साध्वी स्थिर रह सकेंगी ? सोने के कमरे से

बाहर निकलते ही उन्होंने देखा, प्यारी नाम की दासी बरामदे के एक कोने में घूँघट निकाले खड़ी है। उससे पूछा, "तुम्हारी बड़ी बहू-माँ कहाँ हैं ?"

उसने उत्तर दिया, "वह अपनी माँ को देखने परसों वृन्दावन चली गई है।"

मुकुंदलाल जैसे ठीक से कुछ समझ न पाए। रुँधे हुए गले से बोले, "कहाँ गई है ?"

"वृन्दावन। उनकी माँ बीमार हैं।"

मुकुंदलाल बरामदे का जंगला पकड़कर खड़े रह गए। उसके बाद तेज कदम रखते हुए बाहर बैठकखाने में अकेले बैठे रहे। एक भी शब्द न बोले। किसी को उनके पास तक फटकने का साहस नहीं होता था।

दीवान जी आकर डरते हुए बोले, "माँ जी को वापस बुलाने के लिए आदमी भेज दूँ ?"

मुकुंदलाल कुछ बोले नहीं, केवल उँगली हिलाकर मना कर दिया। दीवान जी के चले जाने पर राधू खानसामा को पुकारकर बोले, "ब्रांडी ले आओ !"

सारे घर के लोग हतबुद्धि होकर देखते रह गए। भूकंप जब पृथ्वी के गहन गर्भ से सिर हिलाता हुआ उठ खड़ा होता है तब उसे दबाने की चेष्टा व्यर्थ सिद्ध होती है। निरुपाय होकर उसकी तोड़-फोड़ की कार्रवाइयाँ चुपचाप सहन करनी पड़ती है। यह भी ठीक वैसा ही था।

दिन-रात निर्जला ब्रांडी चलने लगी। खाना-वाना प्रायः नहीं के बराबर था। शरीर पहले ही से खिन्न और अवसन्न था, तिस पर जब यह प्रचंड अनियम चलने लगा तब विकार के साथ रक्त-वमन की नौबत आ गई।

कलकत्ता से डॉक्टर आया—उसने दिन-रात सिर को बरफ़ से दबाकर रखा। मुकुंदलाल जिसे भी देखते, बुरी तरह बिगड़ उठते। उनके मन में यह विश्वास जम गया था कि उनके विरुद्ध घर के सभी लोग षड्यंत्र रचे हुए है। उनके भीतर-ही-भीतर यह शिकायत गुहार मार रही थी कि इन लोगों ने गृहिणी को जाने क्यों दिया ?

एक-मात्र व्यक्ति, जिसे उनके पास जाने का साहस था, वह थी कुमुदिनी। वह आकर उनकी बगल में बैठ जाती थी; मुकुंदलाल विह्वल भाव से उसकी ओर देखते रह जाते थे—जैसे उसकी आँखों में या और कहीं उसकी माँ की समानता उन्हें मिल जाती थी। कभी-कभी उसका मुख अपने हृदय से लगाकर, आँखें मूँदे हुए चुप लेटे रहते, आँखों के कोयों से आँसू बहते रहते, पर कभी भूलकर

भी उसकी माँ की चर्चा न चलाते। इधर वृन्दावन को तार भेजा जा चुका गृहिणी दूसरे ही दिन लौटने वाली थीं। पर सुनने में आया कि कही किसी पर रेल की लाइन ही टूट गई है।

७

उस दिन तृतीया थी। साँझ के समय आँधी आ गई। बाग में पेड़ो डालें तड-तड करके टूट-टूट पड़ती थी। रह-रहकर हवा-पानी का झोंका अधैर्य की तरह बरस पड़ता था। लोगों को खिलाने के लिए जो शेड ब उनकी करोगेटेड लोहे की छते उड़-उडकर तालाब मे गिरने लगी। वह बाग बाघ की तरह गरजती, कराहती और आकाश मे पूँछ फटकारती हुई चक्क रही थीं। सहसा हवा के एक धक्के से खिड़कियाँ और दरवाजे खडखडाते काँप उठे। मुकुदलाल ने कुमुदिनी का हाथ दबाते हुए कहा, "बेटी कुमू, की कोई बात नही है—तूने तो कोई अपराध नही किया है। पर सुन रह दाँतो के पीसने की आवाज़? वे मुझे मारने आये है।"

कुमुदिनी पिता के सिर को बरफ़ की पोटली से सहलाती हुई बोली, ' मारेंगे क्यो? आँधी है, अभी-अभी थम जायगी।"

"वृन्दावन? वृन्दावन…चंद्र…चक्रवर्ती! पिता जी के जमाने का हित—वह तो मर चुका है—भूत हो गया है वृन्दावन मे। किसने कहा आयगा?"

"पिता जी, बोलिये मत, तनिक सो जाइये!"

"वह सुनो, किससे कह रहे हैं—खबरदार! खबरदार!"

"वह कुछ नहीं है। हवा का झोंका पेड़ों को झकझोर रहा है।"

"क्यो, किस बात पर उसे क्रोध आया? तू ही बता बेटी, क्या मैंने बड़ा अपराध किया है?"

"नहीं पिता जी, आपने कोई अपराध नहीं किया। तनिक सो जाइए

"बिन्दा दूती? मधु अधिकारी किया करता था उसका अभिनय।

झूठ-मूठ क्यों करते निन्दा,
ओहो बिन्दा श्री गोविन्दा—"

आँखें मूँदकर गुन-गुना कर गाने लगे।

"मुरली बाज रही मधुवन मे,
सखि, मै धीर धरूँ कैसे मन में !

राधू, ब्रांडी ले आओ !"

कुमुदिनी पिता के मुख की ओर झुककर बोली, "पिताजी, यह क्या कह रहे हो ?" मुकुंदलाल उसकी ओर देखते ही जीभ काटकर चुप हो गए। बुद्धि जिस समय एकदम ठिकाने पर नही थी, उस समय भी वह यह नहीं भूल पाए कि कुमुदिनी के सामने सुरा नही चल सकती।

कुछ ही देर बाद फिर गाने लगे :

"श्याम की बंसी छीनूँगी, सखि,
या वृन्दावन छोड़ूँगी !"

इस तरह के उलटे-सीधे गीतो के टुकड़े सुनकर कुमुदिनी का हृदय जैसे फटा जाता था। माँ के प्रति उनके मन में क्षोभ उत्पन्न हो रहा था और वह पिता जी के चरणों में अपना सिर रखती थी, जैसे माँ की ओर से क्षमा चाहती हो।

मुकुंद सहसा पुकार उठे—"दीवान जी !"

दीवानजी के आने पर बोले, "वह ठक्-ठक् की-सी क्या आवाज सुन रहा हूँ ?"

दीवान जी बोले, "हवा दरवाज़े को धक्का दे रही है।"

"अरे वह बुड्ढा वृन्दावनचन्द्र आया हुआ है—गंजा सिर, हाथ में लाठी, कंधे पर रेशमी चादर। तनिक देख तो आओ ! केवल ठक्-ठक्-ठक्-ठक् आवाज़ सुनी जाती है। यह लाठी की आवाज़ है या खडाऊँ की ?"

रक्त-वमन कुछ समय तक शांत था। तीन बजे रात को फिर आरंभ हो गया। मुकुंदलाल पलंग के चारों ओर हाथ फेरकर लटपटी ज़बान में बोले, "बड़ी बहू, घर में अँधेरा छा गया है। क्या अब भी बत्ती नहीं जलाओगी ?"

बजरे से लौटने के बाद मुकुदलाल ने यह पहली बार पत्नी को पुकारा—और वही अन्तिम संबोधन था।

वृन्दावन से लौटने पर नन्दरानी घर के दरवाज़े के पास आते ही मूर्च्छित होकर गिर पडी। उन्हें उठाकर किसी तरह पलंग पर लिटाया गया। संसार में अब किसी भी चीज के लिए उनमें रुचि नही रह गई थी। आँखों का पानी भी उनका एकदम सूख गया। संतान को देखकर भी उनके मन को प्रबोध नहीं होता था। गुरु ने आकर शास्त्र से श्लोक पढ़कर सुनाना आरंभ किया, पर नंदरानी मुँह फेरे रही। हाथ का लोहा उन्होंने नहीं खोजा—बोलीं, "हाथ देखने वाले

ने कहा था कि मेरा सुहाग कभी नष्ट नही होगा। यह बात क्या झूठ हो सकती है ?"

दूर के संबंध की ननद क्षेमा ने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा, "जो होना था वह तो हो चुका, अब घर की ओर देखो ! कर्ता जाने के पहले बोले थे, 'बड़ी बहू क्या घर में बत्ती नहीं जलाओगी' ?"

नंदरानी बिस्तर से उठकर किसी दूरस्थित लक्ष्य की ओर देखती हुई बोली, "जाऊँगी, मैं बत्ती जलाने जाऊँगी। अब अधिक देर न होगी।" कहते ही उनका दुबला-पीला मुख चमक उठा, जैसे हाथ में दीया लेकर अभी यात्रा करने निकल पड़ी हों।

सूर्य-देवता उत्तरायण में जा पहुँचे थे। माघ महीना आया। शुक्ला चतुर्दशी का दिन था। नंदरानी ने कपाल को सिन्दूर की खूब मोटी रेखा से सजाया और लाल रंग की बनारसी साड़ी से शरीर ढक लिया। संसार की ओर न देखकर मुख से हँसी बिखेरती हुई चली गई।

८

पिता की मृत्यु के बाद विप्रदास ने देखा, जिस पेड़ पर उन लोगों का आश्रय था उसकी जड़ कीड़ों ने चाट ली है। विषय-संपत्ति ऋण की जिस कच्ची बालू की भीत पर खड़ी है वह धीरे-धीरे डूब रही है। क्रिया-कर्म संक्षिप्त किये और रहन-सहन का स्तर नीचे उतारे बिना उपाय नहीं है। कुमू के विवाह के संबंध में भी केवल प्रश्न ही उठता है, उत्तर देने की चेष्टा करने पर मुँह बंद हो जाता है। अंत में नूरनगर से डेरा उठाना पड़ा। कलकत्ता में बाग़ बाज़ार की तरफ़ एक मकान में आकर वे लोग रहने लगे।

पुराने मकान में कुमुदिनी का एक प्राणवान परिमंडल था। चारों ओर फूल-फल, ग्वाला-घर, पूजाघर, धान के खेत और मनुष्यों का मेला था। अन्तःपुर के बाग में वह कभी फूल बीनती थी, उनसे डलिया भरती थी, नमक, मिर्च और धनिये के पत्तों के साथ कच्चे बेर मिलाकर अपथ्य करती थी, खट्टे फल तोड़ती थी और वैशाख-जेठ की आँधी में आम के बग़ीचे से आम बटोरती थी। बाग़ के पूरब की ओर ओसारी थी। वहाँ विशेष-विशेष अवसरों पर लड़कियों के कल-कोलाहल में वह भी थोड़ा-बहुत भाग लेती रहती थी। खिड़की के नीचे सिवार

से हरी और दीवार से घिरी तलैया घनी छाया से स्निग्ध लगती थी और कोयल, फाख्ता, अबाबील, श्यामा आदि पक्षियों के कलरव से मुखरित रहती थी। वहाँ प्रतिदिन वह तैरती थी, नाल-फूल बीनती थी, घाट में बैठकर स्वप्न देखती थी और अनमने भाव से अकेली बैठी हुई बिनाई करती थी। वहाँ प्रत्येक ऋतु में, हर महीने प्रकृति के उत्सव के साथ मनुष्य का एक-एक पर्व जुड़ा हुआ रहता था। अक्षय तृतीया से लेकर होली और वासंती-पूजा तक न जाने कितने पर्व मनाये जाते थे। मनुष्य ने वहाँ प्रकृति से मेल करके पूरे वर्ष को जैसे विविध प्रकार की कलात्मक बिनाई के रूप में उतार डाला है। ऐसी बात नहीं कि वहाँ सभी बातें सुन्दर और सुखकर हों। मछलियों को लेकर हिस्सा-बाँट पूजा की त्योहारी, गृहिणी का पक्षपात, बच्चों के झगड़े में अपने-अपने बच्चे का पक्ष-समर्थन आदि को लेकर नीरव ईर्ष्या या मुखर अभियोग, एकांत में पर-निंदा या मुक्त-कंठ से कलंक-घोषणा—ये सब वहाँ यथेष्ट मात्रा में वर्तमान थे। और सबसे विशेष बात थी प्रतिदिन के काम की व्यस्तता के बीच भीतर-ही-भीतर एक उद्वेग का भाव—कर्ता कब क्या कांड कर बैठें, उनकी बैठक में कब न जाने क्या उपद्रव उठ खड़ा हो, इसकी आशंका। यदि कोई ऐसा कांड खड़ा हो गया तो फिर दिन-प्रतिदिन शांति का अभाव रहता था। कुमुदिनी का हृदय धड़कता रहता था, कमरे में छिपकर माँ रोती थीं, बच्चों के मुख सूख जाते थे। इन सब शुभ-अशुभ और सुख-दुःख की घटनाओं से आन्दोलित प्रकांड संसार-यात्रा थी वह।

इस प्रकार के जीवन के बीच में से कुमुदिनी कलकत्ता आई। वह जैसे एक विशाल समुद्र था, पर कहाँ था उसमें प्यास बुझाने योग्य एक बूंद जल? गाँव में जैसे आकाश का और हवा का भी एक परिचित-सा चेहरा था। गाँव के सीमांत में कहीं घने वन थे, कहीं बालू की कछार, नदी की जल-रेखा, मंदिर की चोटी, दूर तक फैला हुआ सुनसान मैदान, जंगली झाऊ के पेड़ों के झुंड, ये सब मिलकर नाना रेखाओं तथा विविध रंगों से आकाश को एक विशेष आकाश का रूप दिये रहते थे, जो कुमुदिनी का अपना आकाश था। उसी प्रकार वहाँ सूर्य का प्रकाश भी एक विशेष प्रकाश था। तालाब में, धान के खेतों में, बेंत के कुंजों में, मछली पकड़ने वाली नाव के कत्थई रंग के पाल में, बाँस के झुरमुटों की कच्ची डालों की चिकनी पत्तियों में, कटहल के पेड़ की कोमल, महीन, घनी हरियाली में, उस पार वाले बालू-तट के फीके पीले रंग में—सबके साथ नाना प्रकार से मिलकर उस प्रकाश ने एक चिर-परिचित रूप पा लिया था। कलकत्ता के इन सब अपरिचित मकानों की छतों और दीवालों में कठिन,

अनभ्र रेखाओं के आघात से छितराकर वही चिर-दिन का आकाश और प्रकाश उसे बिराने लोगों की तरह कड़ी नजर से देखते है। यहाँ के देवताओं ने भी उसे बहिष्कृत कर दिया है।

विप्रदास उसे आराम-चौकी की ओर खींचकर कहता है, "कुमू, तुम्हारा जी कैसा है ?"

कुमुदिनी हँसती हुई बोलती है, "ठीक है, भैया !"

"म्यूज़ियम देखने चलेगी बहन ?"

"हाँ, जाऊँगी।"

इतने अधिक उत्साह के साथ वह 'जाऊँगी' कहती है कि विप्रदास यदि पुरुष न होता तो समझ जाता कि वह स्वाभाविक नही है। वास्तविकता यह थी कि म्यूजियम न जाने में ही उसकी मुक्ति थी। बाहर के लोगों की भीड के बीच में चलने का अभ्यास उसे नही है। उसे अत्यंत संकोच का अनुभव होता है। हाथ-पाँव ठंडे पड़ने लगते है और आँखे अच्छी तरह खुलती ही नहीं।

विप्रदास ने उसे शतरंज खेलना सिखाया। स्वयं वह असाधारण खिलाडी है, इसलिए कुमुदिनी के कच्चे खेल से उसका अच्छा मनोरंजन होता था। बाद में अभ्यास हो जाने पर कुमुदिनी ऐसा अच्छा खेलने लगी कि विप्रदास को सावधान होकर खेलना पड़ता था। कलकत्ता में कुमुदिनी की हमजोली की लड़कियाँ न होने से दोनों भाई-बहन जैसे दो भाइयों की तरह हो गए थे। संस्कृत-साहित्य में विप्रदास की बड़ी रुचि थी। कुमुदिनी ने एकांत मन से उससे व्याकरण सीख लिया। जब से उसने 'कुमारसंभव' पढ़ा तब से वह शिव-पूजा में वास्तविक शिव को देखने लगी—उस महा तपस्वी को; जो तपस्विनी उमा की परम तपस्या के धन हैं। कुमारी के ध्यान में उसके भावी पति उसे पवित्रता की दिव्य ज्योति से उद्भासित दिखाई देने लगे।

विप्रदास को फोटो खींचने का शौक है। कुमुदिनी ने भी उससे वह कला [illegible] ली। उन दो में से एक फोटो खींचता था और दूसरा उसे सुपरिस्फुट [illegible]ता था। बंदूक चलाने मे विप्रदास का हाथ पक्का था। जब वे किसी पर्व के उपलक्ष्य में गाँव वापस जाते तब विप्रदास पोखर में डाब, बेल का छिलका, अखरोट आदि बहाकर पिस्तौल का अभ्यास करता। कुमुदिनी को बुलाकर कहता, "आ ज़ा कुमू, तू भी चेष्टा करके देख !"

जिस किसी भी विषय में उसके भैया का जी लगता है उसे कुमुदिनी ने भी अपना लिया है। भैया से इसराज सीखने पर उसका हाथ ऐसा सध गया कि विप्रदास बोला, "मैं तुमसे हार मान गया !"

इस प्रकार बचपन से ही अपने जिस भैया की वह सबसे अधिक भक्ति करती है उसीको उसने कलकत्ता में सबसे निकट पाया। कलकत्ता आना भी उसका सार्थक ही हुआ। कुमुदिनी स्वभाव से ही अपने भीतर अकेली रहती है। पर्वत-वासिनी उमा की तरह ही वह जैसे एक कल्प-तपोवन में निवास करती है, जो मानस-सरोवर के तट पर है। उसके समान जन्म से ही अकेले मनुष्यों को आवश्यकता होती है मुक्त आकाश की, विस्तृत निर्जनता की, और उसीके बीच में एक ऐसे आदमी की जिसकी वह अपने समस्त मन से, प्राण से भक्ति कर सके। अपने निकट के संसार से यह दूरस्थ भाव लड़कियों के स्वभाव के अनुकूल न होने से वे इसे तनिक भी पसंद नहीं करती। वे इसे या तो अहंकार या हृदय-हीनता समझती है। यही कारण था कि गाँव में भी संगिनियों के साथ कुमुदिनी की घनिष्ठता न हो सकी।

पिता के जीवन-काल ही मे विप्रदास के विवाह की बात प्रायः पक्की हो गई थी। पर शरीर में हल्दी मलने की रस्म-अदायगी के दो दिन पहले ही ज्वर-विकार से कन्या की मृत्यु हो गई। तब विप्रदास की कुण्डली देखी गई। पता चला कि विवाह-स्थान मे स्थित दुर्ग्रह का भोग क्षय होने में अभी देर है। विवाह की बात दब गई। इसी बीच पिता भी चल बसे। उसके बाद सगाई के लिए अनुकूल समय विप्रदास के घर फिर नहीं आया। एक बार घटक ने दहेज़ में एक मोटी रकम मिलने की आशा दिलाई। उसका फल हुआ उल्टा। काँपते हुए हाथों से गुड़गुड़ी को दीवार के सहारे अटकाकर उस दिन घटक को तत्काल बाहर का रास्ता नापना पड़ा था।

६

विलायत से सुबोध के पत्र नियमित रूप से आया करते थे। अब बीच-बीच में नागा होने लगा था। कुमुदिनी उत्सुक भाव से डाक की प्रतीक्षा करती थी। इस बार डाक वाले ने चिट्ठी पहले उसीके हाथ में दी। उस समय विप्रदास शीशे के सामने खड़ा होकर दाढ़ी बना रहा था। कुमुदिनी दौड़ती हुई उसके पास आई और बोली, "भैया, छोटे भैया की चिट्ठी आई है।"

विप्रदास दाढ़ी बनाना छोड़कर आराम-कुर्सी पर बैठ गया और कुछ डरे हुए मन से उसने चिट्ठी खोली। जब पढ़ चुका तब उसने चिट्ठी को हाथ के

भीतर इस तरह दबोचा जैसे एक तीखी पीड़ा का अनुभव हुआ हो।

कुमुदिनी ने डरते-डरते पूछा, "छोटे भैया कहीं बीमार तो नहीं पड़ गए ?"

"नहीं, वह अच्छा ही है।"

"चिट्ठी में क्या लिखा है, बताओ न, भैया ?"

"अपनी पढ़ाई की बात लिखी है।"

इधर कुछ समय से विप्रदास कुमुदिनी को सुबोध की चिट्ठी पढ़ने को नहीं देता था। बीच-बीच में कुछ अंश पढ़कर सुना दिया करता था। इस बार उसने उतना भी नहीं सुनाया। कुमुदिनी को साहस नहीं हुआ कि पत्र को माँगकर पढ़े। उसका मन बेचैनी से छटपटाने लगा।

सुबोध प्रारंभ में हिसाब से ही ख़र्च करता था। घर की दुरवस्था की बात तब उसके मन में ताज़ी थी। अब धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों घर की शोचनीय दशा की बात भूलता जाता है उसका खर्चा भी उसी अनुपात मे बढ़ता जाता है। उसने लिखा है कि रहन-सहन का स्तर न बढ़ाने से विलायत के सामाजिक उच्च शिखर की आबोहवा तक पहुँचा नहीं जा सकता। और वहाँ तक न पहुँचने से विलायत आना ही व्यर्थ सिद्ध होता लगता है।

विप्रदास को दो-एक बार विवश होकर तार द्वारा अतिरिक्त रुपया भेजना पड़ा है। इस बार माँग आई है एक हजार पौण्ड की—लिखा है कि नितांत आवश्यकता आ पड़ी है।

विप्रदास सिर पर हाथ रखकर बोला, "इतना रुपया पाऊँगा कहाँ ?" वह सोचने लगा कि शरीर का खून पानी बनाकर कुमू के विवाह के लिए रुपया जोड़ रहा हूँ, अंत में क्या वह रुपया इसी तरह निकलता चला जायगा ? सुबोध की बैरिस्टरी से क्या लाभ, यदि कुमुदिनी का भविष्य नष्ट करके उसका दाम चुकाना पड़ा ?

उस रात विप्रदास बरामदे में टहल रहा था। उसे पता नहीं था कि कुमुदिनी की आँखों में भी नींद नहीं है। जब कुमुदिनी से सहा नहीं गया तब वह दौड़कर विप्रदास के पास आई और उसका हाथ पकड़कर बोली, "सच बताओ भैया, छोटे भैया को क्या हो गया है ? मैं तुम्हारे पैर पकड़ती हूँ, मुझसे कोई बात छिपाओ नहीं।"

विप्रदास समझ गया कि बात छिपाने से कुमुदिनी की आशंका और भी बढ़ती चली जायगी। क्षण-भर चुप रहने के बाद बोला, "सुबोध ने रुपया भेजने को लिखा है, पर अब अधिक रुपया दे सकना मेरे बूते की बात नहीं है।"

कुमुदिनी विप्रदास का हाथ पकड़कर बोली, "भैया, एक बात कहूँ, नाराज़ तो न होंगे ?"

"नाराज होने की बात होगी तो नाराज़ हुए बिना रहूँगा कैसे ?"

"नही भैया, हँसी की बात नहीं है, मेरी बात सुनो ! माँ के गहने तो सब मेरे ही लिए हैं, उन्हींसे—"

"चुप-चुप ! तेरे गहनों पर क्या हाथ डाला जा सकता है ?"

"मैं तो हाथ डाल सकती हूँ।"

"नहीं तुझे भी अधिकार नही है। रहने दे ये सब बातें। अब जाकर सो !"

कौओं की बोली और सफ़ाई की गाड़ियों की खड़खड़ाहट के साथ रात बीती और कलकत्ता की सुबह आई। दूर कही से कभी स्टीमर का और कभी तेल की कल का भोंपू बजने की आवाज़ आती थी। मकान के सामने वाले रास्ते से एक आदमी कंधे पर सीढ़ी रखकर ज्वरारि वटिका का विज्ञापन चिपकाने के चक्कर में चला जा रहा था। एक ख़ाली गाड़ी के दो बैल गाड़ीवान के दोनों हाथों की मार से उत्तेजित होकर दौड़ते हुए भागे जा रहे थे। कल से जल लेने की होड़ में एक पछाँही स्त्री के साथ एक उड़िया ब्राह्मण का विवाद चल रहा था। विप्रदास गुड़गुड़ी की नली हाथ में लिये बरामदे में बैठा था। नीचे फ़र्श पर एक संवाद-पत्र अपठित अवस्था में पड़ा था।

कुमुदिनी ने आकर कहा, "भैया, 'ना' मत कहना !"

"मेरे मत की स्वाधीनता में दख़ल देगी तू ? तेरे शासन में क्या रात को दिन और 'ना' को 'हाँ' बताना होगा ?"

"नही, तनिक सुनो—मेरे गहने ले लो और अपनी सारी चिंता मिटा दो !"

"तुझे मैं क्या यों ही बुढ़िया कहता हूँ। तेरे गहने लेकर मेरी चिंता मिट जायगी, ऐसी बात तूने सोची किस बुद्धि से ?"

"वह मैं कुछ नहीं जानती हूँ, पर तुम्हारी यह चिंता मुझसे सही नहीं जाती।"

"सोचकर ही चिंता को दूर करना होता है। उसे धोखा देकर मिटाने की चेष्टा करने से उलटा फल होता है। तनिक धीरज रख, एक उपाय करता हूँ।"

उस डाक से विप्रदास ने यह लिखकर भेज दिया कि रुपया भेजने से कुमुदिनी के दहेज़ वाली रक़म में हाथ डालना होगा, जो कि संभव नहीं है।

यथा समय उत्तर भी आ गया। सुबोध ने लिखा कि कुमुदिनी के दहेज़ के रुपये वह नहीं चाहता। पैतृक संपत्ति में उसका जो आधा हिस्सा है उसे बेचकर उसे रुपया भेजा जाय। साथ ही उसने पावर आफ़ एटर्नी भी भेज दी।

सुबोध का यह पत्र विप्रदास के हृदय में बाण की तरह बिंध गया। इतनी बड़ी निष्ठुरता से भरा पत्र सुबोध ने लिखा कैसे ? उसी क्षण उसने दीवान जी को बुलाया। पूछा, "भूषणराय करीमहाटी ताल्लुका पट्टे पर लेना चाहते थे। कितना देंगे ?"

दीवान ने कहा, "प्रायः बीस हजार रुपया मिल सकता है।"

"भूषणराय को बुलाओ, उनसे बात करना चाहता हूँ।"

विप्रदास अपने वंश का बडा लड़का है। उसके जन्म के समय उसके बाबा इस ताल्लुके को स्वतन्त्र रूप से उसीको दान कर गए थे। भूषणराय बहुत बडा महाजन था। बीस-पच्चीस लाख रुपये का कारोबार था उसका। उसका जन्म-स्थान करीमहाटी में था। इसीलिए वह बहुत दिन से करीमहाटी को हथियाने के प्रयत्न में था। अर्थ-संकट की स्थिति मे विप्रदास बीच-बीच में राजी होने को तैयार दिखाई देता था, पर प्रजा रो पड़ती थी। कहती थी, "हम भूषणराय को कभी अपना जमींदार नही मान सकेंगे।" इसी कारण प्रस्ताव बार-बार टल जाता था। इस बार विप्रदास ने मन कठोर करके निश्चय पक्का कर लिया। वह निश्चित रूप से जानता था कि सुबोध की माँग का अंत यहीं पर नही होगा। मन-ही-मन उसने कहा, "मेरे अपने ताल्लुके की सलामी का रुपया सुबोध के लिए सुरक्षित रहा। उसके बाद देखी जायगी।"

दीवान को विप्रदास के मुँह पर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। वह चुपचाप कुमुदिनी के पास गया और बोला, "दीदी, तुम्हारी बात बड़े बाबू मानते है। उन्हें मना करो, यह बड़ा अन्याय हो रहा है।"

विप्रदास को घर के सभी लोग प्यार करते है। किसी के भी लिए बड़े बाबू अपना स्वत्व खो बैठें, यह बात उन लोगों से सही नहीं जाती।

दोपहर होने को है। विप्रदास अपने उसी ताल्लुके के काग़ज़ों की छान-बीन में व्यस्त है। अभी तक उसने न स्नान किया, न भोजन। कुमुदिनी बार-बार उसे बुलाने को आदमी भेजती जा रही थी। अन्त में मुँह सुखाकर वह भीतर आया। जैसे किसी पेड के पत्तों को बिजली ने झुलस दिया हो। कुमुदिनी के हृदय में जैसे भाला बिंध गया।

स्नान-भोजन के बाद विप्रदास पलंग पर तकिए के सहारे लेटकर जब हुक्का गुड़गुड़ाने लगा तब कुमुदिनी ने उसके सिरहाने के निकट बैठकर धीरे-धीरे उसके बाल सहलाते हुए कहा, "भैया, तुम अपने ताल्लुके को पट्टे पर नहीं उठा सकते !"

"तुझ पर नवाब सिराजुदौला का भूत तो नहीं सवार हो गया ? सभी

बातों में तू जोर-जबर्दस्ती करना चाहती है ?"

"नहीं भैया, असली बात को छिपाओ मत !"

विप्रदास अपने को अधिक रोक न सका। सीधे बैठकर कुमुदिनी से सामने बैठने को कहा। रुँधे गले को साफ करने के लिए तनिक खाँसकर बोला, 'सुबोध ने क्या लिखा है, जानती है ? यह देख !"

यह कहकर उसने कुर्त्ते की जेब से सुबोध का पत्र बाहर निकाला और उसे कुमुदिनी के हाथ में दे दिया। कुमुदिनी ने पत्र पढ़कर दोनों हाथों से मुँह ढक लिया और बोली, "ओ माँ, छोटे भैया ने इस तरह का पत्र कैसे लिखा ?"

विप्रदास ने कहा, "आज जब वह अपनी संपत्ति और मेरी संपत्ति में भेद देखने लगा है, तब क्या ऐसी हालत में मै अपने ताल्लुके को अलग रख सकता हूँ ? उसके पिता आज जीवित नहीं है, तब विपत्ति के समय मै उसे नहीं दूँगा तो फिर कौन देगा ?"

इस पर कुमुदिनी फिर और कुछ बोल न सकी। चुपचाप आँसू गिराने लगी। विप्रदास भी तकिए के सहारे लेटकर चुपचाप आँखे मूँदे रहा।

काफ़ी देर तक भैया के पाँवों को सहलाते रहने के बाद कुमुदिनी बोली, "भैया, माँ का धन तो अभी माँ का ही है। उनका गहना रहते तुम क्यो..."

विप्रदास फिर एक बार उठ बैठा और बोला, "कुमू, तू यह बात अभी तक समझ नहीं पाई कि तेरा गहना लेकर यदि आज सुबोध विलायत में थियेटर, कन्सर्ट आदि देखकर उन्हें खर्च कर डाले तो क्या मैं फिर कभी उसे क्षमा कर पाऊँगा, या वही फिर कभी मेरे आगे सीधे मुँह खड़ा हो पायगा ? इतनी बड़ी सज़ा तू उसे क्यों दिलाना चाहती है ?"

कुमुदिनी चुप रह गई। कोई उपाय उसे खोजे नहीं मिलता था। और तब वह वही सोचने लगी जो अनेक बार पहले भी सोच चुकी थी—क्या कोई असम्भव चमत्कार सम्भव नहीं हो सकेगा ? आकाश का कोई ग्रह, कोई नक्षत्र एक मुहूर्त्त मे सारे संकट को दूर न कर देगा ? एक शुभ लक्षण उसे दिखाई दे रहा था। कुछ दिनों से बार-बार उसकी बाईं आँख फड़क रही थी। इसके पहले भी उसकी बाईं आँख अनेक बार फड़की थी, पर तब उस पर विचार करने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी। इस बार उस लक्षण को जैसे पकड़कर बैठ गई। मन-ही-मन मनाने लगी कि इस शुभ लक्षण का फल अवश्य फले, उसका सत्य भंग न हो !

१०

आकाश में बदली आई हुई है और बूँदा-बाँदी हो रही है। विप्रदास की तबीयत अच्छी नहीं है। वह एक पशमीना लपेटे अधलेटी अवस्था में संवाद-पत्र पढ़ रहा है। कुमुदिनी की दुलारी बिल्ली पशमीने के एक फालतू अंश पर अधिकार जमाकर गुड-मुड़ी बाँधे लेटी हुई है। विप्रदास का टेरियर कुत्ता विवश होकर उसकी स्पर्द्धा सहन करके अपने मालिक के पाँवो के नीचे लेटा हुआ बीच-बीच मे 'गों-गों' की आवाज में गुर्रा उठता है।

ऐसे समय आ पहुँचा एक नया घटक।

"नमस्कार !"

"कौन हो तुम ?"

"जी, आपके पूज्य पिताजी मुझे अच्छी तरह जानते थे (झूठ बात), आप लोग तब बच्चे थे। मेरा नाम नीलमणि घटक है। मै स्वर्गीय गगामणि घटक का पुत्र हूँ।"

"तुम्हारा प्रयोजन क्या है ?"

"एक अच्छे पात्र का पता लगा है। आप लोगो के ही घर के योग्य है।"

विप्रदास उठ बैठा। घटक ने राजाबहादुर मधुसूदन घोषाल का नाम लिया।

विप्रदास ने चकित होकर पूछा, "क्या कोई बच्चा भी है उनके ?"

घटक जीभ काटता हुआ बोला, "नही। उन्होंने विवाह ही नही किया। असीम ऐश्वर्य है उनके पास। अब उन्होने स्वयं काम देखना छोड़ दिया है, अब घर-गिरस्ती की ओर उनका ध्यान गया है।"

विप्रदास कुछ समय तक चुप बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। उसके बाद अचानक तनिक जोर से बोल उठा, "हमारे यहाँ ऐसी लड़की नहीं है जिसका मेल उसकी उम्र के साथ बैठ सके।"

पर घटक यों ही छोड़ने वाला नही था। वर के ऐश्वर्य का परिमाप कितना बड़ा है, और गवर्नर के दरबार में उनके आने-जाने का रास्ता कितना प्रशस्त है, घुमा-फिराकर इसी बात की व्याख्या वह करता रहा।

विप्रदास फिर स्तम्भित-सा होकर बैठा रहा। फिर एक बार अनावश्यक जोश के साथ बोल उठा, "उम्र का मेल नही बैठेगा।"

घटक बोला, "ज़रा सोचकर देखियेगा। दो-चार दिन बाद मै फिर एक बार आऊँगा।"

विप्रदास लंबी साँस खीचकर फिर लेट गया।

कुमुदिनी भैया के लिए गरम चाय लिये चली आ रही थी। दरवाज़े के बाहर अँगोछे के साथ एक भीगा-पुराना छाता और कीचड़ में सनी तालतला की चप्पल देखकर वह ठहर गई। उन दोनों की बातें बहुत-कुछ उसके कानों तक पहुँची। घटक उस समय कह रहा था, "राजाबहादुर इस बार वर्ष समाप्त होते-न-होते महाराज हो जायँगे, यह बात स्वयं लाटसाहब ने अपने मुँह से कही है। इसीलिए इतने दिनों बाद उन्हे विवाह की चिन्ता हुई है—महारानी का पद खाली रखने से अब काम न चलेगा। आप लोगों का ग्रहाचार्य किनू भट्टाचार्य मेरा दूर का संबंधी है। उसके साथ बैठकर लड़की की जन्म-पत्री देखी जा चुकी है। सब लक्षण ठीक मिले है। इस संबंध मे शहर की और भी बहुत-सी लड़कियों की जन्म-पत्रियाँ मैंने देखी है, पर ऐसी जन्म-पत्री और किसी की नही पाई गई। मैं कहता हूँ, आप देख लीजिएगा, यह संबंध प्राय: हुआ ही समझिए! यह प्रजापति का निर्बंध है।"

ठीक उसी समय कुमुदिनी की बाईं आँख फिर एक बार फड़क उठी। शुभ-लक्षण का क्या चमत्कार है! किनू आचार्य ने न जाने कितनी बार उसका हाथ देखकर कहा था, वह राजरानी बनेगी। हाथ की जन्म-पत्री का वह परिणत फल आज अपने-आप उसके निकट उपस्थित है। उन लोगो का कुल-ज्योतिषी कुछ दिन पहले वार्षिक अदायगी के लिए कलकत्ता आया था। वह बोल गया था कि इस बार आषाढ़ से वृष राशि को राज-सम्मान प्राप्त होगा, किसी स्त्री के माध्यम से अर्थ-लाभ होगा और होगा शत्रु-नाश। इस ग्रह का बुरा फल होगा पत्नी-पीड़ा अथवा पत्नी-वियोग। विप्रदास की वृष राशि है। बीच-बीच मे शारीरिक पीड़ा की सम्भावना भी बता गया था। उसका प्रमाण भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था—कल रात से उसे सर्दी ने पकड लिया था। आषाढ़ भी आया। पत्नी की पीड़ा अथवा मृत्यु की चिंता करने का कोई कारण नहीं था, इसलिए इस बार समय निश्चय ही अच्छा आया हुआ है, विप्रदास ने ऐसा सोचा।

कुमुदिनी भैया के निकट गई। बोली, "भैया, क्या सिर मे दर्द है?"

भैया ने कहा, "नहीं।"

"चाय तो ठंडी नही हो गई। तुम्हारे कमरे में एक आदमी बैठा हुआ था, इसलिए मै भीतर न आ सकी।"

विप्रदास ने कुमुदिनी के मुख की ओर देखकर एक लंबी साँस खींची।

भाग्य की निष्ठुरता तब सबसे अधिक असह्य हो उठती है जब वह एक ऐसा सोने का रथ लेकर आता है, जिसका पहिया अचल है। भैया के मुख पर लक्षित यह द्विधा की पीडा कुमुदिनी को बड़ा कष्ट देने लगी। वह सोचने लगी कि भैया दैव के दान को क्यो सदेह की दृष्टि से देख रहे है ? विवाह के मामले में अपनी पसद नाम का एक उपसर्ग भी है, इस पर कुमुदिनी ने कभी नही सोचा। बचपन से वह एक-एक करके अपनी चार बडी बहनों की शादियाँ देखती चली आई है। कुलीन घरो मे उनके ब्याह रचाए गए। कुल के अतिरिक्त पसंद की और कोई बात कभी नही उठी। यह सब होने पर भी वे चारों बहनें बाल-बच्चों को लेकर गिरस्ती चला रही है और उनके दिन मजे में कटते चले जा रहे है। जब कभी वे परिवार में दुःख पाती है तब तनिक भी विद्रोह नही करती ; मन में यह बात वे सोच भी नही पातीं कि जो स्थिति इस समय है उससे भिन्न और कुछ हो सकता था। माँ क्या बच्चे को चुनती है। वह केवल उसे मानकर चलती है। कुपुत्र भी होता है और सुपुत्र भी। पति के संबंध में भी यही बात है। विधाता ने कोई दुकान तो खोल नहीं रखी है। भाग्य के ऊपर किसका विचार चल सकता है ?

इतने दिनों बाद कुमुदिनी के दुर्भाग्य का लंबा और कठिन रास्ता पार करके आया उसका राजपुत्र—छद्मवेष में। उसके रथ के पहियों का शब्द कुमुदिनी अपने हृदय में सुन रही थी। उसका बाहर का बदला रूप वह जान-बूझकर नही देखना चाहती थी।

तुरन्त अपने कमरे में जाकर उसने पत्रा खोलकर देखा कि आज मनोरथ द्वितीया है। घर में जो भी ब्राह्मण-कर्मचारी थे उन्हें बुलाकर उसने फलाहार कराया और यथासाध्य दक्षिणा दी। सभी ने आशीर्वाद दिया, 'राजरानी बनो, धन और पुत्र द्वारा लक्ष्मी प्राप्त करो !'

विप्रदास के बैठकखाने में फिर दूसरी बार घटक का आगमन हुआ। आते ही बुड्ढे ने जम्हाई ली और चुटकी बजाते हुए शिव का नाम लिया। इस बार विप्रदास को साहस नहीं हुआ कि अपनी असहमति जताकर बात को वहीं समाप्त कर दे। उसने सोचा, 'इतना बडा दायित्व मै अपने ऊपर कैसे लूँ ? मैं कैसे यह बात निश्चित रूप से जान सकता हूँ कि कुमू के लिए यह संबंध सबसे अच्छा नहीं है ?' उसने घटक को यह कहकर विदा किया कि परसों अपने अन्तिम निश्चय की सूचना दूँगा।

११

संध्या का अंधकार बादलों की छाया और वर्षा के कारण और अधिक घना मालूम हो रहा था। कुमुदिनी के पास अपने सामान के रूप में विशेष कुछ नहीं था। उसके कमरे में एक किनारे पर एक छोटा-सा पलंग था, अलगनी पर दो-एक चुनी हुई साडियाँ रखी थी और रखा था चंपई रंग का अँगोछा। एक कोने में कटहल की लकड़ी का बक्स था, जिसमें उसके अपने पहनने के कपडे रखे थे। पलंग के नीचे हरे रंग के टीन के बक्स मे पान लगाने का सरंजाम रखा था, और एक दूसरे बक्स में बाल सँवारने की सामग्री रखी थी। ताक पर कुछ पुस्तकें, दवात-क़लम, चिट्ठी लिखने के कागज, माँ के हाथ के बुने ऊनी कपड़े, पिता के नित्य व्यवहार में आने वाली चप्पले रखी थी। पलंग के सिरहाने राधाकृष्ण के युगल रूप का पट था। दीवार के एक कोने के सहारे इसराज रखा हुआ था।

अभी तक कुमुदिनी ने कमरे मे बत्ती नही जलाई थी। काठ के बक्स पर बैठकर खिड़की के बाहर की ओर ताक रही थी। सामने ईंटों के कलेवर वाला कलकत्ता शहर आदिम युग के एक कठिन चमडे वाले अतिकाय जन्तु की तरह, पानी की बौछार के बीच से अस्पष्ट दिखाई दे रहा था। बीच-बीच में उसके शरीर में प्रकाश-बिन्दु दिख जाते थे। कुमुदिनी उस समय अपने अदृष्ट भाग्य-निर्मित भावी लोक की बात सोच रही थी। वहाँ के मकान और वहाँ बसने वाले आदमी सभी उसके निजी आदर्श के अनुसार गढ़े हुए थे। उन्हींके बीच में वह स्वप्न देख रही थी अपने सती—लक्ष्मी रूप की प्रतिष्ठा का। कितनी भक्ति, कितनी पूजा और कितनी सेवा की रूप-रेखा उसके मन में अंकित होती चली जा रही थी। उसकी अपनी माँ के पुण्य चरित में एक स्थान पर एक गहरा घाव शेष रह गया था। पति के अपराध के कारण उन्होंने कुछ समय के लिए धैर्य खो दिया था। पर वह कभी उतनी भी भूल नहीं करेगी—कुमुदिनी सोचने लगी।

सहसा विप्रदास के पाँवों की आहट सुनकर वह चौंक उठी। भैया को देखकर बोली, "बत्ती जला दूँ ?"

"नहीं कुमू, अभी रहने दो," कहकर विप्रदास उसके पास ही एक बक्स के ऊपर बैठ गया। कुमुदिनी तुरन्त नीचे फ़र्श पर बैठ गई और उसके पैरों को सहलाने लगी।

विप्रदास ने स्निग्ध स्वर में कहा, "बैठकखाने में आदमी आया था, इसी-लिए तुझे मैने नही बुलाया। इतनी देर तक तू क्या अकेली बैठी थी ?"

लज्जित होकर कुमू ने कहा, "नही, बहुत देर से क्षेमा फूफी मेरे पास बैठी थीं।" फिर बात बदलने के उद्देश्य से बोली, "भैया, बैठकखाने में कौन आया हुआ था ?"

"वही बात तुझे बताने आया हूँ। इस साल जेठ से तूने अठारहवाँ वर्ष पार करके उन्नीसवें में पाँव रख लिया है। क्यों, यही बात है न ?"

"हाँ, भैया, पर इसमें क्या कोई दोष हो गया ?"

"दोष की बात नही है। आज नीलमणि घटक आया हुआ था। भली बहन मेरी, संकोच करने से काम नही चलेगा। जब पिताजी जीवित थे तब तेरी उम्र दस बरस की थी—ब्याह की बात तब प्राय: पक्की हो चुकी थी। यदि उस समय ब्याह हो गया होता तो तेरे मत की परवाह कोई न करता। पर आज तो मैं ऐसा नही कर सकता। राजा मधुसूदन घोषाल का नाम तूने अवश्य ही सुना होगा। वंश-मर्यादा में वे लोग किसी से छोटे नहीं है। पर उम्र में बड़ा अंतर है। इसलिए मैं राजी न हो सका। अब यदि तेरे मुँह से एक शब्द सुन लूँ तो सब ठीक हो जाय। संकोच मत कर, कुमू !"

"नही, मै संकोच नही करूँगी," कहकर कुमुदिनी कुछ देर तक चुप रही। "जिनकी बात तुमने बताई उनसे मेरा सम्बन्ध निश्चय ही ठीक हो चुका है।" असल में यह उसी घटक की बात की प्रतिध्वनि थी। उसके मन की गहराई में न जाने कब वह बात अटकी रह गई।

विप्रदास ने आश्चर्य से पूछा, "कैसे ठीक हुआ ?"

कुमुदिनी चुप रही।

विप्रदास ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "बच्चों की-सी बातें न कर, कुमू !'

कुमुदिनी बोली, "तुम समझोगे नही, भैया ! मै बच्चों की-सी बाते तनिक भी नहीं कर रही हूँ।"

भैया के प्रति उसके मन में असीम भक्ति है। पर भैया तो दैववाणी नही मानते हैं। कुमुदिनी समझती है कि भैया की दृष्टि की क्षीणता यही पर है।

विप्रदास ने कहा, "तूने तो उन्हें देखा ही नहीं।"

"फिर भी मैं ठीक जानती हूँ।"

विप्रदास अच्छी तरह जानता है कि यहीं पर भाई और बहन के बीच बड़ा भारी अंतर है। कुमुदिनी के मन के भीतर के इस अँधेरे महल में भैया का

तनिक भी प्रवेश या अधिकार नही है। फिर भी उसने एक बार फिर कहा, "देख कुमू, यह जीवन-भर की बात है। इस संबंध में किसी भावना के आवेश में आकर कोई प्रतिज्ञा न कर बैठना!"

कुमुदिनी व्याकुल भाव से बोली, "यह मेरी सनक नहीं है भैया, मैं तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूँ कि मैं और किसी दूसरे से ब्याह नही करूँगी।"

विप्रदास चौक उठा। जहाँ कार्य-कारण का योगायोग नही है वहाँ वह क्या तर्क कर सकता है? अमावस्या के साथ कुश्ती नही की जा सकती। विप्रदास समझ गया कि कुमुदिनी अपने मन में कोई एक 'दैवी संकेत' पा गई है। और बात भी सच थी। आज ही सुबह कुमुदिनी ने देवता को लक्ष्य करके मन-ही-मन कहा था, 'इन बेजोड़ संख्या वाले फूलों का जोड़ मिलाने पर सबसे अन्त में जो फूल शेष रह जायगा उसका रंग यदि भगवान् की तरह ही नीला निकला तो समझ जाऊँगी कि इस विवाह में उनकी सहमति है।' और जोड़ मिल जाने के बाद जो फूल शेष रहा वह था नीले रंग का अपराजिता का फूल।

पास ही मल्लिक-परिवार के पूजा-घर मे संध्या की आरती का घंटा बज उठा। कुमुदिनी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विप्रदास काफी देर तक वही बैठा रहा। क्षण-क्षण में बिजली चमक रही थी। पानी निरन्तर बरसता चला जा रहा था।

१२

विप्रदास ने और भी कई बार कुमुदिनी को समझाने का प्रयत्न किया। कुमुदिनी बिना कोई उत्तर दिये, सिर नीचा करके आँचल से खेलने लगी।

अन्त में विवाह का प्रस्ताव पक्का हो गया, केवल एक बात को लेकर दोनों पक्षों में कुछ मतभेद दिखाई दिया। विप्रदास की यह इच्छा थी कि विवाह कलकत्ता वाले घर में ही हो, और मधुसूदन चाहता था कि नूरनगर मे हो। अंत में वर-पक्ष की इच्छा ही बहाल रही।

आयोजन के लिए कुछ पहले ही नूरनगर में पहुँच जाना पड़ा। वैशाख-जेठ की गर्मी के बाद आषाढ़ में वर्षा होते ही जिस प्रकार मिट्टी हरियाली से ढक जाती है, कुमुदिनी के भीतर-बाहर उसी प्रकार एक नया रंग खिल उठा। अपने

मन से गढे हुए व्यक्ति के साथ मिलन का आनंद उसे प्रतिदिन पुलकित कर रहा था। शरत्काल का सुनहला प्रकाश उसके साथ आँखों-आँखों में बात कर रहा था—कोई अनादिकालीन मन की बात। सोने के कमरे के सामने वाले बरामदे में कुमुदिनी खील बिखेर देती और चिड़ियाँ उसे चुग जाती थी। जब वह रोटी के टुकड़े रखती थी तब गिलहरी चंचल चितवन से चारों ओर देखकर तेज़ी से दौडी आती थी और दुम के सहारे खड़ी हो जाती थी। अगले दो पैरों से टुकड़ा उठाकर कुतर-कुतरकर रोटी खाने लगती। कुमुदिनी ओट में छिपकर देखती और आनंदित होती। आज समस्त विश्व के प्रति उसका अंतर उदारता से भरा है। शाम को स्नान करने के समय तालाब में गला डुबाकर चुप बैठी रहती थी; तब उसे लगता था जैसे पानी उसके अग-अंग से बात कर रहा है। शाम की तिरछी रोशनी तालाब के पश्चिम की ओर नींबू के पेड की डाली के ऊपर से होकर आती थी और गाढे काले जल के ऊपर सोने की चमकीली रेखा की तरह झिलमिल-झिलमिल करती थी। वह उसी ओर ताकती रह जाती। प्रकाश और छाया की उस माया से उसके सारे शरीर के ऊपर से अनिर्वचनीय कंपन की पृथक्-धारा जैसे बहती चली जाती थी। दोपहर के समय वह छत के ऊपर वाली कोठरी में अकेली जाकर बैठ जाती थी। पास ही जामुन के पेड़ से पिड़की के बोलने का शब्द सुनती रहती थी। उसके यौवन-मन्दिर में जिस देवता का वरण होने जा रहा था उसका रूप एक अपूर्व भाव और रस से सघन था। उसमें कृष्ण-राधिका के युगल रूप की माधुरी घुल-मिल गई थी। छत के ऊपर इसराज ले जाकर वह धीरे-धीरे बजाती थी अपने भैया का प्रिय भूपाली सुर वाला गीत :

'आज मोर घर आये पिअरवा
रोम-रोम हरसाये।'

रात पलंग पर बैठे-बैठे प्रणाम करती है। सवेरे उठकर फिर पलंग ही पर प्रणाम करती है। किसे प्रणाम करती है, यह स्वयं उसके लिए भी स्पष्ट नहीं है—वह एक निरवलंब भक्ति का स्वतःस्फूर्त उच्छ्वास है।

पर मन से गढ़ी हुई प्रतिमा का मन्दिर-द्वार तो सदा के लिए बंद नही रखा जा सकता। कानाफूसी की साँस के ताप और वेग से उस मूर्ति की सुषमा पर जब चोट पड़ने लगती है तब देवता का रूप ठहर कैसे सकता है? तभी भक्त के लिए बड़े दुःख का दिन उपस्थित होता है।

एक दिन तेलेमिपाड़ा की बूढ़ी तीनकौडी आकर कुमुदिनी के मुँह पर ही

बोल बैठी, "अरे हाँ, हमारी कुमू के भाग में कैसा राजा आ जुटा ? मदारी औरतें जो यह गीत गाती है :

'वह जो था कुत्तों का चाटा काटों वाला वन
उसे काटकर भला बनाया उसने सिंहासन ।'

यह भी उसी कंटक वन का राजा है । वह तो रजबपुर के आन्दो मुन्शी का बेटा मेधो है । जब एक बार अकाल पड़ा था तब म्लेच्छो के मुलुक से चावल मँगाकर बेचने से उसे रुपयों की प्राप्ति हुई । फिर भी उसकी बुड्ढी माँ अंत तक खाना पकाते-पकाते मरी ।"

स्त्रियाँ उत्सुक होकर तीनकौडी को घेरकर पूछने लगी, "तुम वर को जानती हो क्या ?"

"जानती नही क्या ? उसकी माँ तो हमारे ही पड़ोस की थी—वह जो पुरोहित है चक्रवर्ती, उसी घराने की । (आवाज दबाकर) मैं सच कहती हूँ बेटी, किसी भले घर की लड़की के साथ उनका सम्बन्ध नही हो सकता । पर इससे क्या, लक्ष्मी तो जात-पाँत का विचार नहीं करती ।"

पहले ही बताया जा चुका है कि कुमुदिनी का मन इस युग के ढर्रे का नही है । जाति और कुल की पवित्रता उसके लिए एक वास्तविक महत्त्व की चीज़ है । इसीलिए इस तरह की बातो से उसका मन जितना ही अधिक संकुचित होता था उतना ही निंदकों के प्रति उसके मन में क्रोध उत्पन्न होता था । वह रोती हुई सहसा उठकर कमरे से बाहर चली जाती थी । देखकर सभी स्त्रियाँ ससंकेत परस्पर चिकोटी काटती थी । आपस में कहती थी, "यह लो ! अभी से इतना दर्द, इतनी ममता ? यह तो दक्ष-यज्ञ की सती से भी आगे बढ गई !"

विप्रदास के मन की गति यद्यपि वर्तमान युग की है, फिर भी जाति और कुल की हीनता की बात उसे भी संकोच से दबा देती है । इसलिए उसने अफवाह को दबाने में कोई बात उठा नही रखी । पर जिस प्रकार फटे तकिये को दबाने से उसकी रुई और अधिक बाहर को उभर आती है, इस सम्बन्ध में भी वही हुआ ।

इधर बुड्ढे दामोदर विश्वास से यह सूचना मिली कि घोषाल-वंश के लोग बहुत पहले नूरनगर के पास वाले गाँव शेयाकुलि के मालिक थे । अब वह चटर्जी-वंश के कब्जे में हैं । देवता-विसर्जन से सम्बन्धित मामले में किस प्रकार घोषाल-वंश का भी पूर्ण विसर्जन हो गया था, किस कौशल से चटर्जी-वंश ने उन लोगों को केवल गाँव से ही नही निकाला, समाज से भी बहिष्कृत कर दिया था, उसका ब्यौरा बताते हुए दामोदर का मुख श्रद्धा और भक्ति से चमक उठता था ।

घोषाल-वंश के लोग किसी जमाने में धन में, मान में और कुल में चटर्जी-वंश की बराबरी वाले थे यह तो अच्छी ही खबर थी ; पर विप्रदास के मन में इससे यह आशंका उत्पन्न हुई कि यह विवाह भी क्या उसी पुरानी घटना का उपसंहार तो नही है ?

१३

अगहन में ब्याह होने वाला था। आश्विन की पचीसवी को लक्ष्मी-पूजा हो चुकी थी। सहसा सत्ताईसवीं को घोषाल-कंपनी के इंजीनियरिंग विभाग का ओवरसियर तंबू तथा दूसरा साज-सामान लेकर आ पहुँचा। उसके साथ कई पश्चिमी मजदूर भी थे। मामला क्या था ? शेयाकुलि में घोषाल-तालाब के किनारे तंबू गाडे जायँगे और वर तथा वरयात्री कुछ दिन पहले ही वहाँ आ जायँगे।

यह क्या बात हुई ? विप्रदास ने कहा, "उनके जितने लोग भी आना चाहें शौक से आयँ, जितने दिन चाहें रहें, इस सबका प्रबन्ध हमी लोग कर लेंगे। तंबुओं की क्या आवश्यकता है ? हम लोगों का एक अलग मकान है, उसे खाली किये देते हैं।"

ओवरसियर बोला, "राजा बहादुर का हुक्म है। तालाब के चारों ओर वाला जंगल भी साफ़ कर देने के लिए उन्होने कहा। जमींदार आप है, इसलिए मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ।"

विप्रदास का चेहरा लाल हो आया। उसने कहा, "यह क्या उचित हो रहा है ? जंगल तो हमी साफ कर सकते है।"

ओवरसियर ने विनम्र भाव से उत्तर दिया, "नहीं राजा बहादुर के पूर्वजों की मौरूसी जमीन है, इसलिए वह शौकिया यह चाहते हैं कि स्वयं ही उसे साफ़ कर लेंगे।"

बात एकदम असंगत नहीं थी, किंतु आत्मीय बंधु-बांधव इससे विचलित हो उठे। प्रजा-संपर्कीय लोग कहने लगे, "यह हमारे मालिक को नीचा दिखाने की चेष्टा है। अचानक खज़ाना भरकर फूल उठा है, उसे ढकना संभव नहीं हो पा रहा। उसीका जयढोल बजाने के लिए ही क्या यह आडम्बर नहीं रचा जा रहा है ? यदि पिछला जमाना होता तो वर समेत अभी बरातियों को वैतरणी

पार कराने में तनिक भी देर न लगती। छोटे बाबू यदि होते तो वह भी यह सब न सह पाते, और तब हम भी देखते कि ये सब तंबू और बाबू फिर कहाँ रहते !"

उन लोगों ने आकर विप्रदास से कहा, "हुजूर, उन लोगों से हम पीछे रहना नहीं चाहते। जो कुछ खर्चा बैठेगा वह हम देंगे।"

छै आने के मालिक नव गोपाल ने आकर कहा, "वंश की मर्यादा-हानि सही नहीं जाती। एक दिन हमारे मालिकों ने इन घोषाल-वंश वालों का अंजर-पंजर ढीला कर दिया था, आज वे ही हमारे इलाके पर चढ़ बैठे है और रुपयों का रौब दिखा रहे है। डरने की कोई बात नहीं है, भैया, जो कुछ भी खर्चा बैठेगा हम भी साथ हैं। संपत्ति का बटवारा भले ही हो जाय, पर वंश के मान का तो बटवारा नहीं हुआ है !"

यह कहकर नव गोपाल ही धक्कम-धक्के से प्रधान कर्म-चालक बन गया।

विप्रदास इधर कुछ दिनों से कुमुदिनी के पास जा नही पाया था। उसके मुख की ओर ताकने का साहस उसे कैसे हो सकता है ! वर-पक्ष की स्पर्द्धा की बात कुमुदिनी से कोई घटाकर कहेगा, ऐसी दया या शिष्टता समाज में नही पाई जा सकती। बल्कि उसीसे यह बात खूब बढा-चढ़ाकर कही जाती है। स्त्रियो का आक्रोश उसी पर है, क्योकि उसीके कारण पूर्वजों का सिर नीचा हो गया। बड़ी राजरानी बनने वाली आई कही की ! राजा की सूरत तो पहले देखो !

जाति और कुल की बात को तो कुमुदिनी ने अपनी भक्ति-भावना से दबा दिया था ; किन्तु धन का अत्यधिक महत्त्व प्रदर्शित करके ससुराल वालों को नीचा दिखाने की क्षुद्रता देखकर उसका मन विषाद से भर गया। वह लोगो के बीच से भागती फिरती थी। घोषाल-वश वालों की हीनता की लज्जा आज उसकी अपनी लज्जा बन चुकी है। भैया के मुँह से कुछ सुनने के लिए उसका जी छट-पटा रहा है, पर वह तो इधर दिखाई ही नहीं पड़ते। अन्दर—महल में खाना खाने को भी नही आते।

एक दिन विप्रदास अन्त.पुर के बाग में मिठाई-घर बनाने के लिए जगह ठीक करने गया। वहाँ सहसा उसने देखा कि कुमुदिनी भीतरी तालाब के घाट में नीचे की सीढ़ी पर खड़ी होकर सिर नीचा किये पानी की ओर एकटक देख रही है। भैया को देखकर तुरन्त ऊपर चली आई। आते ही रुँधे गले से बोली, "भैया, यह सब-कुछ भी समझ नही पा रही हूँ।" कहते ही आँचल से मुँह ढाँपकर रो पड़ी।

भैया ने धीरे-धीरे उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "लोगो की बातो

पर ध्यान न दिया कर बहन !"

"पर वे लोग यह सब क्या कर रहे है ? इससे क्या तुम लोगो का मान रह जायगा ?"

"तनिक उनकी तरफ़ से भी तो सोचकर देख ! अपने पुरखों के जन्म-स्थान में आये हुए है, धूमधाम क्यों न करेगे ! ब्याह की बात से इस बात को अलग करके देख, तब समझ में आयगी।"

कुमुदिनी चुप हो गई। विप्रदास रह न सका। मरे मन से बोला, "तेरे मन में यदि कहीं तनिक भी खटका हो तो मै अभी भी ब्याह रोक सकता हूँ।"

कुमुदिनी ने वेग से सिर हिलाते हुए कहा, "छी-छी, ऐसा कैसे हो सकता है !"

अन्तर्यामी के सामने सत्य ग्रन्थि में तो गाँठ पड़ चुकी है। बाक़ी जो है वह सब बाहर की बात है।

विप्रदास का एकाकी मन इतनी बड़ी निष्ठा से अधीर हो उठता था। उसने कहा, "जब दोनों तरफ सत्यता का व्यवहार हो तभी विवाह-बंधन सत्य हो सकता है। यदि बजाने वाले का हाथ बेसुरा हो तो सुर में बंधे इसराज की कोई उपयोगिता ही नही रह जाती। यही देख न, पुराणों में हम क्या पाते है—जैसी सीता है वैसे ही राम भी है, जैसी ही सती है वैसे ही महादेव भी है, अरुन्धती जैसी है वशिष्ठ भी वैसे ही है। आजकल के बाबुओं के पास अपना कोई पुण्य तो है नहीं, इसलिए एकतरफा सतीत्व का प्रचार किया करते है। उनसे तेल जुटाते तो बनता नही, बत्ती से कहते हैं कि जलो—सूखे प्राणों से जलते-जलते ही हमारी सतियाँ जलकर राख हो गईं।"

मर कुमुदिनी से ये सब बातें कहना व्यर्थ था। वह तो अब मन-ही-मन पूरी शक्ति से जपने लगी थी कि 'वह चाहे अच्छे हों चाहे बुरे, वही मेरी परम गति है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगत स्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः—

केवल यती-धर्म के लिए यह आवश्यक नहीं है, सती-धर्म के लिए भी उतना ही आवश्यक है। वह धर्म सुख और दुःख से अतीत है—उसमें न क्रोध है न भय। और अनुराग ? उसकी भी अत्यावश्यकता कहाँ है ? प्रेम में चाहने और पाने का हिसाब रहता है। भक्ति उससे भी बडी चीज है। उसमें आवेदन नहीं, निवेदन है। सती-धर्म निर्वैयक्तिक है, जिसे अंग्रेजी में कहते है 'इम्पर्सनल'। मधुसूदन नामधारी व्यक्ति में दोष हो सकते हैं, पर पति नामक भाव-पदार्थ

निर्विकार और निरंजन है। उस वैयक्तिकता-रहित ध्यान रूप के निकट कुमुदिनी ने एकांत भाव से अपने को समर्पित कर दिया।

१४

घोषाल-तालाब के किनारे का जगल साफ़ हो गया—अब उस जगह को पहचानना कठिन था। सारी जमीन निर्दोष रूप से समतल बनाई जा चुकी थी, जिसके बीच-बीच मे लाल बजरी से रास्ते रँगे हुए थे, और उन रास्तो के दोनों ओर रोशनी के लिए खंभे बनाए गए थे। तालाब को भी एकदम साफ कर दिया गया था। घाट के निकट दो एकदम नई विलायती पाल वाली नावें बँधी थी। उनमें से एक पर लिखा था 'मधुमती' और दूसरी पर लिखा हुआ था 'मधुकरी'। जिस तंबू मे राजा साहब स्वयं आकर रहने वाले थे उसके सामने पीले रंग की बनात के ऊपर लाल रेशम से 'मधुचक्र' नाम बुन दिया गया था। एक दूसरा तंबू अंतःपुरिकाओं के लिए था। वहाँ से लेकर तालाब तक सारा घाट चटाई से घेर दिया गया था। घाट पर खड़े नीम के एक बड़े पेड़ पर, काठ के फलक पर खुदा था 'मधुसागर'। थोड़ी-सी ज़मीन पर विविध आकार के सूर्यमुखी, रजनी-गंधा, गेदा, केना, पत्ता, बहार आदि फूल सुशोभित थे और काठ के एक चौकोर बक्स मे नाना रंगों के विलायती फूल सजे हुए थे। बीच में एक छोटा-सा जला-शय था, जो चारो ओर से बँधा था। उसमें लोहे में ढली हुई एक नग्न स्त्री-मूर्ति बनी हुई थी, जो मुख में एक शंख लिये हुए थी। उस शंख से जल की फुहारें निकलेंगी—ऐसी योजना बनाई गई थी। इस स्थान का नाम रखा गया था 'मधुकुंज'। प्रवेश-पथ पर काम किया हुआ लोहे का फाटक था, जिसके ऊपर एक झंडा उड़ रहा था। झंडे पर लिखा था 'मधुपुरी'। चारों ओर मधु नाम की छाप दिखाई देती थी। नाना रंगों के कपड़े, कनात, चदोवा, झंडे-झंडियाँ, फूल, फ़ानूस आदि से अकस्मात् तैयार की गई इस मायापुरी को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। इधर चमकते हुए चपरास पहने, पीले रंग के ऊपर लाल रंग की किनारी वाली पगड़ियाँ बाँधे, ज़री के फीते वाली लाल बनात की वर्दी से सुसज्जित चपरासियों के दल विलायती जूते चरमराते हुए घूमते-फिरते थे। शाम को वे बंदूको में गोलियाँ भरकर आकाश को निशाना बनाकर चलाते थे, दिन-रात पहर-पहर मे घंटा बजाते थे। उनमें से किसी-किसी के चमड़े के

कमरबंद में झूलती हुई विलायती तलवार ज़मीदार की मिट्टी को पग-पग पर कौचती जाती थी। चटर्जी-परिवार के पुराने ज़माने की साज-सज्जा वाले बर-कन्दाज संकोच से घर से बाहर नही निकलना चाहते थे। वह सब कांड देखकर चटर्जी-वश के लोग मन-ही-मन जल उठे। नूरनगर के पंजर में घोंपे गए शेल-दण्ड के ऊपर आज घोषाल-वंश की जय-पताका उड़ रही थी।

शुभ परिणय की यह पहली सूचना थी।

१५

विप्रदास ने नवगोपाल को बुलाकर कहा, "नवू, किसके आडंबर के साथ होड़ लगाने की चेष्टा छोटे लोगो का काम है।"

नवगोपाल बोला, "चतुर्मुख ने अपना पाँव झाड़कर ही अधिकांश मनुष्यों को गढ़ा है; चार मुख केवल बड़ी-बडी बाते कहने के लिए ही हैं। साढ़े पन्द्रह आना लोग छोटे है, उनके आगे यदि सम्मान को बचाकर चलना है तो छोटे लोगों का रास्ता ही पकड़ना पड़ेगा।

विप्रदास ने कहा, "तुम इस रास्ते चलने से भी बराबरी नहीं कर पाओगे। उससे अच्छा तो यह होगा कि हम सब मिलकर सात्विक भाव से काम करे। यही अच्छा दिखाई देगा। उपयुक्त ब्राह्मण पंडितों को बुलाकर हम लोग सामवेद के अनुसार विशुद्ध रूप से अनुष्ठान पालन करेंगे। वे लोग राजा जो ठहरे, करने दो उन्हें आडंबर; हम लोग ब्राह्मण है, हमारी विशेषता पुण्य कर्म करने में है।"

नवगोपाल बोला, "भैया, पत्रा भूल रहे हो, यह सत्ययुग नही है। जल में चलने वाली नाव को चलाना चाहते हो कीचड़ के ऊपर! तुम्हारी प्रजा है, तुम्हारा ताल्लुक़ेदार है तीनू सरकार। इनके अतिरिक्त है भादू परमाणिक, कमरद्दि विश्वास, पाँचू मण्डल—ये लोग क्या तुम्हारे कच्चे केले और शुद्ध भात द्वारा तैयार किये गए हविष्यान्न वाली बँभनई का एक अक्षर भी समझ पायँगे? ये लोग क्या याज्ञवल्क्य के प्रपौत्र है? इन लोगों की तो छाती ही फट जायगी। तुम चुप करके बैठे रहो, तुम्हें कुछ नहीं करना होगा।"

नवगोपाल प्रजा के साथ मिलकर अपनी योजना में जुट गया। सभी ने छाती ठोंककर कहा, 'रुपये की क्या चिता है।' मुन्शी, चपरासी, चौकीदार, बरकंदाज—सभी को नये लाल बनात की चादर ओढ़ाई गई और रंगीन धोती

पहनाई गई। एक नौबतखाना तैयार किया गया, जिसे चारो ओर से बढ़िया कपड़े से सजाया गया, जिसकी किनारी पर झालर झूल रही थी। एक झंडा भी ऊपर उड़ रहा था। उस नौबतखाने की चोटी सात कोस दूर से दिखाई देती थी। दो साझीदारों ने मिलकर अपने चार-चार हाथी बाहर निकाले। हाथियों को खूब अच्छी तरह सजाया गया। उन्हे बीच-बीच में अकारण ही घोषाल-तालाब के सामने वाले रास्ते से होकर टहलाया जाता था। वे सूँड हिला-हिलाकर चलते थे और टन-टन करके उनके गले के घण्टे बजते रहते थे। "जो भी हो, पाट के बोरे से हाथी नही निकल सकता," यह कहकर सभी "होः होः !" करके हँस उठे।

अगहन सत्ताईस गते विवाह का लग्न पड़ा था। उसमे अब भी दस दिन बाकी थे। ऐसे समय लोगों से यह समाचार मिला कि राजा साहब दल-बल सहित आ रहे है। सबके सिरों पर यह चिता सवार हुई कि अब क्या कर्त्तव्य है। मधुसूदन ने उन लोगो को कोई सूचना नही दी थी। शायद उसने यह सोचा होगा कि शिष्टता तो साधारण लोगो के लिए है, राजा लोगों को अशिष्टता ही शोभा देती है। जो भी हो, अब यह प्रश्न उठा कि जब उन्हें राजा के आने की कोई सूचना नहीं दी गई है, तब ऐसे अवसर पर स्वतः प्रेरित होकर स्टेशन जाकर उनकी अगवानी करना क्या उचित होगा ? खबर न देने का सीधा जवाब है खबर न लेना।

यह तो सब ठीक है, पर केवल तर्क द्वारा सासारिक दुःख को रोका नहीं जा सकता। कुमुदिनी के प्रति विप्रदास के मन में गहरा स्नेह है; कहीं कोई बात उसके मन पर चोट न कर जाय, इस बात का ध्यान विप्रदास के मन मे सब तर्को के ऊपर रहता था। स्त्रियों के मन को चोट पहुँचाना बहुत ही आसान है। उनका मर्मस्थल चारों ओर से अनढका रहता है। समाज ने ज़बर्दस्त के हाथ मे ही चाबुक दिया है, और जो कवचहीन है उनकी स्पर्श-कातर पीठ की ओर किसी भी विधि-विधान की दृष्टि नही जाती। ऐसी स्थिति मे स्नेह के धन को रोष, विद्वेष और ईर्ष्या के तूफ़ान मे बहाकर अपने झूठे मान को बचाने की चेष्टा कापुरुषता है—विप्रदास इस प्रकार सोचने लगा।

किसी को बिना बताये विप्रदास सीधे स्टेशन चला गया। जब गाड़ी पहुँची तब पाँच बज चुके थे। राजा साहब अपने दल-बल के साथ सैलून से उतरे। विप्रदास को देखकर एक रूखा-सा सक्षिप्त नमस्कार करके बोले, "यह क्या, आपने क्यों कष्ट किया ?"

विप्रदास बोला, "वाह, आप पहली बार हमारे इलाक़े में आए है, आपका

स्वागत करने नहीं ग्रायेंगे क्या ?"

राजा साहब बोले, "ग्राप भूल रहे है । ग्रभी ग्राप लोगों के इलाके मे नही ग्राया हूँ । वह तो शादी के दिन ग्राऊँगा ।"

विप्रदास इस बात का ठीक ग्रर्थ समझ न पाया । स्टेशन पर भीड़ के बीच में तर्क करना उचित नहीं है, यह सोचकर उसने केवल इतना ही कहा, "घाट में बजरा तैयार है ।"

राजा ने कहा, "उसकी ग्रावश्यकता नही पडेगी, हमारा ग्रपना स्टीम-लांच ग्रा गया है ।"

विप्रदास समझ गया कि यहाँ उसकी कुछ भी नही सुनी जायगी । फिर भी एक बार ग्रौर बोला, "भोजन ग्रादि की सामग्री ग्रौर रसोई बनाने की नावें सब तैयार है ।"

"क्यों ग्रापने व्यर्थ में इतना बखेड़ा किया ! हमें किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं पड़ेगी । देखिए, एक बात ध्यान में रख लीजिए ! हम लोग ग्राए हैं ग्रपने पुरखों की जन्म-भूमि मे—ग्राप लोगों के इलाक़े में नहीं । विवाह के दिन वहाँ जायँगे ।"

विप्रदास समझ गया कि उनके नरम होने की कोई ग्राशा नही है, उसके भीतर का सारा उत्साह ठडा पड गया । स्टेशन के प्रतीक्षालय में वह एक ग्राराम-कुर्सी पर लेट गया । जाड़े की शाम थी, ग्रँधेरा होने लगा था । उत्तर की ग्रोर से गाड़ी ग्राने की सूचना देने के लिए घंटा बजा । स्टेशन में रोशनी जल उठी । विप्रदास उठा । घर चलने के लिए लगाम छोड़कर उसने घोडे को ग्रपनी मर्ज़ी के ग्रनुसार चलने दिया । जब घर पहुँचा तब रात काफ़ी बीत चुकी थी । कहाँ गया था, क्या घटा था, यह बात उसने किसी को नही बताई ।

उसी रात को उसे सर्दी लग गई ग्रौर खाँसी शुरू हो गई । उत्तरोत्तर शिकायत बढ़ती ही चली गई । उपेक्षा करके उसने बीमारी को ग्रौर ग्रधिक बढ़ा लिया । ग्रंत में कुमुदिनी ने उससे बहुत-कुछ कह-सुनकर पलंग पर लेटने को राज़ी किया । प्रबंध का सारा भार पडा नवगोपाल के ऊपर ।

१६

दो ही दिन बाद नवगोपाल ने आकर कहा, "क्या करूँ, समझ में नही आता। सलाह दो !"

उत्सुक होकर विप्रदास ने पूछा, "क्यो, क्या हुआ ?"

"साथ में कुछ साहब लोग है, या तो वे दलाल होंगे, या शराब की दुकान के विलायती कलवार। कल वे लोग पीरपुर की कछार से कम-से-कम दो सौ चिड़ियाँ मार लाए। आज चन्दनदह की दलदल की ओर गए हैं। आजकल वहाँ बत्तखो का मौसम है—इसलिए भयंकर परिमाण में वहाँ जीव-हत्या होगी, जिससे अहिरावण, महीरावण, हिडिबा, घटोत्कच, कुम्भकर्ण आदि को आसानी से पिंड दिया जा सकेगा।"

विप्रदास स्तब्ध रह गया, पर कुछ बोला नही।

नवगोपाल ने कहा, "तुम्हारा ही यह आदेश है कि उस दलदल में कोई शिकार नही करने पायगा। उस बार जिला-मजिस्ट्रेट तक को तुमने रोक दिया था—हम लोग तो डर गए थे कि कही वह तुम्हे भी राजहंस समझकर भूल से गोली न मार बैठे। पर वह भला आदमी था, चला गया। पर ये लोग तो गो-मृग-द्विज किसी को भी मानने वाले नही है फिर भी यदि तुम कहो तो एक बार······"

विप्रदास ने व्यग्र होकर कहा, "नही, नही, कुछ मत बोलना !"

विप्रदास बाघ का शिकार करने मे सारे ज़िले मे उस्ताद है। कभी एक बार एक चिडिया मारने पर उसके मन में अपने प्रति ऐसी धिक्कार-भरी भावना जगी कि तब से उसने अपने इलाके मे चिड़िया मारना एकदम बन्द कर दिया था।

सिरहाने के निकट बैठी हुई कुमुदिनी विप्रदास का सिर सहला रही थी। नवगोपाल जब चला गया तब उसने कड़ाई के साथ कहा,

"भैया, मना कर दो।"

"क्या मना कर दूँ ?"

"चिड़ियों का शिकार करना !"

"वे लोग हमारी बात गलत समझेंगे कुमू, उनसे सहा नही जायगा।"

"ग़लत समझेंगे तो समझें। मान-अपमान का बोध अकेले उन्हींको नहीं है।"

विप्रदास कुमुदिनी के मुँह की ओर देखकर मन-ही-मन हँसा। वह जानता था कि कठोर निष्ठा के साथ वह मन-ही-मन सती-धर्म का अनुशीलन कर रही है। छायेवानुगतास्वच्छा। साधारण चिड़िया के प्राणों के कारण क्या छाया के साथ काया का पथ-भेद घटित होगा ?

उसने स्नेह के स्वर में कहा, "नाराज न होना कुमू, मैने भी एक दिन चिड़िया मारी थी। तब मै समझ ही नहीं पाया था कि ऐसा करना अनुचित है। इन लोगों की भी वही दशा है।"

अक्लान्त उत्साह के साथ शिकार, पिकनिक और शाम को बैण्ड के साथ अँगरेज़ अतिथियों का नाच चलने लगा। तीसरे पहर टेनिस चलता था। इसके अतिरिक्त तालाब की नावों पर तीन-चार पर्दे डालकर बाजी के साथ पाल का खेल चलने लगा। देखने के लिए गाँव के लोग तालाब के किनारे खड़े हो जाते थे। रात को डिनर के बाद चिल्लाकर गीत गाया जाता था, 'फार ही इज ए जॉली गुड फेलो।' विलास के इन सब उपकरणो के नायक-नायिका थे अँगरेज साहब और मेमें। इसीसे गाँव के लोग चकित थे। वे लोग जब सोला हैट पहनकर वंशी डालकर मछली पकड़ते तब वह भी गाँव वालों के लिए एक अपूर्व दृश्य बन जाता था। दूसरे पक्ष के लोगों ने लाठी के खेल, कुश्ती, नाव की सैर, यात्रा, नाटक और चार हाथियो के प्रदर्शन का जो प्रबन्ध कर रखा था वह उन अँग्रेज़ी आमोद-प्रमोदों की तुलना में कहाँ ठहरता था ?

विवाह से दो दिन पहले शरीर में हल्दी मले जाने का संस्कार था। इस उपलक्ष्य मे वर की ओर से जो सौगात दामी गहनों से लेकर खिलौनों तक के रूप मे आई उसकी टीम-टाम देखकर सभी अवाक् रह गए। उन्हे ढोने वाले वाहन भी अनेक थे। चटर्जी-परिवार ने भी बड़े उन्मुक्त भाव से उन्हे विदा किया।

अन्त में जन-साधारण को खिलाने-पिलाने के सम्बन्ध में वैवाहिक-कुरुक्षेत्र का द्रोण पर्व आरम्भ हुआ।

उस दिन ढोल पीटकर मधुपुरी में मधुसागर के तट पर सर्व-साधारण को निमन्त्रण दिया गया। रवाहूत, अनाहूत किसी को भी नही छोड़ा गया। नवगोपाल तो क्रोध से आग-बबूला हो उठा। यह कितना बड़ा दुस्साहस है। ज़मींदार है हम लोग, इस बीच उन्होंने अपनी मधुपुरी कहाँ से खड़ी कर दी !

इधर भोज का आयोजन बड़े व्यापक रूप से सबके आगे प्रचारित हो उठा। वह साधारण आयोजन नही था। मछली, दही, खीर, सन्देश, घी, मैदा, चीनी आदि चीज़े बड़े शोर के साथ बहुत बड़े परिमाण में मँगाई जा रही थीं।

पेड़ों के नीचे बड़े-बड़े चूल्हे तैयार किये गए। भोजन बनाने के लिए विविध आकार के हाँडी-हंडे, कढ़ाह-कढ़ाइयाँ, माट-घड़े आदि आए हुए थे। बैलगाड़ियों की क़तार-की-क़तार चली आती थी; जिनमे आलू, बेगन, कच्चे केले, साग-सब्ज़ियाँ आदि के ढेर लगे हुए थे। भोज शाम को होने वाला था, चमचमाते हुए प्रकाश में।

उधर चटर्जी-परिवार की ओर से मध्याह्न-भोजन चल रहा था। वहाँ प्रजा के लोग मिलकर स्वयं ही आयोजन कर रहे थे। हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग पंक्तियाँ बनी हुई थीं। मुसलमान प्रजा की संख्या ही अधिक थी। उन लोगों ने पौ फटते ही स्वयं खाना तैयार करने का काम शुरू कर दिया था। आहार का उपकरण चाहे कैसा क्यों न रहा हो, चटर्जी-लोगों का जय-जयकार चौगुने उत्साह से मनाया जा रहा था। स्वयं नवगोपाल बाबू, प्राय: पाँच बजे तक स्वयं बिना खाए सबको खिलाते रहे। उसके बाद हुई कंगालो की विदाई। प्रजा के लोगों ने स्वयं ही दान-वितरण की व्यवस्था की। किलकारियो से और जय-जयकार से जैसे हवा मे समुद्र-मन्थन का-सा रोर उठा।

मधुपुरी में दिन-भर भोजन बनता रहा। उसकी गन्ध बहुत दूर तक फैली हुई थी। सकोरे, कुल्हड़, केले के पत्ते आदि के पहाड़ खड़े कर दिये गए थे। तरकारी और मछली काटने से जो कूड़ा बच जाता था उस पर चोच साफ करने के लिए कौवो की कॉव-कॉव का अन्त नही था। इलाके-भर के कुत्ते भी परस्पर छीना-झपटी और भूँका-भूँकी कर रहे थे। समय हो आया था और रोशनी जलाई जा रही थी। उधर मटियाबुर्ज से बुलाया गया मशक-बीन बजाने वाला दल इमन कल्याण से लेकर केदारा तक बजाता चला जाता था। अनुचर-परिचर लोग चिन्तित मुख से राजा बहादुर के कान के निकट फुस-फुसाते हुए कह रहे थे कि अभी तक भोजन पाने के लिए यथेष्ट लोग नही आए। आज हाट का दिन था। दूसरे इलाकों से जो लोग हाट के लिए आए थे उनमें से कुछ पत्ते बिछे देखकर बैठ गए थे। कुछ कंगाल भी जमे हुए थे।

मधुसूदन ने अपने तम्बू के भीतर घुसकर, मुरझाए मुख से एक क्षीण हुंकार भरी, "हुम् !"

छोटा भाई राधू आकर बोला, "भैया, बस हो गया, अब चलो !"

"कहाँ ?"

"कलकत्ता लौट चलें। ये लोग सब बदमाशी कर रहे है। इनसे बड़े-बडे घरो की पात्रियाँ तुम्हारी छोटी उँगली के इशारे की प्रतीक्षा में बैठी है। एक बार

तू-तू करने भर की देर है।"

मधुसूदन ने गरजकर कहा, "तू चला जा !"

सौ वर्ष पहले जैसी घटना घटी थी आज भी वही हाल हुआ। इस बार भी एक पक्ष के आडम्बर का स्तूप दूसरे पक्ष की अपेक्षा बहुत ऊँचा उठाया गया था, पर दूसरे पक्ष ने उस रास्ते को पार नही करने दिया। पर असली हार-जीत बाहर से नही दिखाई देती। उसका क्षेत्र लोगों की आँखों से ओझल ही रह जाता है।

चटर्जी-वंश की प्रजा को हँसने का खूब मौका मिला। विप्रदास रोग-शय्या पर पड़ा हुआ था। उसके कानो तक यह सब बात नही पहुँच पाई।

१७

राजा के हुक्म से विवाह के दिन कन्या के घर जाने के रास्ते में धूमधाम एकदम बंद कर दी गई। रोशनी नही जली, बाजे नहीं बजे, साथ मे केवल कुल-पुरोहित और दो भाट थे। पालकी में बैठकर वर चुपचाप विवाह वाले घर में पहुँचा। लोग कुछ समझ न पाए कि बात क्या है। उधर मधुपुरी में तंबुओं मे रोशनी बिखरी हुई थी, बैंड बड़े जोरो से बज रहा था और बराती सब आहार और आमोद-प्रमोद में मस्त हो रहे थे। नवगोपाल समझ गया कि यह पलटे में जवाब है। ऐसे अवसर पर कन्या-पक्ष वाले हाथ जोड़कर, पाँवों पड़कर वर-पक्ष वालों की खुशामद किया करते है। नवगोपाल ने वह सब-कुछ नही किया। एक बार भूल से भी उसने नहीं पूछा कि बरातियों का क्या हुआ।

कुमुदिनी गहनों और कपड़ों से सज्जित होकर विवाह-मंडप में जाने के पहले भैया को प्रणाम करने आई। उसका सारा शरीर उस समय काँप रहा था। विप्रदास को उस समय १०५ डिग्री ज्वर था। छाती में और पीठ पर राई-सरसों का पलस्तर बँधा था। कुमुदिनी ने उसके चरणों पर अपना माथा टेका, और तब वह रह न सकी—फफक-फफककर रोने लगी। क्षेमा फूफी ने उसके मुँह को अपने हाथ से बंद करते हुए कहा, "छी-छी, ऐसे अवसर पर इस तरह कहीं रोते है।"

विप्रदास तनिक उठ बैठा और उसने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बिठाया और उसके मुख की ओर ताकता हुआ कुछ देर तक चुप बैठा रहा।

उसकी दोनों आँखों से जल की धारा बहने लगी। क्षेमा फूफी ने कहा, "समय हो गया है।"

विप्रदास कुमुदिनी के सिर पर हाथ रखकर रुँधे हुए गले से बोला, "सर्व-शुभदाता तुम्हारा कल्याण करें।" कहते ही वह धम्म से बिस्तर पर लेट गया।

जब तक विवाह होता रहा, कुमुदिनी की दोनों आँखों से जल-धारा बहती रही। जब उसने वर के हाथ मे अपना हाथ दिया तब वह हाथ बर्फ की तरह ठंडा था और थर-थर काँप रहा था। शुभ दृष्टि के समय क्या उसने पति का मुख देखा था? शायद देखा नहीं, उन लोगों के व्यवहार से उसके मन में पति के प्रति भय की भावना ने ज़ोर पकड़ लिया था। पंछी को ऐसा लग रहा था कि उसके लिए घोंसला नही है, फाँस है।

मधुसूदन देखने में कुरूप नहीं था, पर उसके चेहरे पर एक प्रकार की कठोरता झलक रही थी, उसके काले चेहरे पर सबसे पहले दृष्टि पडती थी चिड़िया की चोंच के आकार की बहुत बडी टेढी नाक पर, जो ओठ तक झुकी हुई-सी लगती थी—मानो पहरा दे रही हो। चौडा, ढलुवाँ माथा घनी भौहों के ऊपर बाधा-प्राप्त स्रोत की तरह फूला हुआ-सा लगता था। उन भौहों की छाया के नीचे छोटी, तिरछी आँखो की दृष्टि बडी तीखी लगती थी। मूँछ-दाढ़ी सब साफ थीं, ओंठ चपटे थे और ठुड्डी भारी थी। कडे बाल हब्शियों की तरह घुँघराले थे। सिर की चाँद के बाल बारीकी से कटे हुए थे। शरीर खूब कसा हुआ था। जितनी उम्र थी उससे कम मालूम पडती थी। केवल दो कनपटियों के पास के बाल कुछ पक गए थे। क़द ठिगना था, लम्बाई प्राय: कुमुदिनी के समान ही थी। बाल उगे हुए दोनों हाथ शरीर की तुलना मे छोटे थे। कुल मिलाकर लगता था कि आदमी एकदम ठोस है; सिर से लेकर पाँवों तक जाने कौन-सी एक प्रतिज्ञा सब समय जैसे पकती जाती हो। जैसे भाग्य-देवता की तोप से छूटकर कोई गोला एकाग्र भाव से एक तरफ चला जा रहा हो। उसे देखते ही यह बात समझ में आ जाती थी कि फ़ालतू बातों, फ़ालतू विषयों और फ़ालतू आदमियों की ओर ध्यान देने का तनिक भी अवकाश उसे नहीं है।

विवाह कुछ इस ढंग से समाप्त हुआ कि सबका जी ख़राब हो गया। वर-पक्ष और कन्या-पक्ष के प्रथम संपर्क-मात्र से ही एक ऐसा बे-सुरा बाजा झनझना उठा कि उस नक्कारखाने में उत्सव का संगीत न जाने कहाँ विलीन हो गया। रह-रहकर कुमुदिनी के मन मे एक प्रश्न अभिमान से फूलता हुआ-सा उठने लगा, 'तब क्या भगवान् ने मुझे भुला दिया?' संशय को वह पूरे प्राणो से दबाती

जाती थी, और बंद कमरे में अकेली बैठकर बार-बार फ़र्श पर सिर झुकाकर प्रणाम करती जाती थी। प्रार्थना करती थी, 'मेरा मन दुर्बल न होने पाए।' सबसे कठिन काम था भैया के आगे अपना संशय छिपाना।

माँ की मृत्यु के बाद से विप्रदास एकांत भाव से कुमुदिनी की सेवा पर निर्भर रहने लगा था। कपड़ों की सँभाल, प्रतिदिन के खर्च का हिसाब-किताब, पुस्तकों की अलमारी की देख-रेख, घोड़े को दाना दिलाने का प्रबंध, बंदूक की सफाई, कुत्ते की परिचर्या, कैमरे की रखवाली, संगीत-वाद्यों का परिरक्षण, सोने और बैठने के कमरो की सजावट—सब कुमुदिनी के जिम्मे थी। इसकी आदत उसे इस हद तक पड़ चुकी थी कि प्रतिदिन के काम-काज में कुमुदिनी का हाथ न रहने मे उसे कुछ अच्छा नही लगता था। ऐसे भैया की जो सेवा उसे रोग-शय्या मे विदाई के आगे अंतिम कुछ दिनो तक करनी है उसमें उसकी अपनी चिंता की कोई छाया न पड़े, इसके लिए वह दुस्साध्य चेष्टा कर रही थी। कुमुदिनी का हाथ इसराज मे सधा हुआ था, इस बात पर विप्रदास को बड़ा गर्व था। वह संकोच से सहज ही बजाना पसंद नहीं करती थी। पर इन दो दिनों मे उसने स्वतः प्रेरित होकर भैया को कान्हड़ा-मालकोश का आलाप सुनाया। उस आलाप में निहित था देवता के प्रति उसकी स्तुति, उसकी प्रार्थना, उसकी आशंका और उसका आत्म-निवेदन। विप्रदास आँख मूँदकर सुनता जाता था और बीच-बीच में फरमायश करता था सिंधु, विहाग और भैरवी बजाने की—जिन सब सुरों में विच्छेद-व्यथा का क्रंदन अपने-आप बज उठता है। उन सुरों में दोनों भाई-बहन की व्यथा घुलकर एक रूप हो जाती थी। मुख से उन दोनों में कोई भी कुछ नहीं बोला; न किसी ने एक-दूसरे को सांत्वना दी, न अपना-अपना दुःख जताया।

विप्रदास का ज्वर, खाँसी और छाती का दर्द कुछ दूर नहीं हुआ, बल्कि और बढ़ गया। डॉक्टर ने बताया कि इन्फ्लुएंजा है, और न्यूमोनिया हो जाने का ख़तरा है—बहुत सावधानी बरतनी होगी। कुमुदिनी के मन में चिंता की सीमा नहीं थी। पहले यह बात तय थी कि बासी ब्याह की कालरात्रि वही बिताकर दूसरे दिन बरात कलकत्ता लौटेगी। पर बाद में सुना गया कि मधुसूदन ने सहसा यह निश्चय कर लिया है कि विवाह के दूसरे दिन उसको लेकर वापस चला जायगा। कुमुदिनी समझ गई कि यह बात प्रथा के कारण नहीं, बल्कि प्रयोजन के लिए तय हुई है; प्रेम के कारण नहीं बल्कि शासन के लिए। ऐसी स्थिति में अनुग्रह करना अभिमानिनी के लिए वज्र की चोट सहने के बराबर था। फिर भी उसने सिर झुकाकर, लज्जा हटाकर विवाह की रात में काँपती हुई

आवाज में पति से केवल इतनी प्रार्थनी की थी कि उसे दो दिन और मायके रहने दिया जाय, ताकि अपने भैया को वह तनिक स्वस्थ दशा में देख सके। उत्तर में मधुसूदन ने संक्षेप में कहा, "सारी तैयारियाँ पहले हो ही चुकी है।" यह एकतरफ़ा निश्चय वज्र के समान ऐसा सुदृढ था कि उसमें कुमुदिनी की मर्म-वेदना के लिए तिल-भर भी स्थान नहीं था ! रात मे मधुसूदन ने बहुत चेष्टा की उससे बाते करने की, पर कुमुदिनी ने उसकी एक भी बात का कोई उत्तर नहीं दिया—पलंग के एक किनारे मुँह फेरकर लेटी रही।

पौ फटने के पहले ही, प्रभात के प्रथम पंछी की अस्फुट काकली सुनते ही वह पलंग छोड़कर बाहर निकल गई।

इधर विप्रदास सारी रात छटपटाता रहा। संध्या को उसी ज्वर की दशा में विवाह-सभा में जाने की धुन उस पर सवार हो गई। बहुत कहने-सुनने पर डॉक्टर ने उसे रोका। उसने कई आदमी भेजकर खबरें मँगाई। वे सब खबरें युद्ध के समय के समाचारों की तरह थी—अर्थात् अधिकांशतः बनावटी। विप्र-दास ने पूछा, "वह कब आया ? बाजे-वाजे की आवाज तो कुछ सुनने में आई नही।"

संवाददाता शिबू बोला, "हमारे जमाई बड़े समझदार हैं। आपकी बीमारी का समाचार पाते ही उन्होने सब बंद करवा दिया। बरातियों के पाँवों की आहट तक न सुनाई पड़े, ऐसा प्रबंध किया गया।"

"हाँ रे शिबू, खाने की चीजों में तो कोई कमी नहीं पडी ? मुझे सबसे अधिक चिंता उसी बात की थी, क्योंकि यहाँ तो कलकत्ता नहीं है !"

"कमी पड़ने की क्या बात उठाई हुजूर ने। न जाने कितनी सारी चीज़ें फेंक देनी पड़ीं। और भी बहुत-से लोगों को खिलाने योग्य सामान बचा हुआ है।"

"वे लोग संतुष्ट तो थे ?"

"एक भी शिकायत किसी के मुँह से नहीं सुनी गई। मैंने और भी तो कितनी ही शादियाँ देखी है, बरातियो के रौब-दाब से कन्या-पक्ष वालों को चक्कर आने लगता है। पर ये लोग ऐसे चुप है कि पता ही नहीं लगने पाता कि हैं भी या नही।"

विप्रदास ने कहा, "वे सब कलकत्ता के लोग है न, इसलिए शिष्टता जानते हैं। वे लोग जानते है कि जिस घर की लडकी को ले जाने के लिए वे आए हैं उन्हें अपमानित करना अपना ही अपमान करना है।"

"वाह, हुजूर ने क्या बात कही है। यह बात मैं उन लोगों को सुना दूंगा।

सुनकर वे बहुत खुश होंगे।"

कुमुदिनी कल शाम ही समझ गई थी कि भैया की बीमारी बढ रही है। तिस पर भी वह उनकी सेवा नही कर सकेगी, यह दुःख उसके भीतर जाल में फँसे पंछी की तरह फड़फड़ाने लगा। वह जानती थी कि उसके हाथों की सेवा उसके भैया के लिए दवा से भी बढ़कर है।

स्नान करके, देवता को फूल चढ़ाकर कुमुदिनी जब भैया के कमरे में गई तब तक सूरज नही निकला था। कठिन रोग के साथ बहुत समय तक लडने के बाद क्षणिक मुक्ति पाने पर जो अवसाद का वैराग्य आता है उससे विप्रदास का मन उस समय शिथिल हो रहा था। जीवन की आसक्ति, पारिवारिक चिंता सब उस समय उसके लिए शस्य-शून्य-भूमि की तरह धूसर हो रही थीं। रात-भर कमरे के सभी दरवाजे बंद थे। डॉक्टर ने सबेरे पूरब की ओर की खिडकी खोल दी थी। ओस से भीगे पीपल के पत्तों की ओट में आकाश की अरुण आभा धीरे-धीरे शुभ्र होती चली जा रही थी। सामने नदी मे महाजनी नावों के थिगरी लगे हुए बड़े-बड़े पाल उस लाल आकाश के नीचे फूल उठे। नौबत से करुण मे रामकली बज रही थी।

कुमुदिनी ने भैया की बग़ल में बैठकर अपने दो ठंडे हाथों में भैया के सूखे और गरम हाथ ले लिए। विप्रदास का टेरियर कुत्ता पलंग के नीचे उदास मन से चुपचाप लेटा हुआ था। ज्यों ही कुमुदिनी पलंग पर बैठी त्यों ही वह उठ खडा हुआ और अपने दो पाँव उसकी गोद में रखकर दुम हिलाने लगा, और अपनी करुण आँखों से देखता हुआ क्षीण, आर्त्त स्वर में न मालूम क्या प्रश्न करने लगा।

विप्रदास के मन के भीतर-ही-भीतर कोई एक चिंता-धारा चल रही थी, इसलिए सहसा बिना किसी सिलसिले के वह बोल उठा, "बहन, असल में कुछ भी नही है—कौन बड़ा है कौन छोटा, कौन ऊपर है कौन नीचे, ये सब बनाई हुई बातें हैं। फेन के बीच में बुदबुदों में से किसका स्थान कहाँ पर है, इससे क्या आता-जाता है? अपने भीतर स्वयं ही सहज भाव से रहेगी तो तेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।"

"मुझे आशीर्वाद दो भैया, मुझे आशीर्वाद दो," कहकर कुमुदिनी दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रुलाई को बरबस दबाने लगी।

विप्रदास तकिए पर टेक लगाकर तनिक उठा और कुमुदिनी का मुख नीचे की ओर करके उसने उसका माथा चूम लिया।

डॉक्टर ने कमरे में घुसते ही कहा, "कुमु बहन, इस समय उन्हें तनिक शांत

रहने की आवश्यकता है ।"

कुमुदिनी ने रोगी का तकिया दबा-दबूकर ठीक किया, उनके शरीर के ऊपर गरम कपड़ा खीच दिया, पास वाली तिपाई को झाड़कर साफ़ किया, और तब भैया के कान के निकट मृदु स्वर में बोली, "स्वस्थ हो जाने पर कलकत्ता चले आना, भैया ! वहाँ तुम्हें देख पाऊँगी ।"

विप्रदास अपनी दो बड़ी-बड़ी स्निग्ध आँखों से कुमुदिनी के मुख की ओर टकटकी बाँधे रहा । उसके बाद बोला, "कुमू, पूरब का बादल जाता है पच्छिम मे, और पच्छिम का बादल जाता है पूरब की ओर; यह सब हवा के कारण होता है । संसार मे वही हवा बह रही है । बादल की तरह ही इसे भी सहज और स्वाभाविक मानकर चलना होगा, बहन ! अब से हम लोगों की चिता अधिक न करना । जहाँ जा रही है वहाँ लक्ष्मी के आसन पर जमी रहना, यह मेरे समस्त मन का आशीर्वाद है । तुझसे हम लोग और कुछ नहीं चाहते ।"

कुमुदिनी भैया के पाँवों के पास अपना सिर रखे लेटी रही । "आज से मुझसे और कुछ नही चाहना है, अब यहाँ के प्रतिदिन की जीवन-यात्रा में मेरा कोई हाथ ही नहीं रहेगा"—एक क्षण मे इतने बडे विच्छेद की बात मन ग्रहण नही कर पाता । आँधी जब नाव को किनारे से खीच ले जाना चाहती है तब लगर जिस प्रकार मिट्टी को जकड़े रहने का प्रयत्न करता है, भैया के पाँवों के नीचे कुमुदिनी का यह वैसा ही व्यग्रता का बंधन है । डॉक्टर ने फिर आकर धीरे से कहा, "अब और अधिक नही, बहन !" और उसने अपनी आँसुओं से गीली पलकें पोंछी । कमरे से बाहर निकलकर कुमुदिनी दरवाज़े के बाहर वाली चौकी पर जा बैठी और मुँह आँचल से ढाँपकर चुपचाप रोती रही । सहसा उसे याद आया कि भैया के घोडे 'बेसी' को अपने हाथ से खिलाने के लिए उसने कल रात गुड़ मिले हुए आटे की रोटी तैयार करके रख छोड़ी थी । सईस आज सुबह उसे भीतरी बगीचे में रख आया था । वहाँ जाकर कुमुदिनी ने देखा, घोड़ा आमड़े के पेड़ के नीचे घास खा रहा है । दूर ही से कुमुदिनी के पाँवों की आहट सुनकर उसने कान खड़े कर लिए और उसे देखते ही हिनहिनाने लगा । कुमुदिनी बायाँ हाथ उसके कंधे पर रखकर दाएँ हाथ से रोटी उसके मुँह के निकट ले जाकर उसे खिलाने लगी । वह खाते-खाते अपनी दो बड़ी-बड़ी स्निग्ध आँखों से कुमुदिनी के मुँह की ओर कनखियों से देखने लगा । जब 'बेसी' खा चुका तब उसकी दो आँखो के बीच उसके प्रशस्त कपाल को चूमकर कुमुदिनी दौड़ती हुई चली गई ।

१८

विप्रदास को यह निश्चित विश्वास था कि मधुसूदन एक बार आकर उससे भेट कर जायगा। जब वह नहीं आया तब विप्रदास समझ गया कि दो परिवारों के बीच विवाह का यह संबंध ही परस्पर-विच्छेद का खड्ग होकर आया। अपनी बीमारी की अत्यधिक थकान में उसने इस बात को भी सहज रूप मे स्वीकार कर लिया। डॉक्टर को पुकारकर उसने पूछा, "थोडी देर के लिए क्या मैं इसराज बजा सकता हूँ ?"

डॉक्टर बोला, "नहीं आज रहने दो !"

"तब कुमू को बुला दो। वही थोड़ा-सा बजाकर सुनाए ! इसके बाद फिर कब उसका बजाना सुन सकूँगा, कौन जाने।"

डॉक्टर ने कहा, "आज सुबह नौ बजे की गाड़ी से उन्हे चले जाना होगा। नही तो सूर्यास्त के पहले कलकत्ता न पहुँच पायँगे। इसलिए कुमू के पास अब समय नहीं है।"

विप्रदास लंबी साँस खीचता हुआ बोला, "नही, यहाँ अब उसका समय समाप्त हो गया। उन्नीस बरस वह यहाँ काट चुकी है, अब एक घण्टा भी नही बिता सकेगी।"

विदाई के समय पति-पत्नी एक साथ प्रणाम करने आए। मधुसूदन शिष्टता प्रदर्शित करता हुआ बोला, "आपका स्वास्थ्य तो अच्छा नही दीखता।"

विप्रदास उसकी इस बात का कोई उत्तर न देकर बोला, "भगवान् तुम दोनो का मंगल करें।"

"भैया, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना," कहकर और एक बार विप्रदास के चरणों पर लोटकर कुमुदिनी रोने लगी।

हुलू-ध्वनि, शंख-ध्वनि, ढोल, घंटा, नौबत आदि के सम्मिलित शब्द से जैसे साइक्लोन की-सी आँधी उठी। उसके बाद वे लोग चले गए।

जब दोनों एक-दूसरे के आँचल और चादर से बँधे चले जा रहे थे तब विप्रदास को वह दृश्य, न जाने क्यों, वीभत्स लगा। पुराने इतिहास के अनुसार चंगेजखाँ और तैमूर ने असंख्य मनुष्यों के कंकालों के स्तंभ खड़े करवाए थे। किन्तु वह जो आँचल और चादर की ग्रन्थि है, उसके द्वारा रचित जीवन और मृत्यु का जय-तोरण यदि नापा जाय तो उसका शिखर किस नरक से जाकर टकरायगा ! किंतु आज यह कैसी भावना उसके मन में उदित हुई !

पूजा-अर्चना के सम्बन्ध में विप्रदास के मन में कभी किसी प्रकार का उत्साह नही रहा। किंतु आज वह हाथ जोड़कर मन-ही-मन प्रार्थना करता रहा।

सहसा एक बार चौकता हुआ-सा बोला, "डॉक्टर, तनिक दीवान जी को तो बुलाओ!"

विप्रदास को अचानक याद आया, विवाह तय होने के कुछ दिन पहले जब सुबोध को रुपया भेजने के संबन्ध में उसका मन अत्यन्त उद्विग्न था और हिसाब का बहीखाता देखते-देखते वह बहुत थक गया था और दिन के ग्यारह बज चुके थे, तब एक बेढंगा-सा आदमी आ खड़ा हुआ था। उसका जीर्ण मुख कुछ दिनों से बिना बनी दाढी के बालो से कंटकित हो रहा था। कंकाल की तरह उसका हाथ था। वह एक मैली चादर, एक छोटी-सी धोती और फटी चप्पल पहने था। नमस्कार करने के बाद बोला, "बडे बाबू, मुझे पहचान रहे हैं क्या?"

विप्रदास ने एक बार गौर से उसे देखा, फिर कहा, "कौन, वैकुण्ठ?"

जिस स्कूल में विप्रदास बचपन में पढता था उसीसे जुडे हुए एक कमरे में वैकुण्ठ स्कूली पुस्तके, कापियाँ. कलम, चाकू, गेद-बल्ला, लट्टू आदि; और साथ ही पुड़ियो मे भरकर मूँगफली भी बेचता था। उसके कमरे मे स्कूल के बडे लड़कों का अड्डा जमता था। अद्भुत किस्म की गप्पबाजी करने में उसका जोड कोई नही था।

"तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई?" विप्रदास ने पूछा।

कई वर्ष पहले उसने एक सम्पन्न परिवार में अपनी लड़की ब्याही थी। दहेज की कोई विशेष आवश्यकता न होने के कारण ही वर को अधिक दहेज देना पडा। बारह सौ रुपये और अस्सी तोला सोने का गहना। एक-मात्र दुलारी लड़की होने के कारण ही वह मरे मन से राजी हुआ था। एक साथ ही सब रुपया पा नही सके, इसलिए लडकी को कष्ट दे-देकर उन्होने उसके बाप का खून चूसा है। उसके पास जितना भी संबल था वह सब समाप्त हो गया, पर अभी अढ़ाई सौ रुपया देना बाकी है। इस बार लडकी के अपमान की सीमा नही रही। निपट असह्य होने के कारण ही वह भागकर अपने बाप के घर चली आई थी। जेल के कैदी ने जेल का नियम भंग किया था, इससे उसका अपराध और बढ गया। ऐसी स्थिति में अढाई सौ रुपया देकर यदि किसी तरह लड़की को बचा सके तो बाप को मरने की बात सोचने की फुरसत मिले।

विप्रदास म्लान भाव से मुस्कराया। यथेष्ट परिमाण मे सहायता की बात सोचने का भी अवसर उस समय नही था। कुछ समय तक दुविधा में पडा रहा। उसके बाद बक्स खोलकर, थैली झाड़कर, दस रुपये का नोट लाकर उसे

देते हुए बोला, "और भी दो-चार जगहों से चेष्टा करके देखो ! मुझमें अधिक सामर्थ्य नही है।"

वैकुंठ को उस बात पर तनिक भी विश्वास नही हुआ। चप्पलों को अप्रसन्न भाव से फटफटाता हुआ चला गया।

उस दिन की वह बात विप्रदास एकदम भूल ही गया था। आज सहसा उसे याद आई। दीवान जी को बुलाकर उसने आदेश दिया कि आज ही वैकुंठ के लिए ढाई सौ रुपया भेजा जाना चाहिए। दीवान जी चुप रहकर सिर खुजलाने लगे। जिद्दाजिद्दी में विवाह में जो खर्च हुआ वह तो किसी प्रकार निभ गया, पर अभी कई दिनों तक उसका हिसाब जो चुकाना पड़ेगा ! ऐसी दशा में ढाई सौ रुपये का अंक बहुत बड़ा बनकर दीवान जी के सामने आया।

दीवान जी के मुख का भाव देखकर विप्रदास ने अपनी उँगली से हीरे की अँगूठी निकाली और बोला, "छोटे बाबू के नाम जो रुपया मैने बैंक मे जमा कर रखा है उसमें से ढाई सौ रुपया निकाल लो, और उसके बदले मे मेरी यह अँगूठी बधक रख लो ! वैकुंठ को रुपया कुमू के नाम से भेजना होगा।"

१९

विवाह के लंकाकांड का अंतिम अध्याय अभी शेष था।

यह बात तय हुई थी कि सबेरे 'कुशंडिका' नामक संस्कार पूरा करके तब वर और कन्या यात्रा करेंगे। नवगोपाल ने उसके लिए सारी तैयारियाँ कर रखी थीं। ऐसे समय राजाबहादुर विप्रदास के कमरे से विदा होने के बाद बोल बैठे, "कुशंडिका होगी वर के यहाँ—मधुपुरी में।"

इस प्रस्ताव का दुस्साहस नवगोपाल को असह्य मालूम हुआ। और कोई होता तो इसी बात पर आज फौजदारी हो गई होती। फिर भी नवगोपाल ने जिस तीखी भाषा के प्रयोग द्वारा आपत्ति जताई वह मार-पीट के निकट पहुँच गई।

अन्तःपुर में इस अपमान को बड़े तीखे रूप में अनुभव किया गया। दूर-दूर से आत्मीय-स्वजन आये हुए थे, जिनमें शत्रुता रखने वालों का अभाव नही था। उन सबके सामने इस तरह का अन्याय ! क्षेमा फूफी मुँह बिचकाकर बैठी रहीं। जब वर-कन्या आशीर्वाद लेने आए तब उनके मुख से आशीर्वाद जैसे

निकलना ही नही चाहता था। सबने कहा कि यह काम यदि कलकत्ता में चुका लिया जाता तो फिर किसी को कुछ बोलने के लिए न रह जाता। मायके के अपमान से कुमुदिनी अत्यन्त संकुचित हो गई। उसे ऐसा लगने लगा जैसे अपने पुरखो के निकट वही अपराधिनी है। मन-ही-मन अपने इष्ट देवता के प्रति मान जताती हुई कहने लगी, "मैने तुम्हारे निकट क्या अपराध किया जिसके लिए मुझे इतना बड़ा दण्ड दे रहे हो ? मैं तो तुम्ही पर विश्वास करके सब-कुछ स्वीकार किये बैठी हूँ।"

वर और कन्या गाड़ी पर बैठे। मधुसूदन कलकत्ता से जो बैंड साथ में लाया था उसने ऊँचे स्वर में नाच का राग अलापना शुरू कर दिया। एक बहुत बड़े शामियाने के नीचे होम का आयोजन किया गया। जो अँगरेज स्त्री-पुरुष अतिथि के रूप मे आये हुए थे उनमें से कुछ तो गद्दी वाली कुर्सियों पर बैठकर और कुछ निकट आकर झुक-झुककर देखने लगे। इसी बीच उनके लिए चाय-बिस्कुट का भी प्रबन्ध किया गया। एक बडी तिपाई पर एक बहुत बडा 'वैडिग केक' भी सजाकर रख दिया गया था। अनुष्ठान समाप्त होने पर जब वे लोग 'कांग्रेचुलेट' करने लगे तब कुमुदिनी का मुख लज्जा से लाल हो आया। वह सिर नीचा किये खड़ी रही। एक मोटे क़द की प्रौढ़ा अँगरेज़ महिला ने उसकी बनारसी साड़ी का आँचल ऊपर उठाकर उसके मुख का परीक्षण किया। उसके हाथ के खूब मोटे बाजूबदों को घुमा-फिराकर देखने में उसे अच्छे कौतुक का अनुभव हुआ। अँगरेजी में उसने उसकी प्रशंसा भी की। अनुष्ठान के संबध में एक दल ने कहा, "How interesting !" और दूसरा दल बोला, "Isn't it ?"

इसी मधुसूदन का व्यवहार कुमुदिनी ने अपने भैया तथा दूसरे आत्मीयों के साथ देखा था, आज उसीका व्यवहार देखा अँगरेज बन्धुओं के बीच में वह अत्यन्त विनीत भाव से शिष्टता दिखाता हुआ गद्गद् हो रहा था, और मुक्त मुस्कान से उसका चेहरा खिल उठा था। जिस प्रकार चन्द्रमा मे एक ओर प्रकाश और दूसरी ओर चिर-अन्धकार रहता है, मधुसूदन के चरित्र मे भी वही बात देखी जाती थी। अँगरेज़ों के सामने उसका माधुर्य पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश की तरह उज्ज्वल और स्निग्ध दिखाई देता था, और उसके व्यक्तित्व का दूसरा रूप दुर्गम, दुर्दृश्य और जमी हुई बर्फ़ की निश्चलता से दुर्भेद्य लगता था।

सैलून में मधुसूदन अँगरेज़ बन्धुओं के साथ बैठा और कुमुदिनी दूसरे रिज़र्व किये हुए डिब्बे में स्त्रियों के बीच बैठी हुई थी। उन स्त्रियों में से कोई उसका हाथ पकड़कर दबाकर देखती थी और कोई ठुड्डी पकड़कर उसके मुख की छवि

का विश्लेषण करती थी; कोई कहती थी लम्बी है, और कोई कहती थी दुबली है। कोई बड़ी भलमनसाहत के साथ पूछती थी, "तुम शरीर मे क्या रंग मलती हो ? तुम्हारे भाई ने विलायत से कुछ भेजा है शायद ?" सभी ने परख करने के बाद यह राय जाहिर की कि उसकी आँखे बड़ी नही है और उसके पाँव स्त्रियों के हिसाब से बहुत बड़े है। प्रत्येक गहने को हिला-डुलाकर देखा गया और यह निर्णय किया गया कि पुरानी चलन का गहना है, वजन में भारी है और सोना खरा है—पर वाह रे फ़ैशन !

जिस गाडी मे कुमुदिनी बैठी थी उसमे प्लेटफार्म की उलटी ओर वाली खिडकी खुली थी। वह उसी ओर देखती हुई यह चेष्टा करने लगी कि उन लोगो की बातें सुनाई न पड़े। उसने देखा, एक कुत्ता, जिसका एक पॉव कटा था, लॅगड़ाता हुआ मिट्टी सूँघता जाता है। वह सोचने लगी, काश कोई खाने की चीज़ उसके पास होती। पर कोई चीज़ नही थी। वह मन मे सोचने लगी, जो एक पॉव उसका कट गया है उसीके अभाव से उसके लिए जो कुछ भी आसान था वह कठिन हो गया है। इसी समय उसने सुना, सैलून-गाड़ी के सामने खडे होकर एक भला आदमी कह रहा था, "देखिए, इस किसान-लडकी को कुलियो का एजेण्ट आसाम के चाय के खेतो मे काम करने के लिए भगाए लिये जा रहा था, वह भागकर चली आई है। ग्वालन्द तक के लिए टिकट का रुपया इसके पास है। इसका घर डुमरांव मे है। यदि आप लोग सहायता करें तो वह बच जाय।" सैलून-गाड़ी से बडे ज़ोर से डाँटने की आवाज कुमुदिनी ने सुनी। वह रह न सकी। दाई ओर की खिड़की खोलकर, अपने गुरियो से जड़े बटुवे को टटोलकर दस रुपये उसने निकाले और लड़की के हाथ मे थमाकर खिड़की बंद कर दी। यह देखकर एक स्त्री बोल उठी, "हमारी बहू का हाथ बड़ा दराज़ है !" दूसरी स्त्री बोली, "दराज-वराज कुछ नहीं यह दरवाजा है—लक्ष्मी को विदा करने का !" तीसरी ने कहा, "रुपया उड़ाना सीखा है, रखना सीखती तो काम आता।" उन सबकी राय में यह ओछापन था—जिस लड़की को बाबुओं ने एक भी पैसा नहीं दिया उसे इन्होंने खट से दस रुपये दे दिए, यह धृष्टता नही तो और क्या है ! उन्होंने सोचा कि चटर्जी और घोषाल-वंश वालों के बीच जो पुश्तैनी तनातनी चली आती है यह भी संभवतः उसीका अंग है।

तभी उन्हीं में से एक साँवले रंग की मोटी-सी लड़की, जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं, मुख पर स्नेह का भाव झलक रहा था और जो कुमुदिनी की समवयस्का लगती थी, उसके पास आकर बैठ गई। धीरे-से उसके कानों में बोली, "जी कैसा कर रहा है, बहन ? इन लोगों की बातों पर ध्यान न देना; दो दिन इसी

तरह आपस मे चिकोटी काटती और बकती रहेंगी, इसके बाद गले में विष उतरते ही ठंडी पड़ जायँगी।" यह लड़की रिश्ते मे कुमुदिनी की मँझली देवरानी लगती थी—वह नवीन की स्त्री थी। उसका नाम था निस्तारिणी। सभी उसे 'मोती की माँ' कहकर पुकारते थे।

मोती की माँ बोली, "जिस दिन हम लोग नूरनगर पहुँचे उस दिन स्टेशन पर मैने तुम्हारे भैया को देखा।"

कुमुदिनी चौक उठी। उसके भैया स्टेशन मे वर और बरातियो का स्वागत करने गए थे, यह बात उसे पहली बार मालूम हुई।

"कैसे सुन्दर लगते है वह ! ऐसा रूप मैंने कभी इन आँखो से नही देखा। कीर्त्तन मे जो वह गीत सुना था—

गोरार रूपे लागल रसेर बान
भासिये निये याय नदीयार पुरनारीर प्राण

मुझे उस समय उसीकी याद आई।"

पल में कुमुदिनी का मन स्नेह से पिघल गया। ओट में मुँह करके वह चुपचाप खिड़की से बाहर की ओर देखती रही। बाहर का मैदान, वन, आकाश सब आँसुओ के जाल से अस्पष्ट हो गए।

मोती की माँ को यह समझने में देर न लगी थी कि कुमुदिनी की पीड़ा ठीक किस जगह पर है, इसलिए कई प्रकार से वह उसके भैया की बात चलाती रही। उसने पूछा कि उनका ब्याह हो गया या नही।

कुमुदिनी ने कहा, "नही।"

मोती की माँ बोली, "बलिहारी है, भई ! ऐसा देवता का-सा रूप पाया है और अभी तक घर खाली है ! जाने किस भाग वाली को मिलेगा ऐसा वर !"

कुमुदिनी सोच रही थी—"भैया उस दिन समस्त अभिमान बहाकर मेरे ही कारण स्टेशन गए होंगे। और एक ये लोग भी हैं जो एक बार भी उनसे मिलने नहीं गए ! मात्र रुपयो के बल पर मेरे भैया-जैसे आदमी की भी अवज्ञा करने का साहस उन्हें हुआ। शायद इसी कारण उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया।'

व्यर्थ के आक्षेप के साथ बार-बार मन-ही-मन कहने लगी, 'भैया स्टेशन गए क्यों ? क्यो उन्होने अपने को इस तरह नीचा किया ? मेरे लिए न ? तब मेरी मृत्यु ही क्यों न हो गई ?'

जो घटना घट चुकी है, जिसे अब पलटा नही जा सकता, उसीको लेकर उसका मन सिर पीटने लगा। उसे रह-रहकर भैया के रोग से क्लांत, शांत मुख,

और आशीर्वाद से भरी स्निग्ध-गंभीर आँखो की याद आने लगी।

२०

जब रेलगाडी हवड़ा पहुँची, तब दिन के प्रायः चार बजे थे। वर और कन्या ग्रंथिबद्ध होकर ब्रूहम-गाडी पर जाकर साथ-साथ बैठ गए। दिन के प्रकाश में कलकत्ता की असंख्य आँखों की दृष्टि से कुमुदिनी का शरीर और मन सिकुड़ से गए। पिछले उन्नीस वर्षो के कौमार्य जीवन में जो शुचिता-बोध उसके अंग-अंग में घुला हुआ है वह कर्ण के सहज कवच के समान है। उसे वह यों ही आसानी से उपाड़कर फेंक देगी? उसके लिए वैसा ही यन्त्र चाहिए, जिससे वह कवच एक पल मे अपने-आप छिन्न होकर गिर पडता है। किंतु वह यन्त्र उसके हृदय में अभी तक बज नही पाया। बगल में जो व्यक्ति बैठा हुआ है, मन के भीतर तो वह आज भी बाहर का ही आदमी है। अपना जन बनने की दिशा में उसकी ओर से तो अभी तक केवल बाधा ही चली आ रही है। उसके भाव में, व्यवहार में जो एक रूढता है उसने तो अभी तक कुमुदिनी के मन को ठेल-ठेलकर दूर ही रहने को बाध्य कर रखा है।

इधर मधुसूदन के लिए कुमुदिनी एक नया आविष्कार बनकर आई। स्त्री-जाति का परिचय पाने, उसे जानने का अवकाश अभी तक इस काम-काजी आदमी को बहुत कम ही मिला था। उसके पण्य-जगत् के धंधों की भीड़ के बीच में पण्य-नारी की भी छूत उसे कभी लग नही पाई। किसी भी स्त्री ने उसका मन अभी तक विचलित ही नहीं किया हो, ऐसी बात नही है; पर भूकंप तक ही घटना घटी है, इमारत खंडित नही हुई। मधुसूदन ने स्त्रियों का जो थोड़ा-बहुत परिचय पाया था वह साधारण स्त्रियों से। वे घर-गिरस्ती का काम करती है, झगड़ती है, आपस में कानेफूसी करती है और अत्यंत तुच्छ कारण से रोआ-पीटी भी मचाने लगती हैं। मधुसूदन के जीवन में उनका संपर्क नितान्त सामान्य रहा है। उसकी अपनी पत्नी भी परिवार के उसी नगण्य विभाग में स्थान पायगी और दैनिक गृहस्थ-जीवन की तुच्छता से घिरकर, घर का चारदीवारी की ओट में, पुरुषों के सकेत द्वारा परिचालित साधारण लुगाइयों का-सा जीवन बितायगी—इससे अधिक उसने कुछ सोचा नहीं था। स्त्री के साथ व्यवहार में भी कलात्मक निपुणता की आवश्यकता होती है, उसमे भी पाने और खोने की एक जटिल समस्या

छिपी हो सकती है, यह बात उसके हिसाब में कुशल सतर्क मस्तिष्क के एक कोने में भी स्थान न पा सकी। वनस्पति की अपनी दृष्टि से तितली बेकार और फ़ालतू है, फिर भी उसे जिस प्रकार तितली का संसर्ग स्वीकार कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार मधुसूदन ने भी भावी पत्नी के सबंध में सोचा था।

तभी विवाह के बाद उसने पहली बार कुमुदिनी को देखा। एक प्रकारका सौन्दर्य होता है जो दैव के आविर्भाव-सा लगता है। प्रतिक्षण ही वह प्रत्याशा के परे लगने लगता है। कुमुदिनी का सौन्दर्य भी उसी श्रेणी का था। वह भोर के शुक्रतारे की तरह लगता था, जो रात की दुनिया से स्वतंत्र और प्रभात के संसार के उस पार है। मधुसूदन अपने अवचेतन मन में, अपने अज्ञान मे, अस्पष्ट रूप से, कुमुदिनी को अपने से श्रेष्ठ समझने लगा। कम-से-कम, उसके मन मे यह भावना तो जगी कि उसके साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, कौन बात किस तरह से कहने से सगत लगेगी।

'क्या कहकर बातचीत शुरू करे,' यह सोचते-सोचते सहसा उसने कुमुदिनी से पूछा, "इस ओर सें धूप आ रही है, न ?"

कुमुदिनी ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। मधुसूदन ने दाईं ओर का पर्दा खींच लिया।

कुछ देर तक फिर सन्नाटा छाया रहा। सहसा वह फिर बोल उठा, "ठण्ड तो नही लग रही ?" कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही, सामने वाली सीट पर से विलायती कबल खीचकर उसने उसे कुमुदिनी के और अपने पाँवो के ऊपर डाल लिया और इस प्रकार उसने उसके साथ सम-आवरण की सहयोगिता स्थापित की। शरीर और मन पुलकित हो उठे। कुमुदिनी तनिक चौंककर कबल को हटाने जा रही थी, पर फिर उसने अपने को रोका और सीट के एक किनारे हटकर बैठ गई।

कुछ समय इसी तरह बीत गया। सहसा मधुसूदन की दृष्टि कुमुदिनी के हाथ की ओर गई।

"देखूँ, देखूँ," कहकर सहसा उसका बायाँ हाथ खीचकर वह अपनी आँखों के पास तक ले गया और फिर उसने पूछा, "तुम्हारी उँगली मे यह किस चीज़ की अँगूठी है ? यह तो नीलम नज़र आता है।"

कुमुदिनी चुप हो रही।

"देखो, नीलम मुझे पसंद नही है; उसे तुम्हे उतारना पड़ेगा !"

कभी मधुसूदन ने एक नीलम ख़रीदा था, उस साल उसका गधा-बोट मे

लदा हुआ पटसन हवड़ा-पुल से टकराकर डूब गया था। तब से नीलम उसे सह्य नहीं होता।

कुमुदिनी ने हाथ को धीरे-धीरे छुड़ाने की चेष्टा की। पर मधुसूदन ने छोड़ा नही। वह बोला, "इसे मै निकाले लेता हूँ।"

कुमुदिनी चौक उठी। बोली, "नही, रहने दीजिए।"

एक बार शतरंज खेलने मे उसकी जीत हुई थी, तब उसके भैया ने उसे अपने हाथ की अँगूठी पुरस्कार के रूप मे दी थी।

मधुसूदन मन-ही-मन हँसा। सोचने लगा, 'इस अँगूठी के प्रति इसके मन में अद्भुत लोभ देखता हूँ।' इस बात पर अपने साथ कुमुदिनी के साधर्म्य का परिचय पाकर उसके मन को कुछ आराम बोध हुआ। उसने सोचा, समय-असमय माँग के मोती, कण्ठ-हार, कंगन, बाजूबंद आदि के माध्यम से अभिमानिनी के साथ व्यवहार का सीधा पथ मिल सकेगा। इस पथ मे मधुसूदन का प्रभाव माने बिना उपाय नही है, भले ही उसकी उम्र कुछ अधिक हो चुकी हो।

अपने हाथ से बहुत बडे कमलहीरे की एक अँगूठी खोलते हुए मधुसूदन ने मुस्कराकर कहा, "डरने की कोई बात नही है, इसके बदले एक दूसरी अँगूठी मै तुम्हें अभी पहनाए देता हूँ।"

कुमुदिनी से अब अधिक न रहा गया—हल्के झटके से उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। इस बार मधुसूदन खीझ उठा। शासन का खंडन वह सह नहीं सकता था। रूखे गले से उसने कुछ जोर के साथ कहा, "देखो, यह अँगूठी तुम्हें उतारनी ही होगी।"

कुमदिनी सिर नीचा किये चुप बैठी रही। उसका मुख लाल हो उठा था।

मधुसूदन फिर बोला, "सुनती हो? मै कह रहा हूँ कि उसे उतार देना ही अच्छा है। लाओ, मुझे दो!" कहकर वह हाथ खींचने पर उतारू हो गया।

कुमुदिनी ने हाथ हटाते हुए कहा, "मै उतारती हूँ।"

और उसने वह अँगूठी उतार डाली।

"लाओ, उसे मेरे हाथ मे दो!"

वह बोली, "इसे मै स्वयं ही रख लूँगी।"

मधुसूदन चिढ़कर चिल्ला उठा, "उसको रखकर लाभ क्या है? तुम मन मे सोच रही होगी कि यह बड़ी कीमती चीज है! किसी तरह भी तुम इसे पहनने नही पाओगी, यह कहे देता हूँ।"

कुमुदिनी बोली, "मै इसे पहनूँगी नहीं।" कहकर उसने गुरियों वाले बटुए के भीतर उसे डाल लिया।

"क्यों ? इस साधारण-सी चीज़ के लिए तुम्हारे मन मे इतना दर्द क्यों है ? तुम्हारी जिद तो मामूली नही मालूम होती ।"

मधुसूदन की आवाज़ बड़ी कर्कश थी; कान मे इस तरह बजती थी जैसे बालूदार खुरदरा काग़ज घिसा जा रहा हो। कुमुदिनी का सारा शरीर जैसे जर्जर हो उठा।

"यह अँगूठी तुम्हे किसने दी ?"

कुमुदिनी चुप रही।

"तुम्हारी माँ ने तो नही दी ?"

जवाब कुछ-न-कुछ देना ही पड़ेगा, यह सोचकर उसने अस्फुट स्वर मे कहा, "भैया ने।"

'भैया ने ! तभी यह हाल है !' भैया की स्थिति क्या है, यह मधुसूदन खूब अच्छी तरह से जानता है। उसी भैया की यह अँगूठी है, शनि के सेंध काटने वाले औजार की तरह ! इस घर मे इसे आने नही दिया जा सकता। किन्तु इससे भी अधिक उसे यह बात कोंच रही थी कि अब भी कुमुदिनी के लिए उसके भैया का ही महत्त्व अधिक है। यह बात स्वाभाविक होने के कारण सह्य होगी ही, ऐसा नहीं है। किसी पुराने ज़मींदार को जब कोई धनी महाजन नीलाम में ख़रीद लेता है और लोग पुरानी व्यवस्था की याद मे आहे भरने लगते है, तब नये मालिक के मन में जो जलन पैदा होती है, यह भी उसी तरह है। मधुसूदन सोचने लगा कि इसे यह बात जितनी जल्दी हो सके समझा देनी चाहिए कि आज से उसका एक-मात्र मै ही हूँ। इसके अतिरिक्त शरीर मे हल्दी पड़ने के रोज वर का जो अपमान हुआ है उसमे विप्रदास का कोई हाथ नही है, इस बात पर मधुसूदन विश्वास नहीं करना चाहता था—यद्यपि नवगोपाल ने विवाह के दूसरे ही दिन उससे कहा था, "भाई साहब, विवाह वाले घर में अपनी मछली-हट्टा वाली आढ़त से जो आचार-व्यवहार आमद किया था, भैया को उसका तनिक भी आभास न देना। उन्हें इन सब बातो की कुछ भी खबर नही, उनकी तबीयत बहुत खराब है।"

अँगूठी की बात उस समय उसने स्थगित कर दी, पर उसे मन मे रख लिया।

इधर रूप के अतिरिक्त और एक कारण से कुमुदिनी की दर सहसा बढ़ गई थी। नूरनगर में ही ठीक विवाह के दिन मधुसूदन को इस आशय का तार मिला था कि अलसी के निर्यात मे प्रायः बीस लाख रुपया लाभ हुआ है। इस पर संदेह नही रहा कि यह नई बहू के ही भाग्य के ज़ोर से हुआ है। पत्नी के भाग्य

में धन है, इसका प्रमाण हाथों-हाथ मिल गया। इसी कारण कुमुदिनी को गाड़ी के भीतर बगल मे बिठाकर उसके मन में यह संतोष था कि भावी मुनाफ़े की एक पक्की विधिदत्त दस्तावेज़ लेकर वह घर चल रहा है। वर्ना आज की इस ब्रूहम-रथयात्रा मे कोई दुर्घटना घट सकती थी।

२१

राजा की उपाधि मिलने के बाद से कलकत्ता में घोषाल-लोगों के मकान के दरवाजे पर खुदा हुआ है 'मधु-प्रासाद'। उस प्रासाद के लोहे के फाटक के एक किनारे आज नौबत बज रही है, और बाग के एक तंबू में बज रहा है बैंड। फाटक के ऊपर अर्द्ध-चद्राकार मे लिखा हुआ है 'प्रजापतये नमः'। संध्या को ये अक्षर प्रकाश-रेखाओं से समुज्ज्वल होगे। फाटक से मकान तक जो कंकर बिछा हुआ रास्ता गया है उसके दोनों ओर झाड़ के पत्तो और गेंदे की मालाओं से शोभा-सज्जा देखी जा सकती है। मकान के पहले खंड के ऊँचे फ़र्श तक चढने की सीढ़ियों में लाल कपड़ा बिछा हुआ है। आत्मीय बंधुओं के बीच में से होकर वर-कन्या की गाड़ी निर्दिष्ट स्थान पर रुकी। शंख, उलूध्वनि, ढोल, घण्टा, नौबत, बैंड आदि सभी एक साथ बज उठे। लगता था, जैसे दस-पन्द्रह आवाज वाली मालगाड़ियाँ एक स्थान पर आकर भिड़ गईं। मधुसूदन की कोई एक दूर के रिश्ते की बूढ़ी दादी आई हुई थी। उनकी माँग जितनी चौड़ी थी उतना ही मोटा सिन्दूर उस पर पुता था। वे लाल रंग की चौडी किनारी वाली साड़ी पहने थी; उनके मोटे हाथ में सोने के मोटे-मोटे कंगन और शंख की चूड़ियाँ थीं। उन्होंने एक चाँदी के लोटे में पानी लेकर उसे बहू के पैरों मे छिड़ककर आँचल से पोंछ दिया और फिर बहू के हाथों में सुहाग के चिह्न के रूप में लोहे का कड़ा पहना दिया। उसके बाद बहू के मुँह में थोड़ा-सा शहद डालती हुई बोली, "इतने दिनों बाद हमारे नीले आकाश में पूर्णिमा का चंद्रमा दिखाई दिया, नीले तालाब में खिला सोने का कमल।"

वर और कन्या गाड़ी से उतरे। युवक अतिथियो की दृष्टि में ईर्ष्या भरी हुई थी। एक बोला, "दैत्य स्वर्ग को लूटकर सोने की जंज़ीर में बँधी हुई इस अप्सरा को ले आया है।" दूसरा बोला, "पुराना जमाना होता तो ऐसी लड़की की खातिर राजा-राजा में लड़ाई छिड़ जाती, पर आज अलसी की आढ़त के रुपयों से ही

सारा काम बन गया। कलियुग में देवता लोग भी अरसिक हो जाते हैं। भाग्य-चक्र के सभी ग्रह-नक्षत्र वैश्यवर्ण हो गए है।"

उसके बाद वरण, स्त्री-आचार आदि अनुष्ठान समाप्त होते-होते जब संध्या हो आई तब कालरात्रि के लिए वरवधू अलग-अलग सोने चले गए।

कुमुदिनी को अपनी एक बडी बहन के विवाह की याद थी। पर अपने घर में उसने किसी नई बहू को आते नही देखा था। यौवनारम्भ के पहले से ही वह कलकत्ता चली आई थी—भैया के निर्मल स्नेह के घेरे में घिरी हुई। बालिका के मन का कल्पना-लोक साधारण ससार के मोटे साँचे में गढ़ा नहीं गया था। बाल्य-काल मे जब-जब वह पति की कामना से शिव की पूजा करती थी, तब-तब पति के ध्यान में उसने उसी महातपस्वी, रजत-गिरि-निभ शिव के ही दर्शन किये है। साध्वी नारी के आदर्श रूप मे वह केवल अपनी माँ को ही जानती थी। क्या स्निग्ध, शांत कमनीयता थी उनके व्यक्तित्व मे, कितना धैर्य, कितना दुःख, कितनी देव-पूजा की लगन, मंगलाचरण और अक्लात सेवा पाई जाती थी! दूसरी ओर अपने पति के प्रति व्यवहार की त्रुटि उनके चरित्र के एक दूसरे पहलू पर प्रकाश डालती थी, उसके बावजूद उनका वह चरित्र औदार्य में महान् और पौरुष में दृढ़ था, उसमे हीनता या कपट का लेश भी नही था; जो एक विशेष मर्यादा-बोध उनमें पाया जाता था वह जैसे सुदूर पौराणिक युग के आदर्श के साँचे मे गढ़ा था। उनके जीवन में प्रतिदिन यही बात प्रमाणित होती थी कि प्राणों की भी अपेक्षा मान बड़ा है, और अर्थ की अपेक्षा ऐश्वर्य महत् है। वह और उनकी ही कोटि के लोग बडी आन वाले थे। उनका सिद्धांत था अपनी हानि करके भी अक्षत सम्मान की गौरव-रक्षा, न कि अक्षत संचय के अहंकार का प्रचार।

जिस दिन कुमुदिनी की बाईं आँख फड़की थी, उस दिन वह अपने हृदय की समस्त भक्ति से, आत्मोत्सर्ग के पूर्ण संकल्प के साथ प्रस्तुत थी। कही किसी प्रकार की बाधा या खोटापन घट सकता है यह बात उसकी कल्पना में भी नही आई थी। दमयंती ने कैसे पहले ही से जान लिया था कि विदर्भराज नल को ही वरण करना होगा! उनके मन के भीतर कोई निश्चित संदेश पहुँचा था—क्या उसी तरह का निश्चित संदेश कुमुदिनी ने नही पाया? वरण का सभी आयोजन प्रस्तुत था, राजा भी आए, किन्तु मन में जिसे वह स्पष्ट देख पाई थी बाहर उसे कहाँ देखा? रूप की भी कोई रुकावट उसके लिए नही थी, और न उम्र की। पर राजा? अपने मन का सच्चा राजा उसने कहाँ पाया?

उसके बाद आज, जिस अनुष्ठान के दरवाजे से कुमुदिनी को अपने नये

संसार में प्रवेश करने का निमंत्रण मिला उसमें कोई ऐसी वज्र-गंभीर मंगल-ध्वनि क्यों नही बज उठी जिसके माध्यम से यह नव-वधू आकाश के सप्तर्षियो का आशीर्वाद-मंत्र सुन पाती ? सारे अनुष्ठान को परिपूर्ण करते हुए, उदात्त स्वर में यह वंदना-गान क्यों नहीं बज उठा,

'जगतः पितरौ वदे पार्वतीपरमेश्वरौ ।'

जगत् के वे पिता, जिनमे चिर-पुरुष और चिर-नारी वाक्य और अर्थ की तरह परस्पर मिलित है ।

२२

मधुसूदन जब कलकत्ता में बसने आया था तब प्रारंभ मे उसने एक पुराना मकान खरीदा था । वह चौकोर मकान ही आज उसका अन्तःपुर—महल बना हुआ है । उसके बाद उसीके सामने उसने आज के फैशन के अनुसार एक नया भवन बनाकर उसीके साथ जोड दिया । वही उसका बैठक-महल है । ये दो महल यद्यपि एक-दूसरे से जुडे हुए है, तथापि ये पूर्णतः भिन्न जातियों के हैं । बाहर के महल मे सर्वत्र संगमरमर का फर्श है, जिसके ऊपर विलायती कार्पेट बिछी हुई है । दीवाल पर चित्रांकित कागज चिपके हुए है जिसमें विभिन्न प्रकार के चित्र लटकाए गए हैं । उनमे कोई इनग्रेविंग है, कोई ओलियोग्राफ और कोई आयल-पेंटिंग है । किसी चित्र में कोई शिकारी कुत्ता किसी हिरन को भगा रहा है, किसी में डर्बी मे जीते हुए विख्यात घोडे अंकित है, किसी मे विदेशी लैण्ड्स्केप और किसी में स्नान-रता, नग्नदेह नारी चित्रित है । इसके अतिरिक्त दीवार की ताक पर कहीं चीनी बर्तन, कहीं मुरादाबादी पीतल की थाली, कही जापानी पंखा, कही तिब्बती चँवर इत्यादि विविध प्रकार के असंगत पदार्थ अस्थान में अनायोजित रूप से रखे हुए है । गृह-सज्जा की इन सब सामग्रियों को पसंद करने, ख़रीदने और सजाने का भार मधुसूदन के अँगरेज असिस्टेण्ट के ऊपर था । इनके अतिरिक्त वहाँ मख़मल या रेशमी कपड़े से लपेटे हुए सोफ़ों और चौकियों का जाल बिछा हुआ था । शीशे की एक अलमारी में टीम-टाम की बँधाई वाली अँगरेज़ी की पुस्तके सजाकर रखी गई थी । उस पर झाड़न से धूल झाड़ने वाले बैरे के अतिरिक्त और कोई दूसरा व्यक्ति हाथ नहीं लगा सकता । एक तिपाई पर अलबम रखे हुए थे । उनमें से किसी में घर के लोगों

के फोटो लगे हुए थे और किसी में विदेशी अभिनेत्रियो के ।

उधर अंत.पुर मे पहली मंजिल के कमरे अँधेरे, सील खाये हुए, और धुएँ की कालिख से काले थे । आँगन मे कूड़ा भरा पड़ा था । पानी का नल वहीं था । बर्तन माँजने और कपड़े धोने का काम तो वहाँ होता ही रहता था, जब जल का व्यवहार नही होता था तब भी नल प्रायः खुला ही रहता था । ऊपर के बरामदो से स्त्रियों के गीले कपडे झूल रहे थे, और डडे में बँधे हुए काकातुआ की जूठन आँगन मे छितरा रही थी । बरामदे की दीवार पर जहाँ-तहाँ पान की पीक के दाग और नाना प्रकार की गंदगी के अक्षय स्मृति-चिह्न पड़े हुए थे । आँगन के पश्चिम की ओर वाली बरसाती के पीछे रसोई-घर था । वहाँ से व्यंजनों की गंध और कोयले का धुआँ ऊपर के कमरों की ओर फैलता रहता था । रसोई-घर के बाहर दीवार से घिरी थोड़ी-सी जगह थी, उसीके एक कोने में जले हुए कोयले, चूल्हे की राख, टूटे गमलो, टूटी टोकरियों, जीर्ण चलनियो आदि का ढेर लगा था । उसकी दूसरी ओर दो-एक गायें, बछडे या बछियाँ बँधे थे, जिनकी घास और गोबर का ढेर वहाँ लगा था । सारी दीवार चक्राकार कंडों से छाई हुई थी । एक किनारे नीम का एक पेड़ था । उसके तने पर गाय बाँधी जाती थी, जिसके फलस्वरूप पेड़ की उस जगह पर से छिलका उतर गया था । बार-बार पत्ते तोडने के लिए खीचे जाने के कारण पेड़ कमजोर पड़ गया था । अंतःपुर में केवल इतनी-सी जमीन थी, बाकी सब जमीन बाहर की ओर थी । बाहर वाली जमीन लता-मडपों, फूलो की विचित्र क्यारियों, कटी-छँटी दूब वाले लॉनों, बजरी बिछे हुए रास्तो, पत्थर की मूर्तियों और लोहे के बेंचों से सुसज्जित थी ।

अन्दर महल के तीसरे खंड में कुमुदिनी के सोने का कमरा था । महगनी की लकड़ी से बना हुआ बहुत बड़ा पलँग वहाँ बिछा था, जिसके फ्रेम में जालीदार मसहरी फँसाई गई थी, जिसमें रेशम का झालर लगा था । पलँग के पैताने की ओर पूरे आकार की एक निरावरण स्त्री का चित्र टँगा था । वह स्त्री वक्षस्थल को दोनों हाथो से ढककर लज्जा का नाटक कर रही थी, सिरहाने की ओर मधुसूदन का अपना आयल-पेण्टिग था, जिसमें उसके कश्मीरी शाल पर किये गए काम को ही अधिक उभारा गया था । एक ओर दीवार से लगी हुई कपड़े रखने की दराजदार अलमारी थी, उसके ऊपर एक शीशा था । शीशे के दोनों ओर चीनी मिट्टी के दो शमादान थे । सामने चीनी मिट्टी की बड़ी-सी तश्तरी के ऊपर पौडर की डिबिया, चाँदी-जडी कंघी, तीन-चार प्रकार के इत्र, इत्र छिड़कने की पिचकारी तथा और भी विविध प्रकार की प्रसाधन-

सामग्री सुसज्जित थी, जिसे मधुसूदन के विलायती असिस्टेण्ट ने ख़रीदा था। गुलाबी रंग के शीशे के फूलदान में एक गुलदस्ता रखा था। एक ओर लिखने का टेबिल था, जिस पर कीमती पत्थर का दवातदान, कलम और कागज़ सजाकर रखे हुए थे। इधर-उधर मोटी गद्दी वाले सोफे और आराम-कुर्सियाँ रखी थीं। तिपाइयाँ भी पड़ी हुई थी; जिनमें चाय भी रखी जा सकती थी और ताश भी खेला जा सकता था। नई महारानी के योग्य शयन-घर किस प्रकार का होना चाहिए इस संबंध मे मधुसूदन को विशेष रूप से चिंता करनी पड़ी थी। अन्दर महल के सबसे ऊँचे खड वाला वह कमरा अब ऐसा लगने लगा था जैसे फटी-मैली कथरी पहने भिखारी के सिर पर जरी-जवाहरात वाली पगड़ी सजा दी गई हो।

अंत में, कोलाहल और धूम-धाम के दिन पार हो जाने पर, कुमुदिनी इस कमरे मे आ पहुँची, उसे ले आई वही मोती की माँ। यह बात तय हुई कि आज रात वह उसके साथ सोएगी। साथ मे स्त्रियो का एक और दल आ रहा था। उनके कुतूहल और विनोद का नशा किसी तरह उतरना नही चाहता था। पर मोती की माँ ने उन्हें लौटा दिया। कमरे में पहुँचते ही मोती की माँ ने उसे गले से लगाते हुए कहा, "मैं कुछ देर के लिए बगल वाले कमरे में जा रही हूँ—तुम तनिक रो लो बहन—तुम्हारे भीतर ढेर आँसू जमा हो गए है।" कहकर वह चली गई।

कुमुदिनी एक चौकी पर बैठ गई। 'रोना तो बाद में होगा, अभी अपने को ठीक करना बहुत आवश्यक है,' उसने सोचा। जिस वेदना की चुभन उसे सबसे तीखी मालूम हो रही थी वह थी स्वयं अपने द्वारा अपना अपमान। इतने बरसों तक उसने मन में जो कुछ भी सकल्प किया था, उसका विद्रोही मन उसके एकदम विपरीत चला गया था। वह उस मन को रास्ते पर लाने के लिए तनिक भी समय नही पा रही थी। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'देवता, बल दो, बल दो, मेरे जीवन को कलंकित मत करना! मै तुम्हारी दासी हूँ; मुझे जयी करो, मेरी वह जय तुम्हारी ही होगी।"

एक कसे हुए बदन वाली, उम्र मे सयानी लगने वाली साँवली-सी सुन्दरी विधवा ने कमरे में घुसते ही कहा, "मोती की माँ ने तुम्हें कुछ देर के लिए छुट्टी दी है, तभी आ पाई हूँ; वह किसी को तुम्हारे पास फटकने नही देती और तुम्हें घेरे रहना चाहती है—जैसे हम सेंध लगाने घूमते फिर रहे है और उसके बाड़े से तुम्हें चुरा ले जाना चाहते हैं। मै तुम्हारी जेठानी हूँ, श्यामासुन्दरी। तुम्हारे पति मेरे देवर होते है। हम तो सोचते थे कि अन्त तक जमा-खर्च का खाता ही

उनकी बहू बनी रहेगी। पर देखती हूँ कि उस खाते में जादू है, बहन ! इस उम्र मे ऐसी सुन्दरी बहू उस खाते के जोर से ही मिल पाई। अब जब हजम कर सके तब। वहाँ खाते का मंतर नही फलता। सच बताना बहन, हमारे बूढे देवर तुम्हे पसंद तो हैं ?"

कुमुदिनी सुनकर अवाक् रह गई। क्या उत्तर दे, कुछ समझ ही न पाई। श्यामा फिर बोल उठी, "समझ गई। पर पसंद न होने से ही क्या होगा ! सात फेरे जब घूम चुकी हो तब उलटे इक्कीस फेरे घूमने से भी फाँस नहीं खुलेगी।"

कुमुदिनी बोली, "यह क्या कह रही हो, दीदी ?"

श्यामा ने कहा, "साफ़ बात कह देने में क्या दोष है, बहन ? मुँह देखकर क्या हम समझ नही सकतीं ? पर तुम्हे दोष नहीं दूँगी। वह हमारी अपनी होने से क्या हमारी आँखे भी बन्द हो गई है ? बड़े कडे हाथो में पड़ी हो बहू, तनिक समझ-बूझकर चलना !"

तभी मोती की माँ को घर में घुसते देखकर वह बोल उठी, "डरो मत, डरो मत, वकुल फूल, मै जा रही हूँ। सोचा, इस समय तुम नही हो, इसलिए इस मौके से नई बहू को एक बार जाकर देख आऊँ। बात सच भी है। यह कृपण का धन है, सावधानी से रखना होगा। देवरानी से मै कह रही थी कि हमारे देवर की यह है अधकपाली। उन्होंने अपनी बहू को पकड़ रखा है बाई ओर के कपाल से, जो पाने वाला है; अब यदि दाई ओर जो रखने वाला कपाल है उससे बहू को पकड़कर रख सकें तभी बात पूरी होगी।"

यह कहकर वह कमरे से बाहर चली गई, और क्षण-भर बाद लौट आई। कुमुदिनी के सामने पान का डिब्बा खोलती हुई बोली, "एक पान लो ! तमाखू खाने की आदत है ?"

कुमुदिनी ने कहा, "नहीं।" तब एक चुटकी तमाखू अपने मुँह में डालकर श्यामा धीर पगों से चली गई।

मोती की माँ ने कहा, "मै अभी वैद्य घराने का मौसी को खाना खिलाकर, विदा करके आती हूँ, देर नहीं होगी।" और कहकर चली गई।

श्यामासुन्दरी ने कुमुदिनी के मन में एक विश्वास उत्पन्न कर दिया। आज कुमुदिनी को सबसे अधिक आवश्यकता थी माया के आवरण की। अपने मन में वह उसा की रचना कर रही थी, और जो सृष्टिकर्ता द्युलोक और भूलोक मे नाना रंगों को लेकर रूप-लीला करते है उनकी भी सहायता करने की चेष्टा कर रही थी, इतने में श्यामा ने आकर उसके स्वप्न द्वारा बुने गए जाल पर चोट मारी। कुमुदिनी आँखें बन्द करके अपने-आपको सम्बोधित करके मन-ही-मन जोर

के साथ कहने लगी, 'पति की उम्र अधिक है इसलिए मैं उन्हें नही चाहती, यह बात कभी सच नहीं हो सकती। यह तो बड़ी लज्जा की बात है, यह छोटे घराने की स्त्रियों की-सी बात है।' क्या शिव के साथ सती के विवाह की बात उसे याद नहीं है ? शिव के निन्दकों ने शिव की उम्र की बात उठाकर सती को कोंचा था, पर सती ने उनकी बात नही सुनी।

अभी तक कुमुदिनी के मन में पति की उम्र या रूप के संबंध में कोई चिंता ही नही उठी थी। साधारणतः जिस प्रेम के आधार पर स्त्री-पुरुष का प्रेम सत्य होता है, जिसमें रूप-गुण, देह-मन सभी मिले हुए है, उसकी भी आवश्यकता होती है, यह बात उसने कभी सोची ही नही। पसंद करने-न-करने की बात को ही वह रँगकर दबा देना चाहती थी।

तभी फूल-कढ़ा कुर्ता और जरी के किनारे वाली धोती पहने सात बरस का लड़का कमरे में घुसा और कुमुदिनी के शरीर से लिपटकर खड़ा हो गया। बड़ी-बड़ी स्निग्ध आँखें उसकी ओर करके, भय के साथ धीरे-धीरे मीठे स्वर में बोला, "ताई !" कुमुदिनी उसे अपनी गोद में लेती हुई बोली, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटा ?" बच्चे ने बड़े आडम्बर के साथ श्री सहित अपना नाम बताया, "श्री मोतीलाल घोषाल।" सभी के निकट वह 'हाबलू' नाम से परिचित था। इसीलिए उपयुक्त देश-काल-पात्र का खयाल करके अपना सम्मान बनाए रखने के उद्देश्य से, पितृ-दत्त नाम ऐसे संपूर्ण रूप से उसे बताना पड़ा। उस समय कुमुदिनी का हृदय धड़क रहा था, इसलिए उस बच्चे को गोद में लेकर वह जैसे त्राण पा गई। सहसा उसे जैसे लगा कि पूजा-घर में वह जिस गोपाल को कितने ही दिनों से फूल चढ़ाती आई थी, इस बच्चे के रूप में वही जैसे उसीकी गोद में बैठ गया।

ठीक जिस समय वह देवता को पुकार रही थी उसी दुःख के समय उसने कहा, "यह देखो, मैं आ गया हूँ तुम्हारी सांत्वना के लिए।" मोती के गोल-गोल गाल दबाती हुई कुमुदिनी बोली, "गोपाल, फूल लोगे ?"

कुमुदिनी के मुख से गोपाल छोड़कर और कोई दूसरा नाम निकला ही नहीं। सहसा अपने नामान्तर से हाबलू को कुछ आश्चर्य हुआ। किन्तु उसके कानों तक ऐसा सुर पहुँच चुका था कि उसके मन में कोई आपत्ति उठ ही नहीं सकती थी।

तभी बग़ल वाले कमरे से मोती की माँ अपने बच्चे की आवाज सुनकर दौड़ती हुई आई और बोली, "ए लो ! यह बंदर यहाँ आ पहुँचा है !" श्री मोतीलाल घोषाल का सम्मान संकट में पड़ गया। नालिश-भरी आँखों से वह चुप-

चाप माँ की ओर देखता रहा और दाएँ हाथ से ताई का अंचल पकड़े रहा। कुमुदिनी अपने बाएँ हाथ से हाबलू को लपेटती हुई बोली, "रहने भी दो न इसे!"

"नहीं भई, रात बहुत हो गई है। अब इसके सोने का समय है। इस घर में इसे बड़ी आसानी से पाया जा सकेगा—इसके समान सस्ता लड़का दूसरा नहीं है।" कहकर मोती की माँ अनिच्छुक बच्चे को सुलाने के लिए ले गई। इतने ही से कुमुदिनी के मन का भार हल्का हो गया। उसे लगा, जैसे उसने प्रार्थना का उत्तर पा लिया और आगे भी जीवन की समस्या इस छोटे-से बच्चे की तरह ही सहज होती दिखाई देगी।

२३

रात बहुत बीत जाने पर मोती की माँ एक समय जगी और उसने देखा कि कुमुदिनी पलँग पर बैठी हुई है, उसकी गोद में उसके हाथ जुड़े हुए रखे हैं और दो ध्यानमग्न आँखें जैसे सामने किसी को देख रही है। वह जितना ही मधुसूदन को हृदय में ग्रहण करने में बाधा पाती थी उतना ही वह अपने देवता के द्वारा अपने पति को आवृत्त किये रहना चाहती थी। पति को उपलक्ष्य बनाकर वह अपने को देवता के आगे दान कर रही थी। देवता ने अपनी पूजा को बहुत कठिन बना दिया है। उनकी यह प्रतिमा स्वच्छ नही है। पर यही तो भक्ति की परीक्षा है। शालग्राम की बटिया तो देखने में कुछ भी नही होती, पर भक्ति उस रूपहीनता में भी वैकुंठनाथ के रूप को प्रकाश देती है केवल अपने ही भीतरी जोर से। 'जहाँ कुछ नही दिखाई देता वही देख पाऊँ, ऐसी सामर्थ्य मेरी साधना मुझे दे, जहाँ भगवान् छिपे रहते है वहीं जाकर उनके चरणों में अपने को दान करूँगी, तभी वह मुझसे कतरा न सकेंगे।' मन-ही-मन वह इस रूप में प्रार्थना कर रही थी।

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई,' अपने भैया से सीखे हुए मीराबाई के इस भजन को वह मन-ही-मन गाने लगी।

मधुसूदन का जो अत्यंत रूढ़ परिचय उसे मिला है उसकी वह जल के ऊपर का बुदबुद समझकर अवज्ञा करना चाहती है—जो चिरकाल के सत्य है वही अकेले सब-कुछ छाए हुए है, 'दूसरा न कोई, दूसरा न कोई!' इसके अतिरिक्त

उसकी एक और पीड़ा थी जिसे वह माया समझना चाहती थी—वह थी जीवन की शून्यता। आज तक जिनको लेकर उसके जीवन का निर्माण हुआ है, जिनके न रहने से जीवन का कोई अर्थ ही नही रह जाता, उनके साथ विच्छेद। वह अपने से कह रही थी कि 'यह शून्य भी पूर्ण है—

तात छाड़ी, मात छाड़ी, छाड़ी सभा सोई,
मीरा प्रभु लगन लागी होनी होइ सो होई।'

भले ही पिता ने छोड़ दिया हो, भले ही माता भी छोड़कर चली गई हो ; पर उनके भीतर ही जो सदा के है उन्होने तो नही छोड़ा। भगवान् और भी विच्छेद क्यों न करा दे, शून्य को भरने के लिए ही वह ऐसा कर रहे है। मै लगी रहूँगी, फिर भले ही जो होना हो, हो जाय। मन का गीत कब उसके गले से फूट पड़ा, यह वह जान ही न पाई। केवल दोनों आँखो से टपाटप पानी गिरने लगा।

मोती की माँ कुछ बोली नहीं। चुपचाप देखती और सुनती रही। जब कुमुदिनी बहुत देर तक प्रणाम किये रहने के बाद लंबी साँस खीचकर लेट गई तब मोती की माँ के मन में एक चिंता-धारा उठी, जिस पर पहले कभी उसने सोचा नही था।

वह सोचने लगी, 'जब हम लोगों का ब्याह हुआ था तब हम नादान बच्चियाँ थी। मन नाम की कोई बला हमारे पास नहीं थी। छोटा बच्चा जिस प्रकार कच्चे फल को बिना आयोजन के टप से मुँह में डाल लेता है, अपने पति की गिरस्ती को हमने भी उसी तरह बिना विचार के स्वीकार कर लिया, कही कोई रुकावट नही मालूम पड़ी। हमें प्रार्थना करके लेना नहीं पड़ा, हमारे लिए दिन-गणना भी अनावश्यक थी। जिस दिन कहा, आज सुहागरात होगी उसी दिन ही सुहागरात तय हो जाती थी, क्योकि वास्तव में तब सुहागरात के कोई माने ही नही थे, वह तो केवल एक खेल था। अब कल ही सुहागरात तय है, पर इस लड़की के लिए यह कितनी बड़ी विडंबना है! जेठ जी अभी पराये ही है, अपना बनने मे बहुत समय लगता है। इसे वह छू भी कैसे सकेंगे? यह लड़की इस तरह का अपमान क्यों सहेगी? धन कमाने मे जेठ जी को न जाने कितना समय लगा, अब मन पाने में क्या देर सहन न होगी? उस लक्ष्मी के दरवाज़े भटकते फिरना पडा है, इस लक्ष्मी के दरवाज़े क्या हाथ नहीं पसारना पड़ेगा?'

इतनी बातें मोती की माँ के मन में न उठतीं, पर उठने का कारण है। वह कुमुदिनी को देखते ही उसे हृदय से प्यार करने लगी है। इस प्यार की पूर्व-

भूमिका तब हो चुकी थी जब उसने स्टेशन में विप्रदास को देखा था। उसे देखते ही उसे लगा, जैसे महाभारत से भीष्म उतर आए हो। वीर की तरह थी उसकी तेजस्वी मूर्ति, ताप की तरह थी उसकी शान्त मुखश्री, और साथ ही विषाद की एक नम्रता। उसे देखते ही मोती की माँ के मन मे आया, यदि कोई कुछ कहने वाला न होता तो वह जाकर उसके दोनो पाँव छू आती। उस रूप को वह आज तक नही भूल पाई थी। उसके बाद जब उसने कुमुदिनी को देखा तो मन-ही-मन बोली, 'सचमुच अपने भैया की ही बहन है।'

एक प्रकार का जाति-भेद ऐसा होता है जो समाज का नहीं रक्त का होता है। उस जाति को किसी तरह नही तोडा जा सकता। यह जो रक्तगत जाति का असामंजस्य है उसकी चोट स्त्री पर जैसे मार्मिक रूप से पड़ती है वैसी पुरुष पर नही। छोटी उम्र मे विवाह हो जाने से मोती की माँ को अपने भीतर इस रहस्य को समझने का अवसर नही मिला—पर कुमुदिनी के भीतर से वह इसे निश्चित रूप में अनुभव करने लगी। उसके शरीर की कुछ विचित्र-सी दशा होने लगी। उसे जैसे एक विभीषिका-भरा चित्र दिखाई दिया—जहाँ एक अजाना जंतु अपनी लार-भरी जीभ बाहर निकालकर गुड़मुड़ी बाँधे बैठा हुआ है, उसी अंधकार-गुफा के मुहाने पर खड़ी होकर कुमुदिनी देवता को गुहार रही है। मोती की माँ क्रोध से भरकर मन-ही-मन बोल उठी, 'देवता! जिस देवता ने उसे इस संकट में डाला है, वही करेगा इसका उद्धार! हाय रे!'

२४

दूसरे दिन सबेरे ही कुमुदिनी ने अपने भैया से तार पाया, "भगवान् तुम लोगों को आशीर्वाद दे।" उस तार के कागज को उसने अपनी छाती से लगा लिया। उस तार में जैसे उसके भैया के दाएँ हाथ का स्पर्श था। पर भैया ने अपनी तबीयत के बारे में कुछ क्यों नही लिखा? तब क्या उनकी बीमारी बढ़ गई है? जिसके लिए भैया के सभी समाचार हर क्षण में प्रत्यक्ष रहते थे आज उसके लिए सभी द्वार बन्द हो गए हैं।

आज सुहाग की रात है। घर में लोगों की भीड़ लगी हुई है। आत्मीय लड़कियाँ दिन-भर कुमुदिनी के साथ छेड़-छाड़ करती रही। उसे उन्होंने किसी तरह भी अकेला नहीं रहने दिया। आज उसे अकेले रहने की बड़ी आवश्यकता थी।

सोने के कमरे की बगल ही में गुसलखाना था। वहाँ फ़व्वारे से स्नान किया जा सकता था। क्षणिक अवकाश पाकर कुमुदिनी अपने बक्स से युगल-रूप के प्रेम में बँधे पट को निकालकर वहाँ चली गई और भीतर से दरवाज़ा बन्द कर दिया। सफ़ेद पत्थर की जलचौकी पर पट रखकर, और स्वयं सामने फ़र्श पर बैठकर अपने मन में बार-बार कहने लगी, 'मैं तुम्हारी ही हूँ, आज तुम्हीं मुझे अपना लो! वह और कोई नहीं, वह तुम्हीं हो, तुम्हीं हो, तुम्हीं हो। तुम्हारा ही युगल-रूप प्रकाशित हो मेरे जीवन में।'

इधर डॉक्टरों का कहना था कि विप्रदास का इन्फ़्लूएंजा न्यूमोनिया में परिणत हो गया है। नवगोपाल अकेला ही कलकत्ता आया—सुहाग की रात के उपलक्ष्य में सौग़ात भेजने की व्यवस्था करने के लिए। बड़ी टीपटाप के साथ सौग़ात भेजी गई। विप्रदास यदि स्वयं रहता तो इतना आडंबर न रचता।

कुमुदिनी के विवाह के उपलक्ष्य में उसकी चारों बड़ी बहनों को बुलाया गया था। पर यह खबर फैल चुकी थी कि घोषाल लोग सद्ब्राह्मण नहीं हैं। घर के लोग उन्हें इस विवाह में भेजने को क़तई राज़ी न हुए। कुमुदिनी की तीसरी बहन किसी तरह ससुराल वालों से लड़-झगड़कर विवाह के दूसरे दिन कलकत्ता पहुँच गई थी। उससे नवगोपाल बोला, "उस घर में तुम जाओगी हमारा मान नहीं रहेगा।" विवाह की रात की बात वह आज भी नहीं भूल पाया था, इसलिए बिरादरी के बाहर की कुछ छोटी-छोटी लड़कियों को इकट्ठा करके उन्हें निमंत्रण की रक्षा के लिए एक बूढ़ी नौकरानी के साथ भेज दिया। कुमुदिनी समझ गई कि संधि अभी तक नहीं हुई, शायद कभी होगी भी नहीं।

कुमुदिनी को सजाया-सँवारा जाने लगा। जिन लोगों के बीच हँसी-ठट्ठे का संबंध चलता था वे लोग आपस में निबट चुके थे—अब निमंत्रित व्यक्तियों को खिलाने की बारी थी। मधुसूदन ने पहले से ही बता दिया था कि अधिक देर करने से काम नहीं चलेगा, कल उसे काम पर जाना है। रात में नौ बजते ही आदेश के अनुसार नीचे आँगन से पूरी आवाज़ से घंटा बज उठा। अब एक क्षण के लिए विलम्ब नहीं हो सकता था। समय का उल्लंघन करने का साहस किसी में नहीं था। सभा भंग हो गई। आकाश से बाज की केवल छाया देखने से कपोती का हृदय जिस प्रकार धड़कने लगता है, कुमुदिनी का हृदय भी इसी तरह काँपने लगा। उसके ठंडे हाथों में पसीना आ रहा था, चेहरे का रंग एकदम उड़ गया था। कमरे से बाहर निकलते ही उसने मोती की माँ का हाथ पकड़ा और बोली, "मुझे कुछ देर के लिए कहीं ओट में ले चलो! दस मिनट के लिए मुझे अकेली रहने दो!" मोती की माँ तुरंत उसे अपने सोने के कमरे में ले गई और

बाहर से उसने दरवाजा बंद कर दिया। बाहर खड़ी होकर आँखें पोंछती हुई बोली, "क्या भाग्य लेकर आई थी !"

दस मिनट बीते, पन्द्रह मिनट बीते। लोग आए—वर सोने के कमरे मे गया है, बहू कहाँ है? मोती की माँ बोली, "इतनी हडबडी मचाने से कैसे काम चलेगा? बहू क्या अपने गहने-वहने नही उतारेगी?" मोती की माँ उसे अधिक से-अधिक समय देना चाहती है। अंत में जब वह समझ गई कि अब अधिक-देर करने से काम नही चलेगा, तब उसने दरवाजा खोला, और खोलते ही देखा कि बहू मूर्च्छित होकर फ़र्श पर पड़ी हुई है।

शोर मच गया। किसी तरह उठाकर उसे पलँग पर रखा गया। कोई पानी के छीटे मारने लगा, कोई पंखा झलने लगा। कुछ देर बाद जब कुमुदिनी होश मे आई, तब वह समझ न पाई कि कहाँ है। पुकार उठी, "भैया!" मोती की माँ तुरंत उसके मुख की ओर झुककर बोली, "डरो मत दीदी, यह मै हूँ।" कहकर उसका मुख अपनी गोद में रखकर वह उससे लिपट गई। सबसे बोली, "तुम लोग भीड न लगाओ, मै अभी इन्हे ले आती हूँ।" फिर उसके कानों में कहने लगी, "डरो मत, डरो मत!" कुमुदिनी धीरे-धीरे उठी। मन-ही-मन उसने देवता का नाम लेकर प्रणाम किया। कमरे के दूसरे कोने में हाबलू गहरी नींद मे डूबा हुआ था। उसके पास जाकर उसने माथा चूमा। मोती की माँ उसे सोने के कमरे तक पहुँचाती हुई बोली, "अब भी डर लग रहा है, दीदी?"

कुमुदिनी ने अपने हाथ की मुट्ठी कसकर बाँधते हुए कहा, "नहीं, मुझे कुछ भी डर नही मालूम हो रहा है।" मन-ही-मन कह रही थी, 'यही मेरा अभिसार है। बाहर अंधकार और भीतर प्रकाश—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।'

२५

इस बीच श्यामासुन्दरी ने हाँफते हुए मधुसूदन को सूचना दी, "बहू बेहोश हो गई है।" मधुसूदन का मन दर्प से जल उठा; बोला, "क्यों, उसको हुआ क्या है?"

"कह नही सकती। 'भैया-भैया' कहते-कहते बहू मुरझा गई है। एक बार

उसे देखने जाओगे ?"

"क्या होगा ! मै तो उसका भैया नही हूँ।"

"झूठ-मूठ गुस्सा कर रहे हो, लाला ; वे लोग बड़े घराने की है, अभी पालतू बनने में समय लगेगा।"

"वह रोज-रोज मूर्च्छित होंगी और मै उनके सिर पर कविराजी तेल से मालिश करूँगा, क्या इसीलिए मैने उनसे व्याह किया था ?"

"तुम्हारी बात सुनकर हँसी आती है, लाला ! तो इसमें दोष ही क्या है ? हमारे जमाने में बात-बात पर मानिनी का मान भग करना होता था, अब वह नही तो मूर्च्छा ही भग करनी होगी।"

मधुसूदन गुस्से मे अकड़ा बैठा रहा। श्यामासुन्दरी करुणा से पिघलकर निकट आई और हाथ थामकर बोली, "लाला इस तरह जी ख़राब न करो ! देखकर मुझसे सहा नही जाता।"

इससे पहले श्यामा को इतना साहस कभी नही हुआ कि मधुसूदन के इतने निकट जाकर उसे सांत्वना दे सकती। प्रगल्भा श्यामा उसके निकट एकदम चुप हो जाती थी; वह यह जानती थी कि मधुसूदन अधिक बाते नहीं सह पाता। स्त्रियों की सहज बुद्धि से वह आज समझ गई कि मधुसूदन आज वह मधुसूदन नही रह गया है ; आज वह दुर्बल है और अपनी मर्यादा के संबंध में सतर्क नहीं हैं। श्यामा ने मधु के हाथ में अपना हाथ रखा और समझ गई कि उसे यह बुरा नहीं लगा। नव-वधू ने उसके स्वाभिमान को जो चोट पहुँचाई है, उसे किसी एक स्थान से चिकित्सा पाने से भीतर-ही-भीतर आराम पहुँचा है। कुछ भी-हो, श्यामा उसका अनादर तो नही करती। यह कोई तुच्छ बात नही है। श्यामा क्या कुमुदिनी की अपेक्षा कम सुन्दरी है। भले ही उसका रंग कुछ साँवला हो, पर उसकी आँखे, उसके बाल, उसके रसीले ओठ !

सहसा श्यामा बोल उठी, "वह देखो बहू आ रही है, मै जाती हूँ। और देखो, उसके साथ न झगड़ना, बेचारी अभी बच्ची है।"

कुमुदिनी ने जैसे ही कमरे में पाँव रखा, मधुसूदन रह न सका और बोल उठा, "बाप के घर से मूर्च्छा का अभ्यास करके आई हो न ? पर हमारे यहाँ यह नहीं चलेगा। अपनी यह नूरनगरी चाल तुम्हें छोड़नी होगी।"

कुमुदिनी अपलक आँखो से देखती रही, एक भी शब्द न बोली।

मधुसूदन उसका मौन देखकर और अधिक बिगड़ उठा। मन के गहरे तल में इस लड़की का मन पाने की आकाक्षा उसके भीतर जग उठी थी; उसके तीव्र और निष्फल क्रोध का यही कारण था। बोला, "मै काम का आदमी हूँ;

मुझे समय कम रहता है। इसलिए हिस्टीरिया वाली लड़की की ख़िदमत करने की फ़ुरसत मुझे नही रहती, यह मै स्पष्ट बता देना चाहता हूँ।"

कुमुदिनी धीमे से बोली, "तुम मेरा अपमान करना चाहते हो ? हार माननी होगी। तुम्हारा अपमान मैं अपने मन मे ग्रहण नहीं करूँगी !"

कुमुदिनी किससे यह बात कह रही थी ? उसकी विस्फारित आँखों के सामने कौन खड़ा था ? मधुसूदन अवाक् रह गया। सोचने लगा, 'यह लडकी झगड़ा क्यों नही करती ? इसका मनोभाव क्या है ?'

मधुसूदन ताना मारते हुए बोला, "तुम अपने भैया की शिष्या हो, पर याद रखो, मैं तुम्हारे उसी भैया का महाजन हूँ। उसे एक हाथ से खरीदकर दूसरे हाथ से बेच सकता हूँ।"

वह कुमुदिनी के भैया से बड़ा है, यह बात कुमुदिनी के मन मे जमा देने के लिए मूर्ख और कोई दूसरी बात ही खोज न पाया।

कुमुदिनी बोली, "देखो, जितने निठुर बन सकते हो बनो, पर छोटे मत बनो !" कहकर वह धम से सोफे पर बैठ गई।

अत्यन्त कर्कश स्वर में मधुसूदन बोल उठा, "क्या ! मैं छोटा हूँ और तुम्हारा भैया मुझसे बड़ा है ?"

कुमुदिनी ने कहा, "तुम्हें बडा समझकर ही तुम्हारे यहाँ आई हूँ।"

मधुसूदन व्यंग कसता हुआ बोला, 'मुझे बडा समझकर आई हो या रुपये के लोभ से ?"

तभी कुमुदिनी सोफे से उठकर कमरे से बाहर निकल गई और बाहर खुली छत पर नीचे फर्श पर जाकर बैठ गई।

जाडे के दिनों की कलकत्ता की काली रात थी—धुएँ और कुहासे से भरी। आकाश अप्रसन्न था, तारों की रोशनी बैठे हुए गले से निकली हुई बात की तरह लग रही थी। कुमुदिनी का मन उस समय निश्चेतन-सा हो गया था—कोई भावना नहीं, किसी प्रकार की वेदना नहीं। एक घने कुहासे के भीतर वह जैसे लुप्त हो गई थी।

मधुसूदन के मस्तिष्क मे यह बात आई ही नहीं थी कि कुमुदिनी इस तरह चुपचाप कमरे में बाहर चली जायगी। अपनी इस हार के लिए उसे सबसे अधिक क्रोध उसके भैया पर आ रहा था। सोने के कमरे में चौकी के ऊपर बैठकर शून्य आकाश की ओर उसने एक घूँसा ताना। कुछ देर तक बैठे रहने के बाद वह अधिक धैर्य न रख सका। बडी तेजी से बाहर निकलकर उसके पीछे खड़ा हो गया और बोला, "बड़ी बहू !"

कुमू चौकती हुई उठी और पीठ करके खड़ी हो गई ।

"इस ठंड मे बाहर क्या कर रही हो ? चलो कमरे में ।"

कुमुदिनी बिना संकोच के मधुसूदन के मुँह की ओर देखती रही। मधुसूदन में प्रभुत्व का जितना भी जोर था वह सब हवा हो गया । कुमुदिनी का बायाँ हाथ पकड़कर वह धीरे से बोला, "आओ चलो कमरे मे !"

कुमुदिनी के दाएँ हाथ में भैया के आशीर्वाद वाला जो तार था, उसे वह अपने कलेजे में चिपकाये रही । पति के हाथ से उसने अपना हाथ नही छुड़ाया, चुपचाप धीरे-धीरे सोने के कमरे मे चली गई ।

२६

दूसरे दिन सुबह जब कुमुदिनी बिस्तर से उठ बैठी तब उसका पति सो रहा था । कुमुदिनी ने उसकी ओर नहीं देखा, इस भय से कि कही मन न ख़राब हो जाय । अत्यंत सावधानी से उठकर उसने पाँवो पर प्रणाम किया और उसके बाद गुसलख़ाने में चली गई । नहा-धोकर पीछे के दरवाज़े से वह छत पर जा बैठी । उस समय कुहासे के भीतर से आकाश मे पूरब की ओर एक मलिन सुनहली रेखा दिखाई दे रही थी ।

जब धूप निकल आई तब वह धीरे-धीरे सोने के कमरे में गई । वहाँ उसने देखा कि उसका पति उठकर चला गया है । शीशे वाले दराज पर उसकी गुरियो वाली थैली रखी थी । उसमें भैया का तार रखने के लिए जब उसे खोला तो देखा कि नीलम की अँगूठी नही है ।

प्रातःकाल की मानस-पूजा के बाद उसके मुख पर शांति का जो एक सौम्य भाव खिल उठा था वह गायब हो गया और आँखों में आग धधक उठी । मोती की माँ दूध के साथ कुछ मीठा खिलाने के उद्देश्य से उसे बुलाने आई । पर कुमुदिनी के मुँह से कोई उत्तर ही न निकला । जैसे वह पत्थर की मूर्ति बन गई हो ।

मोती की माँ घबराई हुई उसकी बग़ल में आकर खड़ी हो गई और बोली, "क्या हुआ है, बहन ?" पर कुमुदिनी के मुँह से कोई बात न निकली, केवल ओठ काँपने लगे ।

"बोलो, भली दीदी मेरी, मुझे बताओ, बात क्या है ?"

रुँधे हुए गले से कुमुदिनी बोली, "चुराकर ले गया है।"

"क्या ले गया है ?"

"मेरी अँगूठी, मेरे भैया के आशीर्वाद वाली अँगूठी !"

"कौन ले गया है ?"

कुमुदिनी ने किसी का नाम न बताकर बाहर की ओर सकेत किया।

"शांत हो जाओ, बहन, तुम्हारे साथ हँसी की है, अभी लौटा देंगे।"

"मै अब वापस नहीं लूँगी, देखूँगी वह कितना अत्याचार कर सकता है।"

"अच्छा, यह बात फिर होगी। अभी मुँह में कुछ डालो, चलो !"

"नहीं, यहाँ का खाना मेरे गले से नीचे नही उतरेगा।"

"लक्ष्मी दीदी मेरी, मेरी खातिर थोड़ा-सा खा लो !"

"एक बात पूछती हूँ, आज से क्या मेरा अपना कुछ शेष नहीं रहा ?"

"नहीं, कुछ नही रहा। जो-कुछ है वह सब पति की मर्ज़ी पर निर्भर है। जानती नही हो, अब से चिट्ठी में 'दासी' लिखकर दस्तखत करने होगे ?"

दासी ! उसे याद आई रघुवंश की इन्दुमती की बाद :

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ—

इस लिस्ट में तो दासी कहीं नही है। सत्यवान की सावित्री क्या दासी थी ? या 'उत्तररामचरित' की सीता ?

कुमुदिनी बोली, "स्त्री जिनकी दासी होती है वे किस जाति के आदमी होते हैं ?"

"उस आदमी को अभी तुमने पहचाना नहीं। वह केवल दूसरों से ही गुलामी नहीं करवाता, वह स्वयं अपनी गुलामी करता है। जिस दिन वह आफ़िस नही जा पाता उस दिन अपने हिस्से का रुपया काट लेता है। एक बार बीमारी के कारण एक महीने तक कुछ नही किया, उसके बाद दो-तीन महीने तक भोजन का ख़र्चा तक घटाकर नुक़सान पूरा कर लिया। इतने दिनों मैं मैं घर-गिरस्ती का सारा प्रबन्ध करती चली आ रही हूँ, उस हिसाब से मेरा भी मासिक बँधा है। वह आत्मीय रूप में किसी को भी नहीं मानता। इस घर में मालिक से लेकर नौकर-चाकर तक सभी गुलाम है।"

कुमुदिनी क्षण-भर चुप रही। उसके बाद बोली, "मै भी गुलामी ही करूँगी। मैं जो ख़ुराकी पाऊँगी उसे नित्य चुकाती चली जाऊँगी। मैं इस घर में बिना वेतन की बाँदी बनकर नही रहूँगी। चलो, मुझे काम में भरती कर दो ! घर-गिरस्ती का भार तो तुम्हारे ही ऊपर है न—तुम मुझे अपने अधीन रखकर

मुझसे काम लेती रहो ! अब से मुझे रानी कहकर कोई मेरे साथ परिहास न करे ।"

मोती की माँ हँसती हुई कुमुदिनी की ठुड्डी पकड़ती हुई बोली, "तब तो तुम्हे मेरी बात माननी ही पडेगी । मेरा हुक्म है—चलो नाश्ता करने !"

कमरे से बाहर निकलती हुई कुमुदिनी बोली, "देखो बहन, मै इस बात के लिए तैयार होकर आई थी कि मै अपने को अर्पित कर दूँगी, पर उसने मुझे ऐसा करने ही नहीं दिया । अब वह दासी को पायगा, मुझे नही ।"

मोती की माँ बोली, "लकडहारा केवल पेड़ काटना ही जानता है । वह पेड़ को नहीं पाता, केवल लकड़ी ही पाता है । माली पेड़ को रखना जानता है, इसलिए वह पाता है फूल, और पाता है फल । तुम लकड़ी काटने वाले के हाथ पड़ गई हो, क्योंकि वह तो व्यवसायी है । उसके मन में दर्द नाम की कोई चीज कहीं नही है ।"

एक बार सोने के कमरे में लौटने पर कुमुदिनी ने देखा, उसकी तिपाई के ऊपर 'लाजेंजेज' की एक शीशी पडी हुई है । हाबलू अपने त्याग का अर्घ्य गुप्त रूप से निवेदित करके स्वय कही छिपा हुआ था । इस घर में पत्थर की दरार से भी फूल खिल उठते हैं । बच्चे की इस 'लाजेजेज़' की भाषा ने उसे एक-साथ हँसाया और रुलाया । जब वह उसे खोजने बाहर गई तब देखा कि दरवाजे की ओट में छिपा हुआ चुपचाप खड़ा है । उसकी माँ ने उसे इस कमरे में जाने से मना कर रखा था । उसे भय था कि कहीं किसी बात पर घर के मालिक महाशय बिगड़ न बैठे । इस घर के सभी लोग इस बात से परिचित थे कि मधुसूदन का अपना निजी काम छोड़कर दूसरे किसी भी काम के लिए उससे दूर रहने में ही रक्षा है ।

कुमुदिनी हाबलू को पकडकर अपने कमरे में ले गई और उसे उसने अपनी गोद में बिठाया । उसके कमरे की सजावट की चीजों में खिलौने के किस्म की जो भी चीजें थीं उनसे दोनों ही खेलने लगे । कुमुदिनी समझ गई कि एक पेपर-वेट हाबलू को बहुत पसन्द है—शीशे के भीतर रंगीन फूल कैसे दिखाई दे रहा है, यह न समझ पाने के कारण उसकी उत्सुकता बहुत बढ़ गई है ।

वह बोली, "इसे लोगे, गोपाल ?"

इतना बड़ा अकल्पित प्रस्ताव उसने पहले कभी नहीं सुना था । ऐसी चीज की आशा वह क्या कभी कर सकता है ? वह विस्मय से और संकोच से कुमुदिनी के मुँह की ओर देखता रह गया ।

कुमुदिनी बोली, "इसे तुम ले जाओ !"

हाबलू अपने हर्ष को दबा न सका—उसे पकड़कर वह कूदता-फाँदता हुआ चला गया।

उसी दिन शाम को हाबलू की माँ आकर बोली, "तुमने क्या किया दीदी? हाबलू के हाथ में पेपर-वेट देखकर जेठ जी ने तूफ़ान खड़ा कर दिया है। उसके हाथ से छीनकर, 'चोर' कहकर उसे मारना शुरू कर दिया। बच्चे ने तुम्हारा नाम तक न लिया। हाबलू को चोरी करना मैं सिखा रही हूँ, यह बात भी धीरे-धीरे प्रचारित होने लगेगी।"

कुमुदिनी काठ की मूर्ति की तरह बैठी रह गई।

इतने में चरमर-चरमर शब्द करता हुआ मधुसूदन आ पहुँचा। मोती की माँ हड़बड़ाती हुई भाग खड़ी हुई। मधुसूदन पेपर-वेट हाथ में लिये था। उसे धीरे-से उसने अपनी जगह पर सजाकर रख दिया। उसके बाद पूर्ण विश्वास के साथ शांत, गम्भीर स्वर में बोला, "हाबलू इसे तुम्हारे कमरे से चुराकर ले गया था। चीजों को सावधानी से रखना सीखो!"

कुमुदिनी तीखे स्वर मे बोली, "उसने चोरी नहीं की।"

"अच्छा, ठीक है, वह उसे उठा ले गया है।"

"नही, मैंने ही उसे दिया है।"

"ऐसा करके उसकी आदत बिगाड़ना चाहती हो तुम? एक बात ध्यान में रखो, मेरे आदेश के बिना कोई चीज किसी को नही देनी होगी। मै घुमा-फिराकर बात करना पसन्द नहीं करता।"

कुमुदिनी सहसा खड़ी हो गई। बोली, "तुमने नही ली मेरी नीलम की अँगूठी?"

मधुसूदन बोला, "हाँ, मैंने ली है।"

"क्या उतने से भी तुम्हारे उस शीशे के ढेले का दाम नहीं चुका?"

"मैने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि उसे तुम रखने नहीं पाओगी!"

"अपनी चीज तुम रख सकोगे और मैं अपनी चीज रखने नहीं पाऊँगी?"

"इस घर मे कोई भी चीज तुम्हारी स्वतंत्र रूप से अपनी नहीं है।"

"मेरा कुछ भी अपना नही है? तब तुम्हारा यह घर भी मेरा न रहा।"

कुमुदिनी के बाहर जाते ही श्यामा कमरे मे आई और बोली, "बहू कहाँ गई?"

"क्यों?"

"सुबह से उसका खाना लिये बैठी हूँ, इस घर मे आकर क्या वह खाना भी बंद कर देगी ?"

"तो क्या हुआ ? नूरनगर की राजपुत्री नहीं खाना चाहती तो न खायँ। तुम लोग क्या उनकी बाँदी हो ?"

"छीः लाला, अभी वह बच्ची है, उस पर इस तरह नाराज़ नहीं होना चाहिए। वह इस तरह बिना खाए रहेगी, यह नही सहा जाता। उस दिन क्या यों ही उसे मूर्च्छा आई थी ?"

मधुसूदन गरजता हुआ बोला, "कुछ नही करना होगा, तुम जाओ ! भूख लगने पर अपने-आप खाएगी।"

श्यामा अत्यन्त खिन्न-सी होकर चली गई।

मधुसूदन के सिर पर रक्त का जोर बढ़ने लगा। तुरन्त गुसलखाने में जाकर उसने पानी की झँझरी खोली और उसके नीचे अपना सिर रख दिया।

२७

साँझ हो आई। उस दिन कुमुदिनी खोजने पर भी कही नहीं दिखाई दी। अन्त में पता चला कि वह भंडार के कमरे के पास एक कोने वाले छोटे-से कमरे में, जहाँ दीये, दीवट, मिट्टी-तेल के लैम्प आदि रखे जाते थे, फ़र्श पर एक चटाई बिछाए बैठी है।

मोती की माँ ने आकर पूछा, "यह क्या मामला है, दीदी ?"

कुमुदिनी बोली, "इस घर में मै दीये-बत्ती साफ़ किया करूँगी। यहीं मेरे लिए उपयुक्त स्थान है।"

मोती की माँ ने कहा, "अच्छा काम लिया है तुमने, दीदी ! इस घर को उजाला करने के लिए ही तो तुम आई हो। पर इसके लिए तुम्हें दीये-बत्ती की निगरानी नहीं करनी होगी। अब चलो !"

पर कुमुदिनी हिली तक नहीं।

मोती की माँ बोली, "तब तो मैं भी तुम्हारे ही साथ सोऊँगी।"

कुमुदिनी ने दृढ़ स्वर मे उत्तर दिया, "नहीं !" मोती की माँ समझ गई कि इस भली और भोली लड़की में आदेश करने की शक्ति है। उसे लौट जाना पड़ा।

रात में मधुसूदन जब सोने के लिए आया तब उसने कुमुदिनी की खबर जाननी चाही। जब उसे पता लग गया तब उसने पहले सोचा, 'अच्छी बात है, वह सोये उसी कमरे में, देखें कब तक वहाँ रह सकती है। खुशामद करने पर उसका हठ बढ़ जायगा।'

यह सोचकर वह बत्ती बुझाकर सोने का प्रयत्न करने लगा। पर किसी प्रकार भी नींद नही आई। प्रत्येक आहट से वह यह अनुमान लगाने लगता कि वह आ रही है। एक बार उसे लगा जैसे वह दरवाज़े के बाहर खड़ी है। बिस्तर से उठकर बाहर आया, पर वहाँ कोई नही था। रात जितनी ही बीतती गई उसका मन उतना ही छटपटाता रहा। कुमुदिनी की उपेक्षा करने की शक्ति वह अपने भीतर नही पा रहा था। पर स्वयं जाकर उससे हार मानना उसकी 'पालिसी' के विरुद्ध था। ठंडे पानी से मुँह धोकर वह सोने की चेष्टा करने लगा, पर नींद नही आई। छटपट करता हुआ वह उठ बैठा। अपना कुतूहल वह किसी तरह दबा न सका। एक लालटेन हाथ में लेकर, नीद में मग्न कमरों की कतार चुपचाप पार करके, अंतःपुर के उस फ़र्राशख़ाने के पास आकर वह भीतर की ओर कान लगाये रहा। कोई भी आहट भीतर से नही सुनाई दी। सावधानी से दरवाज़ा खोलने पर उसने देखा, कुमुदिनी फ़र्श पर एक चटाई बिछाकर और उसी चढ़ाई के एक किनारे को मोड़कर, उसे तकिया बनाकर लेटी हुई है। जिस प्रकार मधुसूदन को नीद नहीं आ रही थी उसी प्रकार यह स्वाभाविक था कि कुमुदिनी को भी नींद न आती; पर उसने देखा कि वह जैसे घोड़े बेचकर सो गई है; यहाँ तक कि मुख पर लालटेन की रोशनी पड़ने पर भी वह नहीं जगी। कुछ क्षण बाद कुमुदिनी हिली और उसने करवट बदली। गृहस्थ के जगने के लक्षण देखकर चोर जिस प्रकार भगता है, मधुसूदन भी उसी प्रकार भगा। उसे डर था कि कही कुमुदिनी उसका पराभव देखकर मन-ही-मन हँसने न लगे।

उस कमरे से मधुसूदन जब बाहर निकलकर बरामदे मे आया तब सामने से श्यामा आती हुई दिखाई दी। उसके हाथ मे बत्ती थी।

"यह क्या लाला, यहाँ कहाँ से आ रहे हो ?"

मधुसूदन उसकी इस बात का कोई उत्तर न देकर बोला, "तुम कहाँ जा रही हो, भौजी ?"

"कल मेरा व्रत है। ब्राह्मण-भोजन कराना होगा, उसीकी जुगत के लिए जा रही हूँ। तुम्हें भी मेरा न्योता है। पर तुम्हें दक्षिणा देने योग्य शक्ति मुझमें नही है।"

मधुसूदन के मुख पर एक उत्तर आ रहा था, वह दब गया।

रात के अंतिम प्रहर के उस अंधकार में बत्ती के प्रकाश मे श्यामा सुन्दर लग रही थी। श्यामा तनिक मुस्कराती हुई बोली, "आज नींद से जगते ही तुम्हारे समान भाग्यवान पुरुष का मुँह देखा, इसलिए मेरा सारा दिन आज अच्छा कटेगा। व्रत सफल होगा।"

'भाग्यवान' शब्द पर उसने तनिक जोर दिया—मधुसूदन को वह विडंबना की तरह लगा। कुमुदिनी के संबंध में साफ-साफ कोई बात पूछने का साहस श्यामा को नहीं हुआ। "कल अवश्य मेरे यहाँ खाना खाने को आना," कहकर वह चली गई।

कमरे में आकर मधुसूदन पलंग पर लेट गया। बाहर उसने लालटेन रख दी—शायद कुमुदिनी आवे। कुमुदिनी के सुप्त मुख की छवि उसकी आँखों से किसी प्रकार भी हटना नही चाहती थी; और बार-बार उसे शाल से बाहर निकले हुए कुमुदिनी के अतुलनीय सुन्दर हाथ की याद आती थी। विवाह के समय जब उसने उस हाथ को अपने हाथ में लिया था तब उसे अच्छी तरह देख नहीं पाया था। आज देखकर उसकी आँखों की साध पूरी नही होती थी। इस हाथ का अधिकार वह कब पायगा? पलंग पर वह रह न सका; उठ बैठा। बत्ती जलाकर उसने कुमुदिनी के डेस्क का दराज खोला। वहाँ उसने उसी गुरियों वाली थैली को देखा। उसमें से सबसे पहले निकला विप्रदास का वही तार—"भगवान् तुम्हें आशीर्वाद दें—" उसके बाद निकला एक फोटो, जिसमे उसके दो बड़े भाइयों के चित्र खिचे हुए थे, और अन्त में एक काग़ज का टुकड़ा निकला, जिसमें विप्रदास के हाथ से गीता का यह श्लोक लिखा हुआ था:

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

ईर्ष्या से मधुसूदन का मन क्षत-विक्षत होने लगा। दाँतों से दाँत पीसते हुए उसने मन-ही-मन विप्रदास को लुप्त कर दिया। उस लुप्ति का दिन एक बार अवश्य आयगा इसे वह निश्चित रूप से जानता था। धीरे-धीरे स्क्रू कसना होगा। पर कुमुदिनी के जो उन्नीस बरस मधुसूदन के साध्य के बाहर है उन्हें इसी क्षण छीन सकने पर ही उसे शांति मिल सकती है। वह जबरदस्ती के अलावा और कोई रास्ता नहीं जानता था। आज गुरियों वाली थैली को फेंकने का साहस उसे नहीं हुआ—जिस दिन उसने अँगूठी निकाली थी उस दिन उसे अधिक साहस था। तब वह समझता था कि कुमुदिनी साधारण स्त्रियों की तरह सहज ही शासन के अधीन रह सकती है, बल्कि शासन पसंद करती है। आज

वह समझ गया है कि कुमुदिनी क्या कर सकती है और क्या नही। यह समझना आसान् नहीं है।

कुमुदिनी को अपने जीवन के साथ कड़े बंधन में बाँध रखने का एक-मात्र रास्ता है बच्चे की माँ बनने का रास्ता। इसी कल्पना में उसे सांत्वना मिल पाती है।

इसी तरह सोचते हुए घड़ी में पाँच बज गए। पर जाड़े की रात का अँधेरा अभी शेष था। कुछ ही देर बाद उजाला हो जायगा और आज की सारी रात व्यर्थ हो जायगी। मधुसूदन तुरंत कमरे से बाहर आया—फ़र्राशख़ाने के सामने उसने अपने पाँवों से ऐसी आवाज की, जो स्पष्ट सुनाई पड़े—दरवाज़ा भी उसने आवाज के साथ खोला। देखा, कुमुदिनी भीतर नही थी। कहाँ गई वह ?

बाहर आँगन के नल से पानी गिरने की आवाज सुनाई दी। बरामदे में खडे होकर उसने देखा, बहुत दिनों से अव्यवहृत पड़ी हुई ढेर-की-ढेर, जंग खाई दीवटों को कुमुदिनी इमली से माँज रही थी। मधुसूदन की दृष्टि में यह स्पष्ट ही स्वेच्छा से काम बढाने की चेष्टा थी; जाड़े की भोर में निद्राहीन रात के दुःख को और अधिक बढाने और फैलाने का प्रयास था।

मधुसूदन ऊपर के बरामदे से अवाक् होकर खड़ा-खड़ा देखता रहा। अबला के बल को किस प्रकार परास्त किया जा सकता है, इसी सोच मे वह मग्न था। सबेरे उठकर घर के लोग जब देखेंगे कि वह दीवट माँज रही है तब वे क्या सोचेंगे ! जिस नौकर के ऊपर माँजने का भार है वह क्या सोचेगा ? संसार-भर के लोगों के सामने उसे हास्यास्पद बनाने का दूसरा उपाय इससे बढकर और क्या हो सकता था ?

एक बार मधुसूदन के जी मे आया कि नीचे नल के पास जाकर कुमुदिनी से निबट ले। पर सबेरे-सबेरे वे दोनों आँगन के बीच में बहस करेंगे और घर-भर के लोग तमाशा देखने के लिए बिस्तर छोड़कर बाहर चले आयँगे, इस प्रहसन की बात सोचकर वह रह गया। मँझले भाई नवीन को बुलाकर उसने कहा, "घर में क्या-क्या हो रहा है, कुछ देखते भी हो ?"

नवीन जानता था कि भैया के लिए क्रोध का जब कोई कारण उपस्थित होता है तब डाँट खाने के लिए कोई चाहिए। दोषी यदि हाथ न लगे तो किसी निर्दोषी के मिलने से भी काम चल जाता है—नही तो 'डिसिप्लिन' नही रहता, परिवार मे उसके राष्ट्रतंत्र का 'प्रेस्टिज' समाप्त हो जाता है।

मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू पागलों की तरह जो काण्ड करने बैठ गई है उसका कारण क्या है। क्या मैं नही जानता ?"

बड़ी बहू किस प्रकार का पागलपन कर रही है, यह प्रश्न करने का साहस नवीन को नहीं हुआ—इसलिए कि कहीं खबर मालूम न होना ही एक अपराध न मान लिया जाय।

मधुसूदन बोला, "मँझली बहू उसका दिमाग खराब कर रही है।"

अत्यंत संकोच के साथ नवीन कहने लगा, "नहीं, मँझली बहू तो····"

मधुसूदन बोला, "मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

इसका कोई उत्तर नही हो सकता। 'अपनी आँखों से देखने मे' उसी पेपर-वेट वाली बात निहित थी।

२८

मोती की माँ जिस दिन से निश्छल प्रेम के साथ कुमुदिनी की सेवा मे प्रवृत्त हुई थी नवीन तभी समझ गया था कि यह बात घरवालों को सह्य नहीं होगी—घर की स्त्रियाँ इस बात को लेकर आपस में कानाफूसी करना शुरू कर देंगी। नवीन ने सोचा कि इसी तरह की कोई घटना घटी है। पर मधुसूदन के अनुमानित अभियोग का प्रतिवाद करने से कोई लाभ, नही। वह जानता था कि ऐसा करने से केवल ज़िद ही बढ़ेगी।

बात क्या हुई मधुसूदन ने स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया। शायद बताने में उसे लज्जा मालूम हुई। उसके निवारण के लिए क्या करना होगा यह बात भी अस्पष्ट रह गई। जितना-कुछ स्पष्ट हो पाया वह केवल यह कि सारा दायित्व मँझली बहू का है। अतएव दाम्पत्य की आपेक्षिक मर्यादा के अनुसार जवाबदेही के सिर और पूँछ मे से नवीन के भाग्य में सिर वाला हिस्सा ही पड़ा।

नवीन ने जाकर मोती की माँ से कहा, "एक नया झंझट आ खड़ा हुआ है।"

"क्यों, क्या हुआ है ?"

"यह तो अंतर्यामी ही जानें, या फिर भै या जानते होंगे या तुम। पर डाँट पहले-पहल पड़ी है मुझी पर।"

"क्यों, तनिक बताओ तो सही !"

"जिससे मेरे द्वारा तुम्हारा सुधार हो और तुम्हारे द्वारा सुधार हो उनके नये व्यवसाय की नई आमदनी में।"

"तो पहले मुझ पर सुधार की कार्रवाई आरंभ करो—देखें तुम्हारे भैया की

अपेक्षा तुम्हारे हाथ मे अधिक यश है या नहीं ।"

नवीन कातर भाव से बोला, "भैया के उडिया नौकर ने उनके कीमती डिनर सेट का एक टुकड़ा तोड डाला था, उसके जुर्माने का प्रधान अंश मुझे ही चुकाना पडा था, यह तुम्हे मालूम है—इसका कारण स्पष्ट ही यह है कि ये सब चीज़ें मेरे ही जिम्मे है। पर इस बार जो चीज घर मे आई वह भी क्या मेरे ही ज़िम्मे है ? फिर भी जुर्माना हम दोनों को मिलकर चुकाना होगा। इसलिए तुम्हें जो कुछ करना हो करो, पर मुझे अब अधिक दुःख न दो, मँझली बहू ।"

"जुर्माने से तुम्हारा आशय क्या है ?"

"रजबपुर में चालान कर देंगे। बीच-बीच मे कुछ इसी तरह की धमकी वह देते रहते है।"

"तुम डरते हो, इसीलिए तुम्हे इस प्रकार की धमकी दी जाती है। एक बार तो भेजा था, क्या फिर रेल का भाड़ा देकर वापस नही बुलाना पड़ा ? तुम्हारे भैया गुस्से में भी हिसाब की गलती नही करते। वह जानते हैं कि मुझे घर-गिरस्ती के प्रबंध से बरखास्त करने से उन्हे तनिक भी सस्ता नही पडेगा। यदि कही एक पैसे का भी नुकसान हुआ तो उनसे नही सहा जायगा।"

"समझा, पर इस समय क्या करना होगा, तुम्ही बताओ !"

"अपने भैया से कहो, वह चाहे कितने ही बड़े राजा क्यों न हों, वेतनभोगी आदमियों को रखने से वह रानी का मान-भंजन नहीं कर पायँगे—मान का बोझ उन्हें अपने ही सिर पर उठाना होगा। सुहाग-संबंधी मामलों मे कुली-मजूरों को बुलाने से उन्हें मना करो !"

"मँझली बहू, उन्हें उपदेश देने के लिए मेरी आवश्यकता नहीं पड़ेगी ; दो दिन बाद वह स्वयं होश में आ जायँगे। इस बीच तुम दूती का काम करो, उसका कुछ फल हो चाहे न हो। यह तो दिखा सकेंगे कि नमक खाकर हम उसे चुपचाप हज़म नही कर रहे है।"

मोती की माँ कुमुदिनी को खोजने चली गई। वह जानती थी कि सवेरे वह छत पर चली जाती है। ऊँची दीवार से घिरी हुई छत थी, जिसके बीच-बीच मे छिद्र बने हुए थे। कुछ टेढे-मेढे गमले रखे थे, जिनमें पेड़ नही थे। एक कोने में लोहे का बड़ा-सा, जालीदार, टूटा हुआ चौकोर पिंजरा पड़ा था। उसके काठ का तला जीर्ण हो चला था। किसी समय उसमे खरगोश या कबूतर रखे जाते थे, अब अचार, अमावट आदि को कौवों से बचाने और धूप में रखने के काम में वह आता था। इस छत से ऊपर का आकाश दिखाई देता था, पर क्षितिज नही दीख पड़ता था। पश्चिम आकाश में लोहे के कारखाने

की चिमनी नजर आती थी। कुमुदिनी पिछले दो-एक दिनों से जब-जब इस छत पर आकर बैठती थी तब-तब उस चिमनी से निकलने वाला धुएँ का कुंडल ही उसके देखने की एक-मात्र वस्तु थी। सारे आकाश में जैसे वही एक सजीव पदार्थ था, जो किसी एक आवेग से फूलकर कुंडली बनाता जाता था।

दीवट आदि माँजने का काम समाप्त करके, अँधेरे मे ही स्नान करने के बाद कुमुदिनी छत पर पूरब की ओर मुँह किये बैठी थी। भीगे हुए बाल उसकी पीठ पर लहरा रहे थे—साज-सिंगार का कही चिह्न नही था, मोटे सूत की, बारीक काली किनारी वाली एक सादी साड़ी पहने थी, और शीत-निवारण के लिए अंडी की एक मोटी चादर ओढ़े थी।

कुछ दिनों से प्रत्याशित प्रियतम के काल्पनिक आदर्श को अपने अंतर में रखकर यह युवती अपने हृदय की क्षुधा मिटाने बैठी थी। उसकी जितनी भी पूजाएँ, जितने भी व्रत, जितनी पुराण-कथाएँ थी वे सब इस कल्पना की मूर्ति को सजीव करने में सहायक सिद्ध हो रही थी। वह अपने मानस-वृंदावन की अभि-सारिणी थी। भोर में उठकर उसने रामकली रागिनी में यह गीत गाया था:

'तुमसे हमसे प्रीति लगी है
सुनो मनमोहन प्यारे!'

जिस अनागत मनुष्य के उद्देश्य से उसके आत्म-निवेदन का अर्घ्य प्रस्तुत है वह सामने उपस्थित होने के पहले ही जैसे प्रतिदिन अपना प्याला उसकी ओर भेजता चला आया है। वर्षा की रात में अंतःपुर के बाग के पेड़ जब अविराम धारा-पात के आघात से अपने पत्तो को जब उन्मत्त आनंद से नचाते थे तब उसके मन में कान्हड़ा के सुर में यह गीत बज उठता था:

'झननन बाजे पायलिया मोरी
कैसे घर जाऊँ लंगरवा!'

उदास मन के चरण-चरण में झननन नूपर बज रहे हैं—निरुद्देश्य भाव से वे चरण पथ पर निकल पड़े हैं—कभी किसी काल में वे फिर घर को लौट भी सकेंगे! जिसे वह रूप में देखना चाहती थी उसे वह कब से सुर में देख पा रही थी। निगूढ़ आनंद-वेदना की परिपूर्णता के दिनों मे यदि वह अपने मन के अनुकूल किसी व्यक्ति को संयोग से पा लेती तो अंतर के सभी गुंजरित गान तभी रूप में प्राण पा जाते। पर कोई पथिक उसके द्वार पर आकर खडा नही हुआ। अपनी कल्पना के निभृत, निकुंज-गृह में वह एकदम अकेली थी। यहाँ तक कि उसकी समवयस्का संगिनी भी कोई विशेष नहीं थी। इसीलिए इतने दिनों तक श्यामसुंदर के चरणों में उसका रुद्ध प्यार पूजा के फूलों के रूप में अपने

निरुद्दिष्ट प्रियतम को खोज रहा था। यही कारण था कि जब घटक विवाह का प्रस्ताव लेकर आया था तब कुमुदिनी ने देवता की ही अनुमति चाही थी। उसने पूछा था, 'इस बार तुम्ही को तो पाऊँगी न ?' अपराजिता के फूल ने उत्तर दिया था, 'यह पा तो गई हो।'

अंतर के इतने दिनो का सारा आयोजन व्यर्थ सिद्ध हुआ। खट-से उठा पत्थर और एक क्षण में सारी नाव ही डूब गई। व्यथित यौवन आज फिर खोजने निकला है—कहाँ अर्पित करेगा अपना फूल ! थाली में जो अर्घ्य उसने सजाया था वह आज दुःसह भार-स्वरूप हो गया है। इसीलिए आज वह समस्त प्राण-शक्ति से गा रही है, 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।'

पर आज यह गीत शून्य में चक्कर काटता फिर रहा है, वह कही भी पहुँच न पाया। इस शून्यता से कुमुदिनी का मन भय से भर उठा। आज से लेकर जीवन के अंतिम दिन तक उसके मन की अतलव्यापी गहन आकांक्षा क्या उस धुएँ की कुण्डली की ही तरह संगीहीन अवस्था मे उसाँसें भरती रहेगी ?

मोती की माँ पीछे कुछ दूर हटकर बैठी रही। प्रभात के निर्मल प्रकाश मे छत पर असज्जिता सुन्दरी की महिमा ने उसे विस्मित कर दिया था। वह सोच रही थी, इस घर में वह कैसे शोभा पा सकती है ? यहाँ जो सब दूसरी स्त्रियाँ है वे इसकी तुलना में किस जाति की है ? वे अपने-आप ही उससे अलग हुई जा रही है। वे उससे चिढ़ रही है; उसके साथ सौहार्द स्थापित करने का साहस उनमे नहीं है।

बैठे-बैठे मोती की माँ ने सहसा देखा, कुमुदिनी अपनी चादर के अचल से दोनो हाथों से अपना मुँह ढाँपकर रोने लगी है। वह रह न सकी, निकट आकर उसे गले से लगाकर बोली, "मेरी प्यारी-सी दीदी, तुम्हे क्या हुआ है, मुझे बताओ तो सही !"

कुमुदिनी बहुत देर तक कुछ बोल ही न पाई। कुछ सँभलने के बाद बोली, "आज भी भैया का पत्र मुझे नहीं मिला। पता नहीं उनकी हालत कैसी है।"

"पत्र मिलने का समय क्या हो गया है ?"

"निश्चय ही हो गया है। मैं उन्हें बीमारी की हालत मे देखकर आई थी। उन्हें पता है कि उनका समाचार पाने के लिए मैं किस तरह बेचैन रहती हूँ।"

मोती की माँ ने कहा, "तुम चिन्ता न करो, मैं किसी भी उपाय से उनका कुशल-समाचार पाने का प्रयत्न करूँगी।"

कुमुदिनी ने कई बार तार भेजने की बात सोची थी, पर किसके द्वारा भेजे ? जिस दिन मधुसूदन ने अपने को उसके भैया का महाजन बताकर अपनी

बड़ाई की थी, उस दिन से उसके आगे अपने भैया का उल्लेख भी करने की इच्छा उसे नही होती। आज मोती की माँ से उसने कहा, "तुम यदि भैया को मेरे नाम से एक तार भेज दो तो बड़ा काम हो जाय।"

मोती की माँ ने कहा, "मै अवश्य करूँगी, चिन्ता की क्या बात है ?"

कुमुदिनी बोली, "तुम जानती हो, मेरे पास एक भी रुपया नही है।"

"तुम क्या कह रही हो, दीदी! परिवार के खर्च का जो रुपया मेरे पास रहता है, वह सब तुम्हारा ही तो है। मैं तुम्हारा ही तो नमक खा रही हूँ।"

कुमुदिनी जोर के साथ बोल उठी, "न, न, न! इस घर का कुछ भी मेरा नही है, एक अधेला भी नही।"

"अच्छा, तुम्हारे लिए मै अपने ही पैसे खर्च करूँगी। चुप क्यों हो? इसमे क्या दोष है? रुपया यदि मै अहंकार के साथ देती तब उस दशा मे तुम अहंकार के साथ ही न लेती। पर जब मै प्यार से ही दे रही हूँ तब तुम भी प्यार से ही उसे क्यों न लोगी ?"

कुमुदिनी ने कहा, "लूँगी।"

मोती की माँ ने पूछा, "दीदी, तुम्हारा सोने का कमरा क्या आज भी सूना रहेगा ?"

"वहाँ मेरे लिए जगह नही है।"

मोती की माँ ने इस पर फिर बहस नही की। उसके मन का भाव यह था कि आग्रह करने का काम उसका नहीं है; जिसका है वही करे। धीरे से बोली, "थोड़ा-सा दूध ला दूँ तुम्हारे लिए ?"

कुमुदिनी ने कहा, "अभी नही, कुछ देर बाद।" अपने देवता से अभी उसकी पूरी बातें नही हो पाई थीं। अभी तक मन के भीतर उसने कोई उत्तर नही पाया था।

मोती की माँ अपने कमरे में जाकर नवीन को बुलाकर बोली, "एक बात सुनो! जेठ जी के बाहर वाले कमरे में जाकर उनके डेस्क में खोजकर देखो कि दीदी के लिए कोई पत्र आया है या नहीं—दराज़ खोलकर भी देखना!"

नवीन बोला, "ग़ज़ब हो जायगा!"

"तुम यदि नहीं जाओगे तो मैं जाऊँगी।"

"यह तो झाड़ी के भीतर से भालू के बच्चे को पकड़ लाना है।"

"जेठ जी गए है आफ़िस। उन्हे काम समाप्त करके लौटते-लौटते एक बज जायगा—इस बीच..."

"देखो मँझली बहू, दिन मे यह काम मुझसे किसी तरह भ नही होता;

इस समय चारो ओर लोगों का आना-जाना लगा रहता है। आज रात तुम्हें सूचना दे सकूँगा।"

मोती की माँ ने कहा, "अच्छी बात है, ऐसा ही सही। पर नूरनगर के लिए अभी तार भेजना होगा—यह जानने के लिए कि विप्रदास बाबू कैसे है।"

"ठीक है। पर यह काम भैया को जताकर ही तो करना होगा ?"

'नही।"

"मँझली बहू, देखता हूँ तुम 'मरता क्या न करता' का-सा रुख अपनाये हुए हो ! इस घर मे मालिक के हुक्म के बिना छिपकली तक एक मक्खी नही पकड सकती, और मै···"

"दीदी के नाम से तार जायगा, इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है !"

"मेरे हाथ से तो जायगा !"

"जेठ जी के आफ़िस मे ढेर-से तार रोज दरबान के हाथ भेजे जाते है, उन्हीके साथ इसे भी भेज देना ! यह लो रुपया, दीदी ने दिया है।"

कुमुदिनी के प्रति यदि नवीन का भी मन करुणा से द्रवित न हुआ होता तो इतने बड़े दु:साहसिक काम का भार वह अपने ऊपर कदापि न लेता।

२९

मधुसूदन नियमानुसार दिन में एक बजे बाद भोजन के लिए अंत:पुर में आया। यथानियम घर की आत्मीय स्त्रियों ने उसे घेर लिया। कोई पंखे से मक्खियों को भगाने लगी और कोई परोसने लगी। पहले ही कहा जा चुका है कि मधुसूदन के अंत:पुर की व्यवस्था में ऐश्वर्य का आडंबर नही था। उसके भोजन का आयोजन पुराने अभ्यास के ही अनुसार था। मोटे चावल का भात न होने से न भोजन रुचता था, और न पेट ही भरता था। पर बर्तन बड़े कीमती थे। चाँदी की थाली, चाँदी का कटोरा और चाँदी का ही गिलास। साधारणत: मटर की दाल, मछली की तरी, इमली की चटनी, काँटा-चच्चड़ी—ये ही चीज़ें प्रमुख खाद्य-सामग्री के रूप में बनती थीं। अंत में एक बड़े कटोरे में चीनी-मिला दूध दिया जाता था। उसे पूरी तरह से समाप्त करके, पान के डंठल से काफ़ी चूना निकालकर, उसके साथ एक पान मुँह में और दो पान डिब्बे में भरकर, पन्द्रह मिनट तक हुक्का गुड़गुड़ाने के बाद तुरंत आफ़िस को लौट जाना होता

था। मधुसूदन की आपेक्षिक दैन्य-दशा से लेकर आज तक इस नियम में कभी कोई व्यतिक्रम नही दिखाई दिया। भोजन के प्रति मधुसूदन को भूख थी, लोभ नहीं था।

श्यामासुन्दरी दूध के कटोरे मे चीनी मिला रही थी। उसका रंग कुछ साँवला था। वह बहुत मोटी नहीं थी, पर उसका परिपुष्ट शरीर अपनी घोषणा जैसे स्वयं ही करता था। एक सफेद साड़ी से अधिक उसके शरीर में और कोई कपड़ा नहीं था, पर सब समय उसका पहनावा साफ़-सुथरा लगता था। उसकी वय प्रायः यौवन की परिणति की सीमा तक पहुँच चुकी थी। वह जेठ के अपराह्न की तरह लगती थी, जब दिन ढलने लगता है, पर गोधूलि की छाया पड़ने मे देर मालूम होती है। घनी भौहों के नीचे तीखी, काली आँखे जैसे सामने से किसी को नही देखती थी, केवल एक नजर देखकर जैसे सब-कुछ देख लेती थी। उसके उभरे हुए ओठों में एक ऐसा भाव पाया जाता था कि लगता था जैसे बहुत-सी बातें उनमें दबाई गई है। संसार ने उसे अधिक रस नहीं दिया था, फिर भी वह जैसे भीतर से भरी हुई थी। वह अपने को क़ीमती समझती थी, वह कृपण भी नहीं थी। पर उसका महँगापन व्यवहार में न आ सका, इसलिए अपने चारों ओर के परिवेश के प्रति उसके मन मे एक अहंकार-भरी अश्रद्धा वर्तमान थी। मधुसूदन के ऐश्वर्य के ज्वार के दिनों में ही इस परिवार में उसका प्रवेश हुआ था। यौवन के जादू-मंत्र से वह इस परिवार की चोटी पर अपना स्थान बना लेगी, ऐसा भी विश्वास उसे था। मधुसूदन का मन उसे देखकर कभी विचलित न हुआ हो, ऐसी बात भी नहीं है। पर मधुसूदन ने कभी हार नहीं मानी। इसका कारण यह था कि उसकी विषय-बुद्धि केवल बुद्धि तक ही सीमित नही थी; वह थी प्रतिभा। इसी प्रतिभा के जोर से उसने सृष्टि की थी और उसी सृष्टि के परमानन्द में वह गहन रूप से मग्न था। इस प्रतिभा के ही प्रताप से वह जानता था कि धन सृष्टि की जिस तपस्या में वह जुटा हुआ है उसे भंग करने के लिए इन्द्रदेव ने कई विघ्न भेजे है—बीच-बीच में ऐसे धक्के लगे है जिनसे तपोभंग की आशंका उत्पन्न हुई है, पर प्रत्येक बार वह सँभल गया। इस संबंध में उसे यह सुविधा थी कि व्यवसाय की प्रगति के मध्याह्न में उसे इन सब बातों के लिए तनिक भी अवकाश नहीं था। उस कठिन परिश्रम के बीच आँखो से देखने और कानो से सुनने में वह श्यामा का जो संग निःसंग भाव से पाता था उससे जैसे उसकी थकान दूर होती थी। तिथि-त्योहार के अनुष्ठानों के सम्बन्ध में उसके पक्षपात का भार कुछ अधिक झुकता था, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। पर उसने कभी श्यामा को इतना

प्रश्रय नहीं दिया जिससे अन्त:पुर मे उसकी स्पर्द्धा बढ़ पाती । श्यामा ने मधुसूदन के मन का झुकाव ठीक समझ लिया था, फिर भी उसके संबंध में उसके मन का भय दूर नही हुआ ।

मधुसूदन के भोजन के समय श्यामासुन्दरी नित्य उपस्थित रहती थी । आज भी थी । अभी-अभी उसने स्नान किया था—उसके असाधारण रूप से काले, घने लम्बे बाल पीठ पर अस्त-व्यस्त बिखरे हुए थे । उनके ऊपर स्वच्छ-शुभ्र साड़ी सिर तक खिची हुई थी । भीगे हुए बालों से सिर धोने के मसाले की मन्द-मन्द गन्ध आ रही थी ।

दूध के कटोरे की ओर से मुँह न हटाकर उसने धीरे से कहा, "लाला, बहू को बुला लाऊँ ?"

मधुसूदन बिना कुछ बोले अपनी भाभी के मुख की ओर गम्भीर भाव से ताकता रहा । श्यामासुन्दरी उसका यह भाव देखकर कुछ घबरा गई और अपने प्रश्न की व्याख्या करती हुई बोली, "तुम्हारे भोजन के समय यदि वह पास मे रहती तो अच्छा रहता ; तनिक तुम्हारी सेवा—"

मधुसूदन के मुख के भाव का अर्थ कुछ भी न समझ पाने से वह आधी बात कहकर ही चुप लगा गई । मधुसूदन फिर सिर नीचा करके भोजन में जुट गया ।

कुछ देर बाद थाली की ओर से मुँह हटाये बिना ही उसने पूछा, "बड़ी बहू इस समय कहाँ है ?"

श्यामासुन्दरी हड़बड़ाती हुई बोली, "मै अभी देखे आती हूँ ।"

मधुसूदन ने भौहे सिकोड़कर उँगली से निषेध किया । प्रश्न का जो उत्तर पाने की आशा उसे थी वह श्यामा के मुँह से सुनने पर सह्य नही होगा, यह वह जानता था ; फिर भी मन में यथेष्ट कुतूहल था । भोजन समाप्त करके जब वह तिमंजिले में अपने सोने के कमरे में गया, तब उसके मन के एक कोने में एक क्षीण आशा बनी हुई थी । एक बार वह छत में भी घूम आया । बगल वाले गुसल-खाने मे जाकर कुछ समय के लिए स्तब्ध भाव से खड़ा रहा । उसके बाद पलंग पर लेटकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा । जो पन्द्रह मिनट विश्राम के लिए नियत थे वे बीत चले । बीस मिनट पूरे होकर जब आध घंटा भी समाप्ति पर आया, तब जेब से घड़ी निकालकर उसने समय देखा । बरसों बीत चुके, ऑफिस को लौटने में इसके पहले कभी पाँच मिनट की भी देर न हुई । ऑफ़िस के हाजिरी-रजिस्टर में यह बरा-बर दर्ज रहता था कि कौन किस समय आया और किस समय गया—उसीके हिसाब से वेतन में वृद्धि या कमी की जाती थी । ऑफ़िस के सभी कर्मचारियों

मे मधुसूदन के जुर्माने का अक सबसे कम था। पर इस संबंध मे उसने अपने प्रति कभी पक्षपात नही किया। वास्तव मे वह कर्मचारियो की अपेक्षा डबल जुर्माना भरता था। आज उसने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि तीसरे पहर ऑफिस का समय समाप्त हो जाने के बाद वह अतिरिक्त काम करके क्षति-पूर्ति कर लेगा। पर जितना ही समय बीतता जाता था, काम से उसका मन उतना ही हटता जा रहा था। यहाँ तक कि आज वह आध घण्टा पहले ही ऑफ़िस से घर लौट आया। उसके मन में केवल यही एक इच्छा प्रबल हो उठी थी कि आज असमय मे ही सोने के कमरे मे प्रवेश करे। शायद वहाँ वह किसी को देख पाय। इसके पहले वह दिन में कभी सोने के कमरे मे पॉव नही रखता था। आज ऑफिस की पोशाक मे ही वह सीधा अंतःपुर में चला गया।

ठीक उसी समय मोती की माँ छत पर धूप मे सूखने को रखी हुई आम की खटाई को टोकरी मे बटोर रही थी। मधुसूदन को असमय मे सोने के कमरे में घुसते देखकर वह घूँघट नीचे खींचकर उसकी ओट में मुस्कराने लगी। मँझली बहू के आगे अपने अनियम की बात प्रकट हो जाने से मधुसूदन लज्जित हुआ। और साथ ही खीझ उठा। वह अपने मन मे यह योजना बनाकर चला कि वह दबे पाँव कमरे मे घुसेगा—कही भीरु हरिणी भाग न जाय। पर ऐसा हो न पाया। कुतूहली दृष्टि से बचने के लिए वह स्वयं ही द्रुत पगों से कमरे में घुसा। वहाँ जाकर देखा, ऑफ़िस से जल्दी चले आना व्यर्थ हुआ। कमरे मे कोई नही था, और न इस बात का ही कोई चिह्न दिखाई दिया कि उस कमरे में दिन के समय एक क्षण के लिए भी कोई वहाँ था। उसे अपना अधैर्य असहनीय मालूम होने लगा। यद्यपि वह जेठ था और कभी उसने मँझली बहू से एक भी बात नही की थी, तथापि आज उसका मन इस बात के लिए छटपटाने लगा कि उसे बुलाकर कुमुदिनी के संबंध में पूछे। एक बार वह कमरे से बाहर भी आया। पर मोती की माँ तब नीचे चली गई थी।

नव-वधू द्वारा परित्यक्त शयन-कक्ष मे अकारण, असमय मे अकेला समय बिताने के अपमान से रक्षा पाने के लिए वह रौब के साथ तेज़ चाल मे बाहर की ओर चला गया। एक बहुत आवश्यक काम करने का स्वाँग रचकर डेस्क की ओर झुककर बैठ गया। सामने एक रजिस्टर पड़ा हुआ था। साधारणतः उस रजिस्टर को वह नही देखा करता था, उसे देखता था उसका हेड बाबू। आज घर वालों को धोखे मे रखने के लिए वह उसे खोल बैठा। उस रजिस्टर मे उसके घर से भेजे जाने वाली सभी चिट्ठियो और तारों की तारीख और समय लिखा

रहता था । रजिस्टर खोलते ही आज की सूची मे सबसे पहले उसे दिखाई दिया विप्रदास का नाम और ठिकाना । तार भेजने वाले के नाम की जगह स्वयं 'मालकिन' का उल्लेख किया गया था ।

"बुलाओ दरबान को !'

दरबान आया ।

"यह तार किसने दिया तुम्हे भेजने के लिए ?"

"मँझले बाबू ने ।"

"बुलाओ मँझले बाबू को !"

मँझले बाबू मुरझाया हुआ चेहरा लेकर उपस्थित हुए ।

"मेरे आदेश के बिना तार भेजने को किसने कहा ?" जिसने कहा था शासन-कर्त्ता के सामने उसका नाम लेना आसान काम नहीं था । क्या कहे, नवीन की समझ मे नही आ रहा था और जाडे का मौसम होने पर भी वह पसीना-पसीना हो रहा था ।

नवीन को चुप देखकर मधुसूदन स्वयं ही बोल उठा, "मँझली बहू ने कहा होगा ?" नवीन सिर नीचा किये निरुत्तर रहा, जिससे उत्तर स्पष्ट हो गया । मधुसूदन के सिर पर जैसे खून चढ़ बैठा । मुँह एकदम लाल हो आया । क्रोध का वेग इतना तीव्र हो उठा कि मुँह से आवाज नही निकली । वह हाथ हिलाकर नवीन को बाहर निकल जाने का सकेत करके कमरे के एक छोर से दूसरे छोर तक टहलने लगा ।

३०

नवीन जब अपने कमरे मे गया तब उसका चेहरा एकदम सूखा हुआ था । मोती की माँ से बोला, "मँझली बहू, अब बहुत हो चुका ।"

"क्या हुआ ?"

"सब सामान उठाकर बक्स मे बंद कर लो !"

"तुम्हारी बुद्धि से यदि मै बंद करूँ तो कल फिर खोलकर सामान बाहर निकालना होगा । पर क्यो ? तुम्हारे भैया का मिजाज कुछ बिगड़ा हुआ है न ?"

"मै तो जानता हूँ उन्हें । लगता है, अब यहाँ से डेरा हटाना पड़ेगा ।"

"तब चलो न। इतना सोचते क्यों हो ?"

"मुझसे चलने को क्यों कहती हो ? इस बार हुक्म होगा, मँझली बहू को गाँव भेज दो।"

"यह हुक्म तुम मान नहीं सकोगे, यह मै जानती हूँ।"

"कैसे जाना तुमने ?"

"मै क्या अकेली ही जानती हूँ। ऐसा मत सोचो—घर के सब लोग तुम्हे स्त्रैण समझते है। पुरुष कैसे स्त्रैण हो सकता है, तुम्हारे भैया इतने दिनो तक समझ ही नही सके थे। अब उनके समझने की बारी आई है।"

"क्या कहती हो तुम ?"

"मै तो देखती हूँ कि तुम्हारे कुल ही में यह रोग है। इतने दिनो तक बड़े भाई की इस प्रवृत्ति का परिचय नही मिला था। बहुत दिनो तक वह दबी हुई थी, इसलिए उसकी तेजी भी उतनी ही अधिक होगी, तुम देख लेना, मै कहती हूँ। जिस जोर के साथ वह दीन-दुनिया को भूलकर रुपये की थैली को जकड़े हुए थे, ठीक वही ज़ोर अब बहू पर पड़ेगा।"

"तो पड़ने दो ! बड़ा स्त्रैण तो बैठक जमा लेगा, पर मंझला स्त्रैण किसको लेकर जियेगा ?"

"यह सोचने का भार मेरे ऊपर है। इस समय मै तुमसे जैसा कहती हूँ वैसा करो ! उनका दराज तुम्हें टटोलना होगा।"

नवीन हाथ जोड़ता हुआ बोला, "दुहाई है मँझली बहू—साँप के बिल में हाथ डाल सकता हूँ, पर दराज में नही।"

"साँप के बिल में यदि हाथ डाला होता तो मैं स्वयं ही डालती, पर दराज़ तो तुम्हीं को टटोलना होगा। तुम तो जानते हो, इस घर की सभी चिट्ठियाँ पहले उन्हे दिखाये बिना किसी को देने का हुक्म नही है। मेरा मन कहता है उनके हाथ में चिट्ठी पहुँच गई है।"

"मेरा भी मन यही कहता है, पर उसके साथ ही यह भी कहता है कि यदि मैं उस चिट्ठी मे हाथ लगाऊँ तो भैया उपयुक्त दंड खोज ही न पायँगे। लगता है, सात साल सश्रम फाँसी का हुक्म होगा।"

"तुम्हें कुछ नही करना होगा, चिट्ठी में हाथ न लगाना, केवल एक बार देख आओ कि दीदी के नाम कोई पत्र आया है या नहीं।"

मँझली बहू के प्रति नवीन के मन में बड़ी भक्ति थी। यहाँ तक कि वह अपने को अपनी पत्नी के अयोग्य समझता था, इसलिए उसकी खातिर कोई

दु.साध्य काम करने में चाहे उसे कितना ही भय क्यों न लगता हो, प्रसन्नता भी उतनी ही होती है ।

उसी रात मँझली बहू को नवीन ने सूचना दी कि कुमुदिनी के नाम एक पत्र और एक तार दराज में पड़े है ।

जिस उत्तेजना के पहले धक्के से कुमुदिनी सोने के कमरे से बाहर निकलकर दास-वृत्ति की ओर उन्मुख हुई थी उसका वेग अब कम हो गया था । अपमान की खीझ कम होने पर उसका मन विषाद की म्लानता से धुँधला हो गया था । वह जानती है कि यह चिरकाल की व्यवस्था नहीं है । तथापि इस प्रकार की कोई व्यवस्था न होने से वह जियेगी कैसे ? ससार मे मृत्यु-पर्यन्त दिन-रात हठपूर्वक इस प्रकार असलग्न भाव से रहना तो संभव नहीं है ।

अपने कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द करके वह यही बात सोच रही थी । वह कमरा बरामदे के एक कोने में लकडी के घेरे के भीतर था । प्रवेश-द्वार को छोड़कर शेष सारी कोठरी बिलकुल रुद्ध थी । दीवार में ऊपर तक लकडी के ताको पर रोशनी जलाने का विचित्र सरंजाम रखा हुआ था । तेल के दागों से सारा कमरा गंदा दिखाई देता था । दीवार के जिस भाग में दरवाजा था वहाँ पर किसी एक नौकर ने मोमबत्तियों के बंडल के बाहर वाले काग़ज़ों से तसवीरें काटकर चिपका रखी थी, और इस प्रकार अपने सौदर्य-बोध की तृप्ति की थी । एक कोने में टिन के बक्स मे खड़िया मिट्टी का चूरा पड़ा था, उसकी बगल में एक टोकरी मे सुखाई हुई इमली और कुछ मैंले झाड़न पड़े हुए थे । और पास ही मिट्टी के तेल के कनस्तरों की कतार-की-कतार पड़ी हुई थी, जिनमे दो-तीन को छोड़कर शेष सभी खाली थे ।

आज सबेरे से ही कुमुदिनी अपने अनिपुण हाथो से अपने काम पर जुटी हुई थी । भंडार से सम्बन्धित कर्त्तव्य समाप्त करके मोती की माँ ने एक बार भीतर झाँककर कुमुदिनी की कर्म-तपस्या के एकांत संकट का दृश्य खड़े-खड़े देखा । वह समझ गई कि दो-एक क्षण-भंगुर चीज़ों को जल्दी ही दुर्घटना का शिकार बनना पडेगा । इस घर में चीजों की सामान्य क्षति की भी उपेक्षा नही की जाती थी ।

मोती की माॅ रह न सकी । बोली, "अभी हाथ में कोई काम नहीं था, इसलिए चली आई । सोचा, दीदी के काम में भी जाकर हाथ लगाऊँ—पुण्य होगा ।" यह कहकर उसने शीशे के ग्लोब और लैंपों की चिमनियों का ढेर अपनी ओर खीच लिया और उन्हे साफ करने लगी ।

आपत्ति करने का साहस कुमुदिनी में नहीं रह गया था । इस बीच अपनी

अक्षमता के संबंध में उसका आत्म-आविष्कार पूरा हो चुका था। मोती की माँ की सहायता पाकर वह जैसे जी गई। पर मोती की माँ की पटुता की भी सीमा थी। केरोसीन-लैम्प में बत्ती ठीक हिसाब से फिट करना उसके लिए संभव नही था। यह ठीक है कि यह सब काम नित्य उसीकी देख-रेख मे हुआ करता था, उसमें कितना तेल पड़ेगा इसका हिसाब वही रखती थी, पर स्वय बत्ती को ठीक से काटने और 'फ़िट' करने का काम उसने कभी नहीं किया। इसलिए उसने बुड्ढे बंकू फर्राश को सहायता के लिए बुलाने की बात सुझाई।

हार माननी ही पड़ी। बकू फर्राश आया, और थोड़े ही समय के अन्दर उसने बड़ी फुर्ती से सारा काम समाप्त कर दिया। साँझ के पहले ही दीपों को प्रत्येक कमरे में निर्दिष्ट भाग के अनुसार दे आना पडता था। बंकू ने पूछा कि इस काम के लिए उसे समय पर आना पडेगा या नहीं। आदमी सीधा मालूम होता था, फिर भी इसके प्रश्न मे थोड़ा-सा व्यंग्य था। कुमुदिनी के कान के नीचे का भाग लाल हो आया।

उसके उत्तर देने के पहले ही मोती की माँ बोली, "आयगा क्यों नहीं?" कुमुदिनी समझ गई कि काम करने का हठ करने से वह केवल काम मे विघ्न उपस्थित कर रही है।

३१

दोपहर के समय, भोजन कर चुकने के बाद कमरे का दरवाजा बंद करके कुमुदिनी बैठे-बैठे प्रतिज्ञा करने लगी कि वह अपने में किसी भी हालत में क्रोध की आग नही भड़कने देगी। वह मन-ही-मन बोली, 'आज का दिन तो मन को स्थिर करने में बीत जायगा। कल सुबह देवता का आशीर्वाद लेकर गार्हस्थ्य-धर्म के सत्य-पथ की ओर प्रवृत्त हो जाऊँगी।'

वह काठ के उस कमरे में बंद होकर स्वयं अपने से निबटने का प्रयत्न करने लगी। इस काम में सबसे अधिक सहायक थी उसके भैया की स्मृति। वह अपने भैया के मन की आश्चर्यजनक गंभीरता का परिचय पा चुकी थी। उनके मुख पर विषाद की छाया रहती थी। वह उनके अंतर की महत्ता का ही प्रतिबिंब था। यद्यपि उस समय के शिक्षित समाज में प्रचलित 'पाजीटिविज़्म' को ही उन्होंने अपना धर्म बनाया था, और देवता को बाहर से प्रणाम करने का अभ्यास

उन्हे नही था, तथापि लगता था जैसे देवता स्वयं ही उनके जीवन को पूर्ण करके प्रकट हुए हैं।

तीसरे पहर जब बक़ू फ़र्राश ने दरवाजे पर दस्तक दी तब कुमुदिनी कमरा खोलकर बाहर निकल गई। मोती की माँ को उसने सूचित किया कि आज रात मे वह खाना नही खायगी। अपने मन को शुद्ध करने के लिए ही वह उपवास करना चाहती थी। मोती की माँ उसका मुख देखकर चकित रह गई। उस मुख पर आज हृदय की ज्वाला की लाल आभा नही थी। उसके ललाट पर और आँखों में थी प्रशांत स्निग्ध दीप्ति। लगता था जैसे कभी-कभी वह तीर्थ-स्नान करके, पूजा समाप्त करके आई है। जैसे अन्तर्यामी देवता ने उसका सारा अभिमान हरण कर लिया था। जैसे वह अपने हृदय के दोने में निर्माल्य के फूल बीनकर लाई हो और उन्हीं फूलों की सुगध उसे घेरे हुए हो। इसीलिए जब कुमुदिनी ने उपवास करने की बात कही तब मोती की माँ समझ गई कि यह अभिमान का आत्म-पीडन नही है। यही कारण था कि उसने कोई आपत्ति नहीं उठाई।

कुमुदिनी अपने देवता की मूर्ति को अपने अंतर मे बिठाकर छत के एक कोने में जाकर बैठ गई। आज वह स्पष्ट समझ गई कि यदि दुःख ने उसे इस तरह आघात न किया होता तो वह अपने देवता के इतने निकट कभी न आ पाती। अस्तोन्मुख सूर्य की ओर देखती हुई वह हाथ जोड़कर बोली, "देवता अब कभी तुम्हारे साथ मेरा विच्छेद न होने पाय ; तुम मुझे रुलाकर अपना बनाकर रखो!"

जाड़े का दिन देखते-देखते म्लान हो आया। धूल, कुहासे और मशीनों के धुएँ से मिश्रित एक विवर्ण आवरण से संध्या की स्वच्छ, तिमिर-गंभीर महिमा ढक गई थी। आकाश जिस तरह एक व्यापक मलिनता का भार लिये मिट्टी की ओर झुका पड़ता था उसी तरह भैया की दुश्चिता के एक दुःसह भार ने कुमुदिनी के मन को नीचे की ओर उतारकर रख दिया।

इस तरह एक ओर अभिमान के बंधन से मुक्ति पाकर वह आनद का अनुभव कर रही थी और दूसरी ओर भैया के लिए चिंता के कारण उसका पीड़ित हृदय भार-ग्रस्त हो रहा था। इन दोनों को एक साथ लिये वह फिर अपनी कोठरी में जाकर बंद हो गई। उसकी बड़ी इच्छा हो रही थी कि उस निरुपाय चिंता के बोझ को भी एकांत विश्वास के साथ भगवान् के ऊपर छोड दे। पर अपने को बार-बार धिक्कारने पर भी वह किसी प्रकार इतना भरोसा अपने भीतर नही पा रही थी। 'तार तो किया जा चुका है, पर उसका उत्तर

क्यों नहीं मिलता,' यह प्रश्न निरंतर उसके मन को कचोटता रहा।

नारी-हृदय के आत्म-समर्पण की सूक्ष्म बाधा में मधुसूदन कहीं भी हस्तक्षेप नही कर पा रहा था। जिस विवाहिता स्त्री के शरीर और मन पर उसका सम्पूर्ण अधिकार था वह भी उसके लिए एकदम दुर्गम बन हुई थी। भाग्य के इस अमानवीय षड्यंत्र पर वह किस ओर से कैसे आक्रमण करे, यह समझ ही नहीं पा रहा था। उसने कभी किसी भी कारण से अपने व्यवसाय की अवज्ञा नहीं की थी, अब उसके भी दुर्लक्षण दिखाई देने लगे थे। सभी जानते थे कि मधुसूदन की माँ की बीमारी और मृत्यु से भी उसके काम-काज में कोई विघ्न नही उपस्थित हुआ। तब उसके चित्त की अविचल दृढता के कारण कई लोगों के मन में उसके लिए श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। पर आज सहसा अपना एक नया परिचय पाकर वह स्वयं स्तंभित रह गया था। बँधे हुए रास्ते के बाहर जो शक्ति उसे इस तरह खीच रही थी वह उसे किस ओर ले जायगी, यह वह सोच नही पा रहा था।

रात का भोजन समाप्त करके मधुसूदन अपने कमरे में सोने के लिए आया। यद्यपि उसे विश्वास नहीं था, तथापि मन में आशा थी कि सम्भवत: वह कुमुदिनी को सोने के कमरे में देख पायगा। इसीलिए वह नियमित समय का उल्लंघन करके कमरे में आया। शरीर स्वस्थ रहने पर सदा के अभ्यास के अनुसार वह घड़ी के समय के अनुसार सो जाया करता था। एक क्षण की भी देर उसे नही होने पाती थी। कहीं ठीक समय से नीद न आ जाय और कुमुदिनी कमरे में आकर चली न जाय, इस आशंका से वह पलंग पर नही लेटा। कुछ देर सोफे पर बैठा रहा और कुछ देर छत पर टहलता रहा। उसके सोने का समय था ठीक नौ बजे—आज एक बार सहसा उसने सुना कि ड्योढी के घंटे ने ग्यारह बजाए। उसे लज्जा का अनुभव हुआ फिर भी वह पलंग के पास दो-तीन बार आकर चुपचाप खड़ा रहा, लेटने की इच्छा ही नही होती थी। तभी उसने निश्चय किया कि बैठक के कमरे में जाकर उसी रात नवीन के साथ निबट लेगा।

बैठक के कमरे के सामने बरामदे में पहुँचकर उसने देखा कि कमरे में तब भी रोशनी जल रही थी। वह ज्यों ही कमरे में घुसने लगा त्यों ही उसने देखा नवीन लालटेन हाथ में लेकर कमरे से बाहर निकल रहा है। 'दिन का समय होता तो वह देखता कि नवीन का चेहरा एक क्षण में किस तरह फक रह गया।

मधुसूदन ने पूछा, "इतनी रात गए तुम यहाँ कैसे ?"

नवीन के दिमाग मे एक विचार आया। बोला, "सोने के पहले मै रोज घड़ी में चाबी दे दिया करता हूँ और तारीख का कार्ड भी ठीक करता हूँ।"

"अच्छा, तनिक भीतर आकर सुनो !"

नवीन घबरा गया और कठघरे के आसामी की तरह चुप खड़ा रहा।

मधुसूदन ने कहा, "बड़ी बहू के कान मे मंत्र फूँकने वाला कोई रहे, यह बात मुझे पसंद नही है। मेरे घर की बहू मेरी ही इच्छा के अनुसार चलेगी, किसी दूसरे की सलाह पर नही चलेगी—यही नियम मानकर चलना होगा।"

नवीन गभीर भाव से बोला, "यह तो ठीक ही है।"

"इसीलिए मैं कहता हूँ, मॅझली बहू को गॉव भेज देना होगा।"

नवीन ने ऐसा भाव दिखाया, जैसे यह सुनकर वह निश्चित हो गया। बोला, "यह तो बड़ी अच्छी बात हो गई। मैं तो यह सोच रहा था कि कही आप ही मना न करने लगे।"

विस्मित होकर मधुसूदन ने पूछा, "इसका मतलब ?"

नवीन बोला, "मँझली बहू कब से गॉव जाने के लिए अधीर हो रही है। सब सामान बँधा हुआ रखा है। कोई अच्छा दिन देखकर चल पड़ेगी।"

कहने की आवश्यकता नही, बात बिलकुल गढ़ी हुई थी। मधुसूदन अपने मन से जिसको चाहे विदा कर सकता है, पर कोई अपनी इच्छा से विदा होना चाहे, यह उसकी दृष्टि से एकदम बेकायदा बात थी। खीझ के स्वर मे उसने कहा, "क्यों, जाने के लिए उसे इतनी जल्दी क्यों पड़ी है ?"

नवीन बोला, "घर की गृहिणी अब इस घर में आ गई हैं, इसलिए अब इस घर का सारा भार तो उन्हींको सँभालना होगा। मँझली बहू कहती थी, मैं यदि बीच में पड़ूँगी तो न जाने कब क्या बात उठे।"

मधुसूदन बोला, "इन सब बातों के विचार का भार क्या उसीके ऊपर है ?"

नवीन भले आदमी की तरह बोला, "मै क्या कर सकता हूँ, बताओ ! यह तिरिया-हठ है। कौन जाने, शायद उसके मन में यह बात हो कि किसी बात को लेकर तुम सहसा एक दिन उसे यहाँ से हटा दो, यह अपमान वह सह न पायगी—इसीलिए वह प्रतिज्ञा किये बैठी है कि वह अवश्य जायगी। आगामी त्रयोदशी को दिन अच्छा है · इस बीच काम ठीक से सहेजकर, हिसाब-किताब समझाकर वह चली जाना चाहती है।"

मधुसूदन बोला, "देखो नवीन, मँझली बहू को तुम्हींने बहुत दुलार देकर बिगाड़ दिया है। उससे तनिक सख्ती के साथ कह देना कि वह किसी भी हालत

में नहीं जाने पायगी। तुम पुरुष हो, घर मे तुम्हारा शासन नहीं चलेगा, यह मै नही देख सकता।"

नवीन सिर खुजलाता हुआ बोला, "मै प्रयत्न करके देखूँगा भैया, पर—"

"अच्छा, मेरी तरफ़ से उससे कहना कि अभी वह नही जाने पायगी। जब समय आयगा तब मै स्वयं ही जाने की व्यवस्था ठीक कर दूंगा।"

नवीन बोला, "अभी तुम कह रहे थे न कि मँझली बहू को गाँव भेजना होगा, इसीलिए सोच रहा हूँ।"

उत्तेजित होकर मधुसूदन बोला, "मैंने क्या यह कहा था कि अभी भेज देना होगा?"

नवीन धीरे-धीरे चला गया। मधुसूदन गैस का दीपक जलाकर एक लम्बी आराम-कुर्सी पर हाथ-पाॅव फैलाकर बैठ गया। घर का चौकीदार रात में बीच-बीच मे घर के कमरों के सामने से होकर टहलता हुआ चला जाता था। मधुसूदन की आँखे कुछ झपने लगी थीं, इतने में सहसा चौककर उसने देखा चौकीदार कमरे मे घुसकर लालटेन हाथ में लिये उसके मुख की ओर आँखें गडाए हुए है। शायद वह सोच रहा था कि राजा साहब या तो बेहोश हो गए है या खत्म ही हो गए है। मधुसूदन लज्जित होकर हडबड़ाता हुआ उठ बैठा।

बाहर आफ़िस के कमरे में बैठे हुए नव-विवाहित राजा बहादुर के रात्रि-यापन का शोकजनक दृश्य चौकीदार के आगे प्रकट हो जाना अपमानकर है। यह बात उसे उसी क्षरण कचोटने लगी। उठते ही क्रुद्ध स्वर में बोला, "कमरा बन्द करो!" जैसे कमरे बन्द न रखना उसीका अपराध था। ड्योढी के घंटे में दो बज गए।

कमरे से बाहर निकलने के पहले मधुसूदन ने दराज खोलकर देखा। क्षरिणक असमंजस के बाद कुमुदिनी के नाम का तार उसने अपनी जेब में डाल लिया और फिर अंतःपुर की ओर चला गया। तिमंजिले को जाने वाली सीढी के पास कुछ देर खडा रहा।

गहन रात्रि मे पहली नींद से जगने पर मनुष्य अपनी संपूर्ण शक्ति का अनुभव नही कर पाता। इसलिए उसके दिन के चरित्र और रात के चरित्र में बड़ा अंतर पाया जाता है। दो बजे रात के समय, जब चारों ओर लोक-दृष्टि का निपट अभाव रहता है, जब वह समस्त संसार मे केवल अपने को छोड़कर और किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं रहता, तब कुमुदिनी के निकट अपनी हार स्वीकार करना उसके लिए असम्भव नहीं था।

३२

सीढी के पास से जब मधुसूदन अपने कमरे में वापस आया तब उसके हृदय के रक्त की गति तीव्र हो उठी। किसी एक बंद कमरे के सामने लालटेन जल रही थी। उसे उठाकर वह चुपचाप तेल-बत्ती वाली कोठरी के बाहर आकर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे किवाड़ को धक्का देकर उसने देखा कि वह यों ही फेर दिया गया है। दरवाजा आसानी से खुल गया। एक चटाई के ऊपर एक चादर लपेटे कुमुदिनी गहरी नीद में मग्न थी। उसका बायाँ हाथ ऊपर रखा हुआ था। दीवार के एक कोने में लालटेन रखकर मधुसूदन कुमुदिनी की ओर अपना मुँह करके बाईं ओर आकर बैठ गया। कुमुदिनी का मुख उसे जो इतनी प्रबल शक्ति से अपनी ओर खींच रहा था उसका कारण था उस मुख की एक परिपूर्णता। कुमुदिनी के अपने भीतर कभी कोई विरोध या द्वन्द्व नहीं घटा। भैया के साथ परिवार के बीच में अभाव के दुःख ने उसे अवश्य पीड़ा पहुँचाई थी, पर उस पीड़ा का कारण बाहरी परिस्थितियाँ थी, उससे उसकी मूल प्रकृति पर आँच नही आई थी। जिस परिवार के बीच में वह थी वह परिवार उसके स्वभाव के हर तरह अनुकूल था। यही कारण था कि उसके मुख के भाव में एक सहज सरलता, और उसके व्यवहार में एक अटूट मर्यादा पाई जाती थी। जिस मधुसूदन को जीवन की साधना के दौरान केवल संघर्ष करना पड़ा है, जिसे प्रतिदिन, प्रति पल संशय के कारण सतर्क रहना पड़ता है, उसके लिए कुमुदिनी का यह स्निग्ध शान्त गाम्भीर्य परम विस्मय की चीज थी। वह जानता था कि स्वयं अपने व्यवहार मे तनिक भी सहज नही है, और कुमुदिनी जैसे देवता की तरह सहज है। उसके साथ इतना बड़ा वैपरीत्य ही उसे उसकी ओर ऐसी प्रबलता से खीच रहा था। विवाह के बाद बहू के पहली बार ससुराल आने पर जो काण्ड हो गया उस पर जब वह विचार करता था तब उसे दिखाई देती थी अपने व्यर्थ प्रभुत्व की क्रुद्ध अक्षमता, और इसके विपरीत जब वह बहू की ओर देखता था तब पाता था उसके भीतर एक दैवी आत्म-मर्यादा का सहज प्रकाश। उसके व्यवहार में साधारण लड़कियों की-सी अशोभन धृष्टता तनिक भी नहीं दिखाई देती थी। यदि ऐसा न होता तो उसे अपमानित करने का जो प्रभुत्व उसके पास था, उसे काम में लाने से वह तनिक भी न हिचकता। पर यह सब क्या हुआ और कैसे हुआ यह वह कुछ भी नहीं समझ

पा रहा था। किसा एक निराले ही कारण से उसने कुमुदिनी को अपनी पकड़ के बाहर पाया।

मधुसूदन ने निश्चय किया, 'कुमुदिनी को न जगाकर सारी रात वह उसकी बगल में इसी तरह बैठा रहेगा।' पर कुछ देर तक बैठे रहने के बाद वह रह न सका—धीरे-धीरे उसने कुमुदिनी का हाथ ऊपर उठाकर अपने हाथ में ले लिया। कुमुदिनी ने नींद में ही अपना हाथ खींच लिया और मधुसूदन की ओर से करवट बदलकर दूसरी ओर मुँह करके लेट गई।

मधुसूदन ने उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "बड़ी बहू, तुम्हारे भैया का तार आया है।"

कुमुदिनी की नींद उसी क्षण उचट गई और वह चट से उठ बैठी। विस्मय-भरी आँखों से मधुसूदन की ओर अवाक् देखती रह गई। तार सामने रखते हुए मधुसूदन बोला, "तुम्हारे भैया ने भेजा है।" और वह कमरे के कोने मे रखी हुई लालटेन ले आया।

कुमुदिनी ने तार पढा। उसमें लिखा था, "मेरे लिए चिंतित मत होना! धीरे-धीरे मैं स्वस्थ होता जा रहा हूँ। मेरा आशीर्वाद।" घोर मानसिक पीड़ा और उद्वेग के बीच में इस प्रकार की सांत्वना की बात पढ़कर एक क्षण मे कुमु-दिनी की आँखें छलछला आईं। आँखे पोंछकर उसने तार को बड़े जतन से अपने आँचल के सिरे में बाँध लिया। इस बात से मधुसूदन के हृदय में बड़ी खरौंच लगी। उसकी समझ में नही आ रहा था कि क्या बोले। कुमुदिनी स्वयं ही बोली, "क्या भैया की चिट्ठी नहीं आई?"

इस पर मधुसूदन किसी तरह भी यह नहीं बोल पाया कि चिट्ठी आई है। वह तुरंत बोल बैठा, "नही, चिट्ठी तो नही आई।"

उस कमरे मे रात के समय दोनों के इस तरह बैठे रहने से कुमुदिनी को संकोच का अनुभव होने लगा। वह जब वहाँ से उठने ही जा रही थी तब मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू, मुझसे नाराज मत होओ!"

यह प्रभु का आदेश नहीं था, यह प्रणयी का अनुरोध था। और साथ ही उसमें छिपी हुई थी अपराधी की आत्मग्लानि। कुमुदिनी को विस्मय हुआ। उसे लगा, जैसे वह दैव की ही कोई लीला है। वह दिन-भर अपने-आपसे कहती आई थी, 'तू किसी से नाराज़ मत हो!' उसके मन की वही बात जैसे किसी ने आधी रात के समय मधुसूदन के मुँह से कहला दी।

मधुसूदन फिर बोला, "तुम क्या अब भी मुझसे नाराज़ हो?"

कुमुदिनी बोली, "नहीं, मैं नाराज नहीं हूँ, तनिक भी नहीं।"

मधुसूदन उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगा। उसे लगा, जैसे कुमुदिनी अपने मन-ही-मन अपने-आपसे वह बात कर रही है।

वह बोला, "तब इस कमरे से उठकर चलो मेरे साथ अपने निज के कमरे मे।"

आज रात कुमुदिनी इस बात के लिए तैयार नही थी। नीद से जगते ही सहसा मन को बाँधना कठिन होता है। उसने मन-ही-मन यह संकल्प किया था कि कल सुबह स्नान करके अपने देवता के निकट नियमित रूप से प्रार्थना-मंत्र पढने के बाद उस परिवार के बीच मे वह अपनी साधना आरंभ करेगी। पर, वह सोचने लगी, 'जब देवता ने मुझे समय दिये विना ही आज इस गहन रात मे मुझे पुकारा है तब मैं इन्कार कैसे कर सकती हूँ!' उसके मन के भीतर के भी भीतर जो एक प्रचंड अनिच्छा हो रही थी उसे अपराध जानकर वह डरी। उस अनिच्छा की बाधा उसे अपनी ओर खीच रही थी, इसलिए वह पूरी शक्ति से उसका प्रतिरोध करती हुई उठ खड़ी हुई और बोली, "चलो!"

अपने सोने के कमरे के निकट पहुँचने पर वह सहसा ठिठककर खड़ी हो गई। बोली, "मै अभी आती हूँ, देर नही करूँगी।"

यह कहकर वह छत के एक कोने में जा बैठी। कृष्णपक्ष का खंड चंद्रमा उस समय मध्य-आकाश में था।

मन-ही-मन वह बार-बार कहने लगी, 'प्रभु, तुमने मुझे पुकारा है—हाँ, तुम्हीने पुकारा है। तुम मुझे भूले नही हो, इसीलिए तुमने पुकारा है। मुझे तुम काँटे बिछे हुए रास्ते से होकर ले चलोगे—हाँ तुम्ही, केवल तुम्ही।'

और सब-कुछ वह लुप्त कर देना चाहती थी। वह सोच रही थी कि और सब-कुछ माया है। यदि सर्वत्र काँटा-ही-काँटा हो तो भी वह रास्ते का ही काँटा है—और वह प्रभु के ही पथ का काँटा है। उस काँटेदार पथ के लिए उसके पास एक ही पाथेय था—और वह था उसके भैया का आशीर्वाद। उस आशीर्वाद को इसीलिए उसने अपने आँचल मे बाँध लिया था। उस आशीर्वाद को उसने बार-बार अपने सिर से लगाया। उसके बाद फ़र्श पर माथा टेककर बहुत देर तक वह प्रणाम करती रही। सहसा चौंककर उसने सुना, मधुसूदन पीछे से कह रहा था, "बड़ी बहू, ठंड लग जायगी, कमरे में चली जाओ!" कुमुदिनी अपने अतर में जो वाणी सुनना चाहती थी उसके साथ उस ठण्ड का सुर नही मिलता था। पर यही तो उसकी परीक्षा है। आज देवता उसे बाँसुरी की प्यारी धुन से नही बुलाना चाहते। वह आज छद्मवेश मे रहना चाहते है।

३३

जहाँ कुमुदिनी एक व्यक्ति-मात्र है वहाँ जितना ही उसका मन धिक्कार, घृणा और अरुचि से भर उठता था, जितना ही संसार अपने रूढ़ अधिकार से उसे अपमानित करता जाता था उतने ही जोर से वह अपने चारों ओर एक आवरण तैयार करती जा रही थी। एक ऐसा आवरण, जो उसके व्यक्तिगत रूप से अच्छा लगने या बुरा लगने की भावना को लुप्त कर सके, अर्थात् अपने संबंध की चेतना को क्षीण कर सके। यह जैसे क्लोरोफार्म द्वारा उपचार था। पर यह तो दो-तीन घंटे की व्यवस्था नहीं है—उसे तो दिन-रात अपने मन की वेदना और अरुचि के बोध को दबाए रखना होगा! ऐसी स्थिति में स्त्रियाँ यदि किसी एक गुरु को पा जायँ तभी आत्म-विस्मृति की चिकित्सा सहज हो सकती है। पर ऐसा तो संभव नहीं हो पाया। इसलिए वह मन-ही-मन पूजा के मंत्र को प्रतिपल जगाए रखने की चेष्टा करने लगी। उसका वह मंत्र था—

'तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वां अहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥'

हे मेरे पूजनीय, तुम्हारे निकट अपना समस्त शरीर नत करके मैं यह प्रसाद चाहती हूँ कि जिस प्रकार पिता पुत्र को, सखा सखा को और प्रिय प्रिया को सह्य कर पाता है, तुम भी मुझे उसी प्रकार सहन करना। तुम मुझे अपने प्रेम मे सहन करते हो इसका प्रमाण इससे बड़ा और कुछ नहीं है कि तुम्हारे प्रेम के कारण मै भी सब-कुछ क्षमा कर सकती हूँ। कुमुदिनी आँखें बन्द करके मन-ही-मन उन्हे पुकारकर कहने लगी, 'तुम्हीं ने तो कहा है कि जो मनुष्य मुझे सर्वत्र देखता और मेरे भीतर सबको देखता है, वह मेरा त्याग नहीं करता और मै भी उसे नहीं तजता। इस साधना की उपलब्धि में मेरे भीतर तनिक भी शिथिलता न आने पाये।'

सुबह स्नान करके उसने चंदन-धुले जल से बहुत देर तक अपने शरीर का अभिषेक किया। अपने शरीर को निर्मल और सुगंधित करके उसने अपने को उनके प्रति अर्पित कर दिया। वह मन-ही-मन एकांत मन से यह ध्यान करने लगी कि उनके हाथ में उसका हाथ है, उसकें समस्त शरीर में उनका सर्वव्यापी

स्पर्श निरन्तर विराजमान है। इस देह को यथार्थ रूप में, सम्पूर्णता से उन्हीने पाया है। उनके पाने के बाहर जो शरीर है वह मिथ्या है। वही तो माया है। वह मिट्टी है, जो देखते-देखते मिट्टी में मिल जायगा। वह सोचने लगी कि जब तक वह उनके स्पर्श का अनुभव करती रहेगी तब तक यह शरीर किसी प्रकार भी अपवित्र नहीं हो सकता। यह बात सोचते-सोचते आनंद के अतिरेक से उसकी पलकें भीग उठी। उसका शरीर मानो मांस के स्थूल बंधन से मुक्ति पा गया। शरीर को पुण्य मिलन के नित्य आधार-क्षेत्र के रूप में जानने पर अपने उस शरीर के ऊपर उसके मन मे भक्ति जगने लगी। यदि वह कही से कुन्द-फूल की माला पा जाती तो वह उसी क्षण उसे गले मे डाल लेती या उसे जूड़े से बाँध लेती। स्नान करके उसने एक धुली हुई सफेद साडी पहनी; जिसकी चौड़ी किनारी लाल रंग की थी। जब वह छत पर बैठी तब उसे लगा, जैसे सूरज के प्रकाश के रूप में एक आकाश-व्यापी परम स्पर्श उसके शरीर को अभिनंदित कर रहा है।

मोती की माँ के निकट आकर कुमुदिनी ने कहा, "मुझे भी अपने काम में हाथ बटाने दो!"

मोती की माँ हँसती हुई बोली, "तब आओ, तरकारी काटो!"

सामने बड़े-बड़े थाल और परात, टोकरियों में भरी सब्जियाँ और दस-पन्द्रह दरॉतियाँ रखी थीं। सगी-संबंधी या आश्रित स्त्रियाँ गप-शप करती हुई तेज़ हाथ चलाती हुई सब्जियाँ काटती चली आ रही थी। तरकारियों के कटे हुए टुकड़ों के ढेर इकट्ठे होते चले जा रहे थे। उन्हींके बीच कुमुदिनी आकर बैठ गई। सामने खिड़की में लगी लोहे की छड़ों के बीच से एक पुराना इमली का पेड़ दिखाई दे रहा था, जिसकी सब समय डोलती रहने वाली पत्तियों से छनकर सूरज का प्रकाश चूर्ण-चूर्ण होकर बिखर रहा था।

मोती की माँ बीच-बीच में कुमुदिनी के मुँह की ओर देखती थी और सोचती थी कि वह काम कर रही है, या अपनी उँगलियों की गति का सहारा पाकर उसका मन किसी तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से निकल पड़ा है? उसे देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वह पाल वाली नाव हो। पाल में हवा लग रही है और नाव जैसे उसी स्पर्श से विभोर हो उठी है—उसके दोनों ओर पानी कटता चला जा रहा है, इसका ध्यान ही उसे नहीं है। जो दूसरी स्त्रियाँ काम कर रही थीं वे कुमुदिनी के साथ बातचीत करने का कोई रास्ता ही नहीं खोज पा रही थी। एक बार श्यामासुन्दरी बोलीं, "यदि सवेरे ही नहाना तुम्हे पसंद है तो गरम पानी के लिए क्यों नहीं कह देती हो? ठंड लग जायगी।"

कुमुदिनी बोली, "मुझे आदत है।"

बस इसके बाद फिर बातचीत आगे नहीं बढ़ पाई। उस समय कुमुदिनी के भीतर एक मौन जप की अटूट धारा प्रवाहित हो रही थी—

'पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।'

तरकारी काटने और भंडार से रसद निकालने का काम समाप्त होने पर सभी स्त्रियाँ स्नान के लिए भीतर के आँगन मे नल के पास जाकर कोलाहल करने लगीं।

मोती की माँ को अकेले मे पाकर कुमुदिनी ने कहा, "भैया से तार का जवाब मिल गया है।"

मोती की माँ ने तनिक आश्चर्य के साथ पूछा।

"कब मिला ?"

"कल रात।"

"रात !"

"हाँ, काफ़ी रात बीतने पर मिला। उन्होंने स्वय आकर मुझे दिया।"

"तब तो तुम्हें चिट्ठी भी अवश्य मिल गई होगी।"

"कौन चिट्ठी ?"

"तुम्हारे भैया की चिट्ठी।"

कुमुदिनी हड़बड़ाती हुई बोली, "नहीं तो ! मुझे कोई चिट्ठी नहीं मिली ! भैया की चिट्ठी आई है क्या ?"

मोती की माँ चुप्पी साध गई।

कुमुदिनी उसका हाथ पकड़कर उत्कठित होकर बोली, "कहाँ है भैया की चिट्ठी, मुझे लाकर दे दो न !"

मोती की माँ धीरे से बोली, "वह चिट्ठी मैं स्वयं नहीं ला पाऊँगी। वह जेठ जी के बाहर के कमरे के दराज में है।"

"मेरी चिट्ठी तुम क्यों नही दे पाओगी ?"

"यदि वह जान जायँ कि मैने उनका दराज खोला है तो प्रलय-काण्ड मच जायगा।"

कुमुदिनी अधीर हो उठी। बोली, "तो क्या मुझे भैया की चिट्ठी पढ़ने को मिलेगी ही नहीं ?"

"जेठ जी जब आफिस जायँगे तब उस चिट्ठी को पढकर फिर दराज में रख देना !"

ऐसे मे क्रोध को सँभालना कठिन था। उसका मन गरम हो उठा। बोली, "क्या अपनी चिट्ठी को भी चुराकर पढ़ना होगा ?"

"कौन चीज अपनी है, और कौन नहीं है; इसका विचार इस घर के मालिक स्वयं ही कर लेते है।"

कुमुदिनी अपनी प्रतिज्ञा भूलने जा रही थी, इतने मे सहसा मन के भीतर से किसी ने तर्जनी उठाते हुए कहा, 'क्रोध मत करो।' क्षण-भर के लिए कुमुदिनी आँखे बंद किये रही। मूक वाणी से दोनों ओठ फड़क उठे—

'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।'

कुमुदिनी बोली, "मेरी चिट्ठी यदि कोई चुराना चाहे तो चुराए, पर मैं चोरी करके चोरी का बदला नही चुकाऊँगी।"

कहते ही उसे लगा कि वह कुछ कड़ी बात कह गई है। वह समझ गई कि जो क्रोध उसके भीतर दबा पड़ा है वह अज्ञात मे अवसर पाकर अपने को व्यक्त कर बैठता है। उसे जड़ से उखाडना होगा। उससे लड़ाई करने पर सब समय वह पकड़ मे नही आता। वह भीतर की गहन गुहा में अपना गढ़ बनाये रहता है। बाहर से वहाँ प्रवेश करने का पथ नहीं है। इसलिए प्रेम की एक ऐसी बाढ़ बहानी चाहिए जिससे रुद्ध को मुक्त करके बद्ध को बहाया जा सके। मन को भुलावा देने का एक उपाय उसके हाथ में था—संगीत। पर इस घर मे इसराज बजाने में उसे लाज आती थी। साथ में वह इसराज लाई भी नहीं थी। वह गाना गा सकती थी। पर उसके गले में जोर नही था। उसके मन में यह इच्छा जग रही थी कि गीत की धारा से सारे आकाश को बहा डाले। वह मान का गीत गाना चाहती थी। जिस गीत मे वह यह कह सके कि 'मै तो तुम्हारी ही पुकार सुनकर आई थी। तब तुम क्यों छिप गए ? मै तो एक पल के लिए भी असमंजस में नहीं पड़ी। तब आज क्यो तुमने मुझे इतने बडे संशय में डाल दिया ?' इसी तरह की बाते वह गीत के रूप में गला खोलकर बोलना चाहती थी। उसे लग रहा था कि तभी वह सुर में इस बात का उत्तर पा सकेगी।

३४

कुमुदिनी के पलायन की एक-मात्र जगह थी इस घर की छत। वह वहीं चली गई। दिन काफ़ी चढ़ आया था, तेज धूप से सारी छत भर गई थी।

केवल दीवार के एक किनारे एक स्थान पर तनिक-सी छाया थी। वह वहीं जाकर बैठ गई। उसे एक गीत याद आया, जो आसावरी राग में था। गीत के प्रारंभिक शब्द थे : 'बाँसुरी हमारी रे !' पर शेष उस्ताद के मुख से निकले हुए अस्पष्ट और रूप बिगड़े हुए शब्द थे, जिनका कोई अर्थ समझ में नहीं आ सकता था। कुमुदिनी उस अपूर्ण अंश को अपनी इच्छा से नई-नई तानों द्वारा भरकर पलट-पलटकर गाने लगी। गीत के वे प्रारंभिक विच्छिन्न शब्द उस तान के सहारे अर्थ से भरपूर हो उठे। उसे गीत का भावार्थ इस प्रकार लगा, "हे मेरी बाँसुरी, तुम में सुर क्यों नही भर पा रहा है ? अंधकार पार करके वह वहाँ तक क्यों नही पहुँच पाती जहाँ दरवाज़े बन्द है, जहाँ नींद अभी तक नही टूटी ? बाँसुरी हमारी रे ! बाँसुरी हमारी रे !"

मोती की माँ ने आकर जब कहा, "चलो भाई, खाने चलो !" तब उस छत की तनिक-सी छाया लुप्त हो चुकी थी, पर जब उसका मन सुर से भरपूर था तब उसके लिए इस तरह की चिंता अत्यन्त तुच्छ हो गई थी कि संसार में कौन उसके ऊपर क्या अन्याय कर रहा है। उसकी चिट्ठी के संबंध में मधुसूदन ने जिस क्षुद्रता का परिचय दिया था—जिस क्षुद्रता से उसके मन में तीव्र अवज्ञा का भाव जाग उठा था, वह जैसे उस धूप-भरे आकाश में एक पतंग की तरह न जाने कहाँ विलीन हो गया। उसका क्रुद्ध गुंजन असीम अन्तरिक्ष मे न जाने कहाँ लुप्त हो गया। पर वह सब होने पर भी उसके मन का यह असीम आग्रह तनिक भी कम नही हुआ कि चिट्ठी मे भैया ने जो स्नेह-वाक्य लिखा है उसे कैसे प्राप्त किया जाय।

इस बात की व्यग्र उत्सुकता उसके मन में बनी ही रही। भोजन के बाद वह रह न सकी। मोती की माँ से बोली, "मै बाहर के कमरे में जाकर चिट्ठी पढ़ आती हूँ।"

मोती की माँ बोली, "और तनिक देर होने दो। जब सभी नौकर छुट्टी लेकर खाना खाने जायँगे तब जाना !"

कुमुदिनी ने कहा, "नही, यह तो ऐसा हो जायगा जैसे मै कोई बड़ी भारी चोरी कर रही हूँ। मैं सबके सामने जाना चाहती हूँ, फिर कोई कुछ भी सोचे।"

"तब चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

कुमुदिनी बोली, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम मुझे केवल इतना बता दो कि किस तरफ से जाना होगा।"

मोती की माँ ने अंतःपुर के झरोखेदार बरामदे से वह कमरा दिखा दिया। कुमुदिनी बाहर चली गई। नौकरों ने चकित होकर उसे प्रणाम किया। कमरे

में घुसकर डैस्क का दराज खोलकर अपनी चिट्ठी देख ली। उसे उठाकर देखा, लिफ़ाफा खुला हुआ था। उसका हृदय भीतर-ही-भीतर हिल उठा। यह बात उसके लिए एकदम असहनीय हो उठी। जिस घर में वह पलकर बडी हुई थी वहाँ इस प्रकार की अवमानना की कल्पना भी नही की जा सकती थी। उसके अपने ही आवेग के धक्के ने उसे जैसे सचेत कर दिया। वह रटने लगी, 'प्रिय: प्रियायार्हसि देव सोढुम्"—पर तब भी मन का तूफान शांत नही हो पाता था। इसलिए वह बार-बार उसे रटती रही, बाहर जो अर्दली खड़ा था वह बहूरानी के मुँह से इस प्रकार मंत्र-आवृत्ति सुनकर अवाक् हो गया। देर तक रटते रहने से अत में उसका मन शांत हो गया। उसके बाद चिट्ठी सामने रखकर चौकी पर बैठकर हाथ जोड़ती हुई वह स्थिर हो गई। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि वह चोरी से चिट्ठी नही पढेगी।

"तभी सहसा मधुसूदन कमरे के भीतर आ धमका और देखकर चकित रह गया। कुमुदिनी ने उसकी ओर देखा तक नही। निकट आकर मधुसूदन ने देखा, डैस्क के ऊपर वही पत्र पड़ा था। बोला, "तुम यहाँ कैसे ?"

कुमुदिनी ने नीरव और शात दृष्टि से मधुसूदन की ओर देखा। उस दृष्टि मे किसी प्रकार की शिकायत नही थी। मधुसूदन ने फिर पूछा, "इस कमरे में तुम कैसे आई हो ?"

इस प्रश्न से अधीर होकर वह बोली, "मेरे नाम भैया की कोई चिट्ठी आई या नहीं, यही देखने आई थी।"

'यह बात तुमने मुझसे क्यों नहीं पूछी ?' इस तरह का प्रश्न मधुसूदन कर सकता था, पर इस प्रकार के प्रश्न का रास्ता वह स्वयं पिछली रात बंद कर चुका था। इसलिए बोला, "यह चिट्ठी मैं स्वयं ही तुम्हारे पास पहुँचाने जा रहा था ; उसके लिए तुम्हे यहाँ आने की तो कोई आवश्यकता नहीं थी।"

कुमुदिनी कुछ देर चुप रही। अपने मन को तनिक शांत करके बोली, "तुम नही चाहते थे कि मुझे यह चिट्ठी पढ़ने को दी जाय, इसलिए इसे मै पढ़ूँगी ही नहीं। यह लो, इसे मै फाड़े डालती हूँ। पर इस प्रकार का कष्ट आगे मुझे कभी मत देना ! इससे अधिक कष्ट मुझे और किसी बात से नहीं हो सकता।"

यह कहकर वह मुँह में कपड़ा ठूँसकर दौड़ती हुई-सी बाहर निकल गई।

इसके पहले दोपहर के भोजन के बाद मधुसूदन का मन विचलित हो उठा था। उसके मन की वह चंचलता किसी तरह भी थम नही पाती थी। उसने तय किया था कि कुमुदिनी जब खाना खा चुकेगी तब उसे बुलायगा। आज

उसने विशेष जतन से अपने बाल सँवारे थे। आज सवेरे ही वह एक अंग्रेज़ी नाई की दुकान से स्पिरिट मिला हुआ सुगंधित तेल और कीमती विलायती इत्र खरीद लाया था। जीवन में पहली बार उसने इन चीज़ों का इस्तेमाल किया था। वह सुगंधित और सुसज्जित होकर तैयार बैठा था। आफ़िस जाने के समय से कम-से-कम पैंतालीस मिनट अधिक बीत चुके थे।

सीढ़ियों में किसी के पाँवों की आहट सुनते ही मधुसूदन चौंकता हुआ-सा उठ बैठा। हाथ के निकट और कुछ न पाकर एक पुराने संवाद-पत्र के विज्ञापन के पन्नों को इस तरह देखने लगा जैसे वह उसके आफ़िस के ही काम का एक अंग हो। यहाँ तक कि जेब से एक मोटी नीली पेंसिल निकालकर दो-एक स्थानों पर उसने निशान भी लगा दिए।

तभी श्यामासुन्दरी कमरे में आ पहुँची। भौंहें टेढ़ी करके मधुसूदन ने उसकी ओर देखा। श्यामासुन्दरी बोली, "तुम यहाँ आकर बैठे हो, उधर बहू तुम्हें खोजती फिर रही है।"

"खोजती फिर रही है ? कहाँ ?"

"अभी-अभी मैंने देखा कि वह बाहर तुम्हारे आफिस के कमरे में घुसी हुई थी। पर इसमें आश्चर्य की क्या बात है लाला ? उसने सोचा होगा कि तुम शायद…"

मधुसूदन हड़बड़ाता हुआ बाहर चला गया। और उसके बाद वह चिट्ठी वाला कांड घटित हुआ था।

पाल वाली नाव का पाल फट जाने से जो दशा होती है, मधुसूदन की भी वही दशा हुई। तब देर करने का तनिक भी अवकाश नहीं रह गया था। वह सीधा आफ़िस चला गया, पर सब कामों के भीतर-ही-भीतर उसकी अपूर्ण और टूटी-फूटी चिंताओं की तीखी धार बार-बार उसके हृदय में गड़ रही थी। इस मानसिक भूकंप के बीच में काम करना उस दिन उसके लिए असंभव हो उठा। आफिस में यह बताकर कि उसके सिर में बेहद दर्द है, काम समाप्त होने के बहुत पहले ही वह घर लौट गया।

३५

इधर नवीन और मोती की माँ को यह समझने में देर न लगी कि भीत टूट चुकी है। भागकर कहीं प्राण बचाने का आश्रय उनके लिए नहीं रह गया।

मोती की माँ बोली, "यहाँ जिस तरह खटकर जी रही हूँ उस तरह खटने की जगह संसार मे कही-न-कही मुझे मिलेगी ही। मुझे तो दुःख केवल इस बात का है कि मेरे चले जाने पर इस घर में दीदी को देखने वाला फिर कोई न रहेगा।"

नवीन बोला, "देखो मँझली बहू, इस परिवार मे मैने बड़ी लांछना पाई है। इस घर के अन्न-जल से कई बार मेरे में अरुचि जगी है। पर इस बार यह बात असहनीय लग रही है कि ऐसी बहू पाकर भी भैया यह न समझ पाये कि उसे किस प्रकार रखा जा सकता है। उन्होंने सब-कुछ चौपट कर दिया। अच्छी चीजों के टूटे टुकडों से ही अलक्ष्मी अपना डेरा बनाती है।"

मोती की माँ बोली, "यह बात समझने मे तुम्हारे भैया को देर लगेगी। पर तब टूटा हुआ फिर जुडेगा नही।"

नवीन बोला, "लक्ष्मण के समान देवर बनना मेरे भाग्य मे नहीं लिखा, यही बात मेरे मन को साल रही है। जो भी हो, तुम अभी सामान बाँध डालो। इस घर में जब समय आ पहुँचता है, तब फिर देरी सह्य नही होती।"

मोती की माँ चली गई। नवीन रह न सका। धीरे-धीरे अपनी भाभी के कमरे की ओर जाते हुए जब कमरे के बाहर पहुँचा तब उसने देखा, कुमुदिनी अपने सोने के कमरे के बिछे हुए फर्श पर लेटी पड़ी है। जो चिट्ठी उसने फाड़ डाली थी उसकी पीड़ा उसके मन से किसी तरह भी नहीं जा पाती थी।

नवीन को देखकर वह हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। नवीन बोला, 'भाभी प्रणाम करने आया हूँ, तनिक अपने पैरों की धूल दो !"

भाभी से नवीन पहली बार बोल रहा था।

कुमुदिनी बोली, "आओ, बैठो !"

फ़र्श पर बैठकर नवीन ने कहा, "तुम्हारी सेवा कर सकूँगा, इस प्रसन्नता से छाती भर उठी थी। पर नवीन का इतना बड़ा सौभाग्य कहाँ? तुम्हारे निकट कुछ ही दिन बिता पाया हूँ और इस बीच मैं तुम्हारी कुछ भी सेवा न कर पाया इस बात का दुःख मन मे रह ही गया।"

कुमुदिनी ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो तुम लोग ?"

नवीन बोला, "भैया अब हमें गाँव ही भेजेंगे। इसके बाद अब शायद तुमसे भेंट हो सकने की सुविधा नही मिल पायगी। इसीलिए प्रणाम करके विदा होने आया हूँ।" यह कहकर ज्यों ही उसने प्रणाम किया त्यों ही मोती की माँ दौड़ी आई और बोली, "जल्दी चलो, 'कर्ता' तुम्हें खोज रहे हैं।"

नवीन तुरन्त उठकर चला गया। मोती की माँ भी उसीके साथ चली गई।

नवीन ने आकर देखा, उस बाहर वाले कमरे में भैया डैस्क के निकट बैठे है। और दिनों ऐसी स्थिति में उसके मुख पर आशंका का जो भाव रहता था, आज वह सब-कुछ नहीं था।

मधुसूदन ने पूछा, "डैस्क के भीतर वाली चिट्ठी की बात बडी बहू को किसने बताई ?"

नवीन बोला, "मैने ही बताई।"

"अचानक तुम्हारा साहस इस हद तक कैसे बढ़ गया ?"

"बड़ी बहूरानी ने मुझसे पूछा कि उनके भैया का पत्र आया है या नहीं। इस घर की चिट्ठियाँ पहले तुम्हारे पास आकर उसी डैस्क में जमा की जाती है, इसीलिए मै देखने गया था।"

"मुझसे पूछने का धैर्य तुममें नही रहा ?"

"वह बहुत चिंतित हो उठी थीं, इसीलिए—"

"इस कारण क्या मेरे आदेश की अवज्ञा करनी होगी ?"

"वह तो इस घर की मालकिन है, यह मै कैसे जानूँ कि उनका आदेश यहाँ नहीं चलेगा ? वह जो कुछ कहेंगी उसकी परवाह मैं नहीं करूँगा इतना बड़ा दुस्साहस मै नही कर सकता। मैं यह बात तुम्हें बता रहा हूँ कि वह केवल मेरी मालकिन ही नहीं है, वह मेरे लिए गुरुजन भी है। उनका आदेश मै उनका नमक खाने के कारण नही, अपनी भक्ति से मानूँगा।"

"नवीन, तुम्हें तो मै छुटपन से जानता हूँ, यह सब बुद्धि तुम्हारी नहीं है। मैं जानता हूँ कि इन सब बातों के लिए तुम्हे कौन बुद्धि देता है। जो भी हो, आज तो अब समय नही है, कल सुबह की गाड़ी से तुम लोगों को गाँव में जाना होगा।"

"जो आज्ञा," कहकर नवीन बिना अधिक बहस के तेज़ कदम रखता हुआ बाहर चला गया।

इतने संक्षेप में "जो आज्ञा" मधुसूदन को तनिक भी अच्छा नही लगा। रोआपीटी नवीन के लिए उचित नहीं थी, यद्यपि उससे भी मधुसूदन के निश्चय में कोई कमी न आती। नवीन को दुबारा बुलाकर मधुसूदन बोला, "अपने मासिक वेतन का हिसाब लेते जाओ, पर अब से तुम लोगों के खर्च का रुपया मैं नहीं जुटा पाऊँगा।"

नवीन बोला, "यह मैं जानता हूँ। गाँव में मेरे हिस्से की जो जमीन है

उसीको जोतकर निर्वाह करूँगा।"

कहकर किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह चला गया।

मनुष्य की प्रकृति अनेक परस्पर-विरुद्ध धातुओं के मिश्रण से बनी है। इसका एक प्रमाण यह है मधुसूदन नवीन से बहुत स्नेह करता है। उसके दो और भाई जमीन-जायदाद का काम देखने के सिलसिले में रजबपुर मे पडे थे। मधुसूदन उनकी विशेष खबर नही रखता था। पिता की मृत्यु के बाद नवीन को कलकत्ता बुलाकर मधुसूदन ने पढ़ाया है और उसे बराबर अपने ही पास रखा है। सासारिक विषयो में नवीन स्वाभाविक रूप से कुशल था। इसका कारण यह था कि वह स्वयं खरा आदमी था। एक कारण यह भी था कि उसके व्यवहार और बोल-चाल के कारण सभी उससे स्नेह करते थे। उस मकान मे जब कोई भी झगड़ा-झंझट उठ खड़ा होता था तब नवीन उसे सहज मे निबटा देता था। वह सभी बातो मे हँसना जानता था। वह लोगो के झगडो का केवल सुविचार ही नहीं करता था, वरन् ऐसा व्यवहार करता था जिससे प्रत्येक के मन मे यह धारणा जम जाती थी कि केवल उसीके प्रति नवीन का विशेष पक्षपात है।

नवीन को मधुसूदन मन से स्नेह करता था इसका एक प्रमाण यह था कि वह मोती की माँ के अस्तित्व को सहन नहीं कर पाता था। जिसके प्रति उसके मन में ममता होती थी उसके प्रति वह एकाधिपत्य चाहता था। इसीलिए मधुसूदन यह सोचता था कि मोती की माँ नवीन के मन को खंडित करती चली जाती है। छोटे भाई के प्रति उसका जो पैतृक अधिकार है, बाहर से आई हुई एक नारी उसमें केवल बाधा ही डालती रहती थी। यदि मधुसूदन नवीन को विशेष रूप से चाहता न होता तो मोती की माँ को बहुत पहले ही निर्वासन-दंड मिल चुका होता।

मधुसूदन ने सोचा था कि केवल उतना-सा काम समाप्त करके वह एक बार फिर आफिस चला जायगा। पर इसके लिए उसे मन के भीतर से तनिक भी बल प्राप्त न हो सका। कुमुदिनी जो पत्र फाड़कर चली गई थी उस दृश्य का चित्र उसके मन की गहराई में अंकित हो चुका था। वह एक आश्चर्य-चित्र था, जिसकी कल्पना इसके पहले वह नही कर सकता था। एक बार अपने सदा से शंकित स्वभाव के कारण यह सोचने लगा था कि कुमुदिनी ने निश्चय ही वह पत्र पहले ही पढ़ लिया होगा। पर कुमुदिनी के मुख पर निर्मल सत्य का ऐसा दीप्त तेज अंकित था कि अधिक समय तक उस पर अविश्वास करना मधुसूदन के लिए भी असंभव था।

कुमुदिनी पर कड़ा शासन करने की शक्ति मधुसूदन देखते-देखते खो बैठा था। अब उसकी अपनी जो अपूर्णता थी वह उसे पीड़ा पहुँचा रही थी। उसकी उम्र अधिक हो चुकी है, आज वह यह बात भूल नही पा रहा था। वह यहाँ तक सोचने लगा था कि उसके बाल जो पकने लगे है उन्हे किसी तरह छिपा सके तो प्राण-रक्षा हो। उसका रंग काला था, विधाता का यह अन्याय इतने दिनों बाद उसके मन मे कड़ी चोट पहुँचा रहा था। उसके मन मे इस बात के लिए कोई सन्देह नही रह गया था कि कुमुदिनी का मन उसकी मुट्ठी से जो फिसलता चला जा रहा है उसका कारण उसके अपने पास रूप और यौवन का अभाव है। यही पर वह निरस्त्र और दुर्बल हो उठता था। उसने स्वयं ही चटर्जी-वंश की लड़की से विवाह करना चाहा था, पर इसकी कल्पना उसने कभी नहीं की थी कि उसे ऐसी लड़की मिलेगी जिसके आगे वह विधाता के कुचक्र से पहले ही से हार मानने को बाध्य होगा। तथापि यह कहने का बल उसमें नहीं था कि उसके भाग्य में यदि एक साधारण लड़की बदी होती तो अच्छा रहता—ऐसी लडकी जिसके ऊपर वह शासन कर सकता।

मधुसूदन केवल एक बात में बाजी मार सकता था—अपने धन के प्रदर्शन में। इसीलिए आज सबेरे ही उसने एक जौहरी को बुलाया था। उससे उसने तीन अँगूठियाँ खरीद रखी थी। वह देखना चाहता था कि उनमें से कौन-सी कुमुदिनी को पसंद आ सकती है। तीन जेबों में उन अँगूठियों की डिब्बियों को डालकर वह अपने सोने के कमरे में गया। उनमे से एक थी चुन्नी-जड़ी अँगूठी, एक पन्ने वाली और एक हीरे की। वह मन-ही-मन अपनी कल्पना से एक दृश्य देख रहा था। पहले उसने अपनी कल्पना मे चुन्नी-जड़ी अँगूठी धीरे-धीरे खोली। देखकर कुमुदिनी की ललचाई आँखो में चमक आ गई। उसके बाद बाहर निकली पन्ने वाली अँगूठी। उसे देखकर कुमुदिनी की आँखे और अधिक फैल गईं। उसके बाद हीरे वाली अँगूठी की बारी आई। उसकी बहुमूल्य चमक देखकर उस नवला नारी के विस्मय की सीमा न रही। मधुसूदन अपनी राजकीय गभीरता कायम रखता हुआ बोला, 'तुम इनमें से अपने मन की अँगूठी पसन्द कर लो।' जब कुमुदिनी ने हीरे वाली अँगूठी पसंद की तब उसके लोभ का क्षीण साहस देखकर, मंद-मंद मुस्कराते हुए मधुसूदन ने उन तीनों अँगूठियों को एक-एक करके उसकी तीन अँगुलियों में पहना दिया। और उसके बाद ही रात मे शयन-मंच का पर्दा उठा।

मधुसूदन ने सोच रखा था कि ये सब बातें, रात में भोजन के बाद होंगी। पर दोपहर की दुर्घटना के बाद वह और अधिक न सह सका। रात की भूमिका

को आज तीसरे ही पहर वह पूरा करना चाहता था, इसलिए वह अंतःपुर में चला गया।

जाकर उसने देखा कि कुमुदिनी एक टीन का बक्स खोलकर सोने के कमरे के फर्श पर बैठकर चीजों को सँजो रही है। उसके सामने सभी चीजे—कपड़े आदि—अस्त-व्यस्त पडी हुई है।

"यह क्या ? कही जा रही हो क्या ?"

"हाँ।"

"कहाँ ?"

"रजबपुर।"

"इसका मतलब क्या है ?"

"अपना दराज खोलने के लिए तुमने देवर-देवरानी को दंड दिया है। वह दड मुझे पाना चाहिए।"

'मत जाओ' कहकर अनुरोध करना मधुसूदन के स्वभाव के विरुद्ध था। उसके पहले ही वह बोल उठा था, "जाने दो, देखे कितने दिन वहाँ टिक सकती है।" एक क्षण की भी देरी न करके वह तेजी से वापस चला गया।

३६

बाहर जाकर मधुसूदन नवीन को बुलाकर बोला, "बडी बहू का दिमाग़ तुम लोगों ने खराब कर दिया है।"

"भैया, कल ही हम लोग चले जा रहे है। तुम्हारे निकट भय से कोई बात अब दबाकर नहीं कहूँगा। आज मै साफ़ कहे जाता हूँ कि बड़ी बहू का दिमाग खराब करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं है, तुम अकेले ही इसके लिए काफ़ी हो। हम लोग रहते तो तब भी उनका दिमाग कुछ ठंडा रख सकते थे, पर ऐसा तुम्हें सहन नहीं हुआ।"

मधुसूदन गरजता हुआ बोला, "बहुत सयानापन न दिखाओ। रजबपुर जाने की बात तुम्हीं लोगों ने उसे सिखाई है।"

"यह बात तो हम सोच भी नही सकते, सिखायँगे कैसे ?"

"देखो, यदि इस बात को लेकर तुम उसे नचाओगे तो तुम लोगों के लिए अच्छा नही होगा, यह मै साफ़ कहे देता हूँ।"

"भैया, ये सब बातें तुम कह किससे रहे हो ? जहाँ कहने से कुछ लाभ हो वहीं कहो !"

"तुम लोगों ने कुछ नही कहा ?"

"आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि इसकी कल्पना भी हम लोगों ने कभी नहीं की ।"

"यदि बड़ी बहू इस बात पर हठ कर बैठे तो तुम लोग क्या करोगे ?"

"तुम्हे बुला लायँगे । तुम्हारे पास सिपाही है, बरकंदाज़ है, प्यादे हैं। तुम उन्हें रोक सकते हो । उसके बाद यदि तुम्हारे शत्रु इस युद्ध का संवाद-पत्रों मे प्रचार करे तो मँझली बहू पर सन्देह न करना !"

मधुसूदन ने फिर उसे धमकाते हुए कहा, "चुप करो ! बड़ी बहू यदि रजबपुर जाना चाहती है तो जाय, मैं उसे रोकूँगा नही ।"

"हम उन्हें खिलायँगे कैसे ?"

"अपनी पत्नी के गहने बेचकर । जाओ ! मै कहता हूँ तुम कमरे से बाहर निकल जाओ !"

नवीन बाहर निकल आया । मधुसूदन ओडिकोलोन से भिगोई हुई पट्टी सिर में लगाकर मन-ही-मन आफ़िस जाने का इरादा पक्का करने लगा ।

नवीन के मुँह से सब-कुछ सुनकर मोती की माँ दौड़कर कुमुदिनी के पास पहुँची । उसने देखा कि वह कपड़ों की तह लगा रही है । मोती की माँ बोली, "यह क्या कर रही हो, बहूरानी ?"

"मैं तुम लोगों के साथ चलूँगी ।"

"तुम्हें ले जाने की सामर्थ्य हममें कहाँ है ?"

"क्यों !"

"जेठ जी तब हम लोगों का मुँह नहीं देखेंगे ।"

"तब मेरा भी मुँह वह नही देखेगे ।"

"यह तो हुआ, पर हम लोग तो बड़े ग़रीब है ।"

"मैं भी कुछ कम ग़रीब नही हूँ । मैं भी इसी तरह चला लूँगी ।"

"लोग जेठ जी पर हँसने जो लगेंगे ।"

"मेरे लिए तुम लोगों को सज़ा मिले, यह मैं नहीं सह पाऊँगी ।"

"पर बहन, यह सज़ा तुम्हारे कारण नहीं, हम लोगों के अपने ही पापों के कारण मिली है ।"

"तुम लोगों का क्या पाप है ?"

"हमी लोगों ने तो तुम्हें बताया है।"

"मैं यदि कोई ख़बर जानना चाहूँ, उसे बताना क्या अपराध है ?"

"कर्ता को बिना जताये ख़बर देना अपराध है।"

"तब ठीक है—अपराध तुम लोगों ने भी किया है, मैने भी किया है। हम लोग फल भी साथ ही भोगेंगे।"

"अच्छी बात है, तब मै कह दूँगी कि तुम्हारे लिए पालकी चाहिए। जेठ जी ने आदेश दिया है कि तुम्हें बाधा न दी जाय। जाओ, तुम्हारी चीजें मै सँजोए देती हूँ। तुम तो इन्हें लेकर पसीने से तर हो उठी हो।"

दोनों मिलकर चीज़ें सँजोने लगी।

इतने में बाहर से किसी के जूतों का चरमराना सुनाई दिया। मोती की माँ दौड़ती हुई भागी।

मधुसूदन कमरे मे घुसते ही बोला, "बड़ी बहू, तुम नही जा पाओगी।"

"क्यों नहीं जा पाऊँगी ?"

"मेरी आज्ञा।"

"अच्छी बात है, तब नही जाऊँगी। उसके बाद और क्या आज्ञा है, बोलो !"

"अपनी चीज़ें 'पैक' करना बंद करो !"

"यह लो, बंद कर दिया," कहकर कुमुदिनी वहाँ से उठकर कमरे के बाहर चली गई।

मधुसूदन बोला, "सुनो, सुनो !"

कुमुदिनी उसी क्षण लौट आई और बोली, "क्या कहना चाहते हो ?"

कोई विशेष बात कहने के लिए नहीं थी। तनिक सोचकर मधुसूदन ने कहा, "तुम्हारे लिए मैं अँगूठी लाया हूँ।"

"मुझे जिस अँगूठी की आवश्यकता थी उसे तुमने पहनने से मना कर दिया है। अब मुझे किसी अँगूठी की आवश्यकता नही है।"

"एक बार देख तो लो !"

मधुसूदन ने एक-एक करके तीनों डिबियों को खोलकर दिखाया।

'इनमें से तुम्हें जो भी पसंद हो, तुम ले सकती हो।"

"तुम जिसके लिए आज्ञा दोगे उसे ही पहनूँगी।"

"मैं तो सोचता हूँ कि ये तीनों ही तुम्हारी तीन उँगलियों में जँचेगी।

"आज्ञा दो तो मैं तीनों ही पहन लूँगी।"

"मैं पहना दूँगा।"

"पहना दो !"

मधुसूदन ने पहना दिया। कुमुदिनी बोली, "और भी कोई आज्ञा है ?"

"बड़ी बहू, तुम नाराज क्यों होती हो ?"

"मैं तनिक भी नाराज नही हूँ।" कहकर वह फिर कमरे से बाहर चली गई।

मधुसूदन घबराकर बोला, "अरे, जाती कहाँ हो ? सुनो, सुनो !"

कुमुदिनी तुरंत लौट आई। बोली, "क्या कहना चाहते हो ?"

मधुसूदन सोच नही पा रहा था कि क्या कहे। उसका मुँह लाल हो उठा। सहसा धिक्कार-भरे स्वर से बोला, "अच्छा जाओ।" और दूसरे ही क्षण क्रोध के साथ बोला, "लाओ, अँगूठियो को लौटा दो !"

कुमुदिनी ने तीनो अँगूठियाँ निकालकर तिपाई पर रख दी।

मधुसूदन ने डाँट-भरे स्वर में कहा, "जाओ यहाँ से !"

कुमुदिनी उसी क्षण चली गई।

इस बार मधुसूदन ने दृढ प्रतिज्ञा की कि वह निश्चय ही आफिस जायगा। तब काम का समय प्रायः बीत चुका था। सभी अँग्रेज कर्मचारी टेनिस खेलने चले गए थे। बडे बाबू लोगो का दल उठने की तैयारी कर रहा था। ऐसे समय मधुसूदन आफ़िस मे उपस्थित होकर कसकर काम करने के उद्देश्य से बैठ गया। छः बजे, सात भी बज गए और अंत में आठ भी बज चुके। तब वह सभी खाते और कागज बंद करके उठ खड़ा हुआ।

३७

इतने दिनों तक मधुसूदन की जीवन-यात्रा का कोई भी सूत्र कभी नहीं टूटा। प्रतिदिन का प्रत्येक मुहूर्त निश्चित नियम से बँधा रहता था। आज सहसा एक अनिश्चित परिस्थिति ने सब-कुछ गड़बड़ा दिया। आज जब वह आफ़िस से घर की ओर चला जा रहा था तब इस संबंध में उसे कुछ भी निश्चित नहीं दिखाई देता था कि रात मे ठीक क्या स्थिति रहेगी। वह शंकित भाव से घर पहुँचा और धीरे-धीरे उसने भोजन किया। भोजन समाप्त करते ही उसे सोने के कमरे में जाने का साहस नही हुआ। पहले कुछ देर तक वह दक्षिण की ओर वाले बरामदे में टहलता रहा जब नौ बज गए तब वह अन्तःपुर की ओर गया। आज उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि ठीक समय पर पलंग पर जाकर

सो जायगा, इसमें तनिक भी अन्यथा नही होगा। सूने शयन-कक्ष मे प्रवेश करते ही मसहरी खोलकर बिस्तर पर धम से लेट गया। पर नीद नही आती थी। रात जितनी ही घनी होती जाती थी उतना ही उसके भीतर का उपवासी जीव अँधेरे में धीरे-धीरे बाहर निकल आता था। तब उसे डाँटने वाला कोई नही था और पहरे वाले सभी क्लांत पड़े थे।

घड़ी में एक बज गया, पर उसकी आँखों में नीद नाम को नही थी। वह अधिक रह न सका। पलंग से उठकर सोचने लगा, कुमुदिनी कहाँ रह गई? बंकू फर्राश पर कड़ा आदेश जारी कर दिया गया था, इसलिए फर्राशखाने में ताला लगा हुआ था। छत पर घूमकर उसने देखा कि वहाँ भी कोई नही है। जूता उतारकर नीचे के खंड वाले बरामदे में धीरे-धीरे चलने लगा। मोती की माँ के कमरे के पास पहुँचने पर ऐसा लगा जैसे कुछ बाते हो रही है। हो सकता है—मधुसूदन ने सोचा कि कल वे लोग चले जायँगे इसलिए पति-पत्नी के बीच परामर्श चल रहा है। वह चुपचाप दरवाज़े के पास खडे होकर भीतर की ओर कान लगाए रहा। भीतर दो व्यक्तियों के बीच कुछ अस्पष्ट वार्तालाप चल रहा था। बात समझ में नही आती थी, पर इतना स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था कि दोनों स्त्री-कंठ है। तब तो निश्चय ही बिछोह की पूर्व-रात्रि मे मोती की माँ के साथ कुमुदिनी की ही बातें हो रही है। क्रोध से और क्षोभ से मधुसूदन का जी चाहता था कि लात मारकर दरवाजा खोल डाले और एक काण्ड कर बैठे। पर नवीन कहाँ गया? वह निश्चय ही कही बाहर होगा।

अन्तःपुर से बाहर जाने वाले चिलमन से ढके रास्ते में एक स्थान पर लालटेन की रोशनी टिमटिमा रही थी। वहाँ पहुँचते ही मधुसूदन ने देखा, एक लाल शाल ओढ़े श्यामा खड़ी है। उसके निकट लज्जित होने पर मधुसूदन का क्रोध बढ़ गया। बोला, "तुम क्या कर रही हो इतनी रात गए इस स्थान पर?"

श्यामा बोली, "मै सोई हुई थी। बाहर पाँवों की आहट सुनकर डर मालूम हुआ। मैंने सोचा कि शायद···"

मधुसूदन गरजता हुआ बोल उठा, "तुम्हारी ढिठाई बहुत बढ गई है देखता हूँ। मुझसे चालाकी न करो, मै सावधान किये देता हूँ। जाओ, सो जाओ!"

श्यामासुन्दरी इधर कुछ दिनों से थोड़ा-थोडा करके अपने साहस की मात्रा बढ़ाती चली जा रही थी। आज वह समझ गई कि असमय में गलत जगह आ पड़ी है। अत्यन्त करुण भाव से एक बार उसने मधुसूदन की ओर देखा, उसके

बाद मुँह फेरकर उसने आँचल खींचकर अपनी आँखें पोंछी। जाने की तैयारी करते हुए उसने एक बार फिर मुँह फेरा और बोली, "चालाकी नही करूँगी लाला, पर जो-कुछ देख रही हूँ उससे आँखों में नीद नहीं आ पाती। हम तो आज की नहीं है, कब से हम लोगों का संबंध है, इसलिए यह सब कैसे सहा जा सकता है ?" कहकर वह तेज क़दमों से चली गई।

मधुसूदन कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। उसके बाद वह बाहर वाले कमरे की ओर चला गया। चलते-चलते ठीक चौकादार के सामने आकर टकराया। चौकीदार चौकसी करने के लिए निकला था। नियमो का ऐसा कठिन जाल बिछा था कि अपने ही घर में उसे चुपचाप चलने-फिरने की भी सुविधा नहीं थी। चारों ओर सतर्क दृष्टियों का व्यूह-सा फैला हुआ था। राजा बहादुर इतनी रात गए पलंग छोड़कर नंगे पाँव अँधेरे में बाहर के बरामदे में भूत की तरह निकले है, यह एकदम अनोखी बात थी। पहले जब दूर से चौकीदार नहीं पहचान पाया था तब बोल उठा था, "कौन है ?" निकट आने पर जीभ काटते हुए उसने एक लंबा-सा प्रणाम किया, फिर बोला, "राजा बहादुर की कोई आज्ञा है क्या ?"

मधुसूदन बोला, "मै देखने आया था कि सब-कुछ ठीक से चल रहा है या नहीं।" यह बात मधुसूदन के लिए कुछ असंगत भी नहीं थी।

उसके बाद बैठकखाने में जाने पर मधुसूदन ने देखा कि जैसे उसने सोचा था ठीक वही बात है। नवीन वहाँ एक गद्दे के ऊपर तकिया लगाकर सोया हुआ है। मधुसूदन ने उस कमरे में गैस की रोशनी जला दी, पर उससे भी नवीन की नींद नही टूटी। उसने एक धक्का दिया। नवीन जगकर हड़बड़ाता हुआ उठ बैठा। मधुसूदन ने उससे वहाँ सोने का कारण नहीं पूछा, केवल कहा, "अभी जाओ, बड़ी बहू से कहो कि मैंने उसे सोने के कमरे में बुलाया है।"

कुछ ही देर बाद कुमुदिनी सोने के कमरे में आ पहुँची। मधुसूदन ने उसके मुँह की ओर देखा। वह एक बहुत ही सादी लाल किनारी वाली साड़ी पहने थी। साड़ी का छोर सिर के ऊपर खींच लिया गया था। उस निर्जन कमरे की मद्धम रोशनी मे यह कैसा अपूर्व आविर्भाव था उसका ! कुमुदिनी कमरे के एक कोने में रखे सोफे पर बैठ गई।

मधुसूदन तभी फ़र्श पर उसके पाँवों के निकट आकर बैठ गया। कुमुदिनी संकुचित होकर ज्यों ही उठने लगी, मधुसूदन ने उसे हाथ से खींचकर बिठाया। बोला, "उठो मत, तनिक मेरी बात सुनो ! मुझे माफ करो। मैने अपराध किया है।"

मधुसूदन की यह अप्रत्याशित विनती सुनकर कुमुदिनी से कुछ कहते नहीं

बना। मधुसूदन ने फिर कहा, "नवीन को और मँझली बहू को रजबपुर जाने से मैं मना कर दूँगा। वे दोनों तुम्हारी ही सेवा में रहेंगे।"

कुमुदिनी की समझ में कुछ नहीं आता था कि उत्तर में क्या कहे। मधुसूदन सोच रहा था कि वह अपना मान खर्च करके बड़ी बहू का मान भंग करेगा। हाथ पकड़कर विनती करता हुआ बोला, "मैं अभी आ रहा हूँ, बोलो, तुम कही नही जाओगी।"

कुमुदिनी बोली, "नहीं, मै नहीं जाऊँगी।"

मधुसूदन नीचे चला गया। मधुसूदन जब क्षुद्रता प्रकट करता था और कठोर हो उठता था तब कुमुदिनी को वह स्थिति जटिल नही मालूम पड़ती थी। पर आज उसकी यह नम्रता, अपने को खर्च करने की यह प्रवृत्ति देखकर वह समझ नही पा रही थी कि उसका वह क्या उत्तर दे। हृदय का जो दान लेकर वह आई थी वह सब तो नीचे गिरकर बिखर चुका था, उसे धूल से उठाकर बटोरने से तो काम नही चलेगा। वह फिर एक बार अपने देवता को पुकारने लगी, 'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्'।

कुछ ही देर बाद मधुसूदन नवीन और मोती की माँ को साथ में लेकर आ पहुँचा। उन्हें लक्ष्य करके बोला, "कल मैंने तुम लोगों से रजबपुर चले जाने के लिए कहा था, पर अब उसकी आवश्यकता नहीं है। कल से मैं बड़ी बहू की सेवा में तुम लोगों को नियुक्त किये दे रहा हूँ।"

सुनकर वे दोनों स्तब्ध रह गए। पहले तो इस प्रकार के आदेश की प्रत्याशा उन्होंने नही की थी, फिर इतनी रात गए उन्हें बुलाकर यह बात कहने की आवश्यकता क्या थी!

पर मधुसूदन अधिक विलंब सह नहीं पा रहा था। आज ही रात कुमुदिनी के मन को बदलने में वह किसी भी प्रकार की कृपणता, या संकोच को प्रश्रय देना नहीं चाहता था। अपने जीवन में इसके पहले उसने कभी इस प्रकार अपनी मर्यादा को खंडित नहीं किया था। वह जो चाहता था उसे पाने के लिए उसने अपनी ओर से सबसे दुःसाध्य मूल्य चुकाया। अपनी निजी भाषा में उसने कुमुदिनी को समझा दिया कि "तुम्हारे निकट मैं बिना किसी संकोच के हार मानता हूँ।"

इस बार कुमुदिनी के मन में बड़ा संकोच होने लगा। वह सोचने लगी कि इस स्थिति को वह किस रूप में ग्रहण करेगी? इसके बदले में देने के लिए उसके पास क्या है? जब जीवन में बाहर से कोई बाधा आती है तब उससे लड़ने का बल सहज ही प्राप्त हो जाता है, स्वयं देवता उसके लिए सहायक हो

जाते हैं। पर जब वह बाहर का विरोध सहसा एकदम परास्त हो उठता है तब लड़ाई तो थम जाती है पर संधि नहीं हो पाती। तब बाहर निकल आता अपने भीतर का प्रतिरोध। कुमुदिनी के आगे सहसा यह बात साफ हो गई कि मधुसूदन जब उद्धत था तब उसके साथ चाहे कैसा ही अप्रिय क्यो न लगता हो, फिर भी वह सहज था, पर अब जब वह नम्र हो उठा है तब उसके साथ व्यवहार अत्यंत कठिन हो उठा है। ऐसी स्थिति में उसके क्षुब्ध अभिमान की ओट नहीं रह जाती। फर्राशखाने का आश्रय चला जाता है, और देवता के निकट हाथ जोडने का कोई अर्थ नही रह जाता।

यदि वह किसी बहाने मोती की माँ को अपने पास रख पाती तो बच जाती। पर जब नवीन चला गया तब मोती की माँ भी अनिश्चित मन से धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे चली गई। दरवाजे के पास पहुँचने पर एक बार ओट से उसने चिंतित भाव से कुमुदिनी की ओर देखा। वह सोच रही थी कि पति की प्रसन्नता के पंजे से अब इस निरीह लड़की को कौन बचा सकेगा?

मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू, कपडे उतारकर सोने नही आओगी?"

कुमुदिनी धीरे-धीरे उठी और बगल वाले गुसलखाने में जाकर उसने दरवाज़ा बंद कर लिया—मुक्ति की मियाद जितनी भी बढ सकती थी वह बढ़ा लेना चाहती थी। वहाँ एक चौकी थी, वह उसी पर बैठी रही। उसका व्याकुल शरीर जैसे अपने ही भीतर अपना अंतराल खोज रहा था। मधुसूदन बीच-बीच में दीवार की घडी की ओर देखता था और मन-ही-मन हिसाब लगा रहा था कि कपड़े उतारने के लिए कितना समय लग सकता है। इस बीच उसने शीशे में अपना मुँह भी देख लिया। सिर की चाँद मे जिस स्थान पर कड़े बाल अस्त-व्यस्त रूप से बिखरे रहते है उन्हे उसने कई बार बुरुश से व्यर्थ ही दबाने का प्रयत्न किया। अपने कपड़ों पर उसने बहुत-सा लेवेण्डर उँड़ेल लिया।

पन्द्रह मिनट बीत गए; कपड़े बदलने के लिए इतना समय पर्याप्त था। मधुसूदन उठकर चुपचाप गुसलखाने के दरवाज़े के पास कान लगाकर खडा हुआ। भीतर किसी के हिलने-डुलने का कोई शब्द नही सुनाई दिया। वह सोचने लगा, शायद कुमुदिनी बाल ठीक कर रही है और जूड़े को लेकर व्यस्त है। स्त्रियाँ साज-श्रृंगार करना पसंद करती है, इतनी बात मधुसूदन भी जानता था, इसलिए उसने सोचा कि तब तक धीरज रखना ही होगा। आध घंटा बीत चला—मधुसूदन ने और एक बार दरवाजे की ओर कान लगाया; अब भी कोई शब्द नही सुनाई दिया। लौटकर वह एक आराम-कुर्सी पर बैठ गया और पलंग के सामने वाली दीवार पर जो विलायती चित्र लटक रहा था उसकी ओर ताकता

रहा। सहसा हड़बड़ाता हुआ उठा और बद दरवाज के निकट खडे होकर उसने पुकारा, "बड़ी बहू, क्या अभी तक नही हुआ ?"

उसके बाद ही धीरे-धीरे दरवाजा खुला। कुमुदिनी बाहर निकल आई। वह जैसे स्वप्न में पाने की तरह था। जो कपड़े उसने पहले पहन रखे थे अभी तक उन्हे ही पहने थी; यह तो रात में सोने का साज नही है। उसके शरीर मे प्रायः पूरी आस्तीन वाला भूरे रंग के सर्ज का एक कुरता था, एक लाल किनारी वाले बदामी रंग के अलवान का आँचल सिर के ऊपर खींच लिया गया था। दरवाज़े के एक पल्ले पर बॉया हाथ रखकर न जाने किस दुविधा मे वह खड़ी रही। एक निराली ही छवि थी वह ! गोरे-उजले हाथ में मकर के मुख वाला शुद्ध सोने का कगन था—पुराने ढंग का। शायद किसी समय वह उसकी माँ का रहा होगा। उस मोटे और भारी कंगन ने उसके सुकुमार हाथ को ऐश्वर्य की जो मर्यादा प्रदान की थी वह उसके लिए इतना सहज थी कि उस अलकार से नाम-मात्र के भी आडंबर का भास नही होता था। मधुसूदन ने जैसे फिर एक बार उसे नये रूप मे देखा। वह फिर एक बार उसकी महिमा देखकर विस्मित हुआ ! यह बात सोचे बिना वह रह न सका कि उसकी बहुत दिनों से अर्जित की हुई संपत्ति ने इतने समय बाद श्री-लाभ किया है। संसार मे जिस प्रकार के लोगों के साथ मधुसूदन का मिलना-जुलना होता था उसमें से अधिकांश व्यक्तियों की अपेक्षा अपने को धन में और गौरव मे बडा समझने का उसका अभ्यास था। आज गैस की रोशनी में सोने के कमरे के दरवाज़े पर सामने वह लड़की स्तब्ध खड़ी थी। उसे देखकर मधुसूदन को लगा जैसे उसके पास यथेष्ट धन नहीं है। वह सोचने लगा, यदि वह चक्रवर्ती सम्राट् होता तभी वह इस घर मे शोभा पा सकती। वह जैसे प्रत्यक्ष देख पा रहा था कि उस लड़की का स्वभाव जन्म से ही एक विशेष वंश-मर्यादा के बीच मे विकसित हुआ है। अर्थात् जैसे उसका वह स्वभाव उसके जन्म के भी बहुत पहले से एक लबे काल पर छाया हुआ था। वहाँ बाहर से कोई साधारण व्यक्ति प्रवेश ही नही कर सकता। वही विप्रदास भी अपना स्वाभाविक सत्त्वाधिकार लेकर विराज रहा है—उसे भी कुमुदिनी की तरह ही जैसे एक सहज गौरव सदा घेरे हुए है।

मधुसूदन यह बात किसी प्रकार भी सहन नही कर पाता था। विप्रदास मे औद्धत्य का लेश भी नही था। केवल था एक दूरत्व का भाव। बहुत बड़ा आत्मीय भी सहसा आकर उसकी पीठ ठोककर यह कहने का साहस करे कि "कहो भाई, क्या हाल है ?" यह जैसे असभव था। विप्रदास के आगे मधुसूदन को मन-ही-मन जिस लघुता का बोध होता था उसीसे उसे चिढ थी। उसी एक

सूक्ष्म कारण से वह कुमुदिनी के ऊपर जोर नहीं डाल पा रहा था। अपने परिवार मे जहाँ उसे शासन का अधिकार सबसे अधिक था वही उसे पीछे हटना पड़ रहा था। पर इससे उसके मन में क्रोध नहीं जगता था—बल्कि कुमुदिनी के प्रति इस कारण से आकर्षण और अधिक प्रबल एवं दुर्निवार हो उठता था। आज वह स्पष्ट ही देख रहा था कि कुमुदिनी तैयार होकर नही आई थी—केवल एक अदृश्य ओट के पीछे खड़ी थी। पर कैसा सुन्दर था उसका वह रूप ! कैसी एक दीप्त पवित्रता और स्वच्छ शुभ्रता उसमें झलक रही थी ! जैसे निर्जन हिम-शिखर पर निर्मल उषा भासित हो रही हो।

तनिक निकट आकर मधुसूदन धीरे से बोला, "बड़ी बहू, सोने नही आओगी ?"

कुमुदिनी सुनकर चकित रह गई। वह निश्चित रूप से समझे बैठी थी कि मधुसूदन नाराज हो जायगा, उसे अपमानित करने की बात कहेगा। सहसा एक चिर-परिचित सुर उसे याद आ गया—उसके पिताजी स्निग्ध स्वर में किस तरह उसकी माँ को 'बड़ी बहू' कहकर पुकारते थे ! साथ ही यह बात भी याद आई कि उसकी माँ उसके बाबूजी को अपने निकट आने से रोककर किस प्रकार चली गई थी। पल में उसकी आँखे छलछला आई। वह फ़र्श पर मधुसूदन के पाँवों के निकट बैठकर बोल उठी, "मुझे क्षमा करो !"

मधुसूदन ने उसका हाथ पकड़कर उसे उठाया और चौकी पर बिठाते हुए कहा, "तुमने क्या दोष किया है जो मैं तुम्हे क्षमा करूँ ?"

कुमुदिनी बोली, "अभी तक मै अपने मन को तैयार नहीं कर पाई हूँ। मुझे कुछ समय दो !"

सुनते ही मधुसूदन का मन सख्त हो उठा। बोला, "किस बात के लिए समय देना होगा, समझाकर कहो !"

"ठीक समझा नहीं पाऊँगा—यह बात किसी को समझा पाना बहुत कठिन है—"

मधुसूदन के गले मे अब रस नहीं रह गया था। उसने कहा, "कुछ भी कठिन नहीं है। तुम यही तो कहना चाहती हो कि मैं तुम्हें पसंद नही हूँ।"

कुमुदिनी कठिनाई में पड़ गई। बात सच थी, फिर भी सच नहीं थी। हृदय भरकर देवता को नैवेद्य चढ़ाने के लिए वह प्रतिज्ञा किये बैठी है, पर वह नैवेद्य अभी तक आ नहीं पाया। मन कहता है, तनिक धीरज रखने पर और पथ में कोई विघ्न न होने पर वह आ पहुँचेगा। बहुत देरी भी नहीं है। फिर भी अभी तक डलिया खाली है, यह बात तो माननी ही पड़ेगी !

वह बोली, "तुम्हे मै धोखा नही देना चाहती, इसीलिए कहती हूँ कि मुझे तनिक समय दो!"

मधुसूदन की असहनशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही थी। वह कड़ी आवाज में बोला, "समय देने से सुविधा और क्या होगी! अपने भैया से परामर्श करके तुम अपने पति से गार्हस्थिक संबध स्थापित करना चाहती हो!"

मधुसूदन का ऐसा ही विश्वास था। वह सोचता था कि विप्रदास की प्रतीक्षा मे ही कुमुदिनी का सब-कुछ रुका पड़ा है। भैया जिस रूप में इसे चलाना चाहेंगे, यह उसी रूप में चलेगी। व्यंग के स्वर में वह बोला, "तुम्हारे भैया तुम्हारे गुरु है।"

कुमुदिनी उसी क्षण फ़र्श पर से उठकर खड़ी हो गई और बोली, "हाँ, मेरे भैया मेरे गुरु है।"

"उनकी आज्ञा न होने से तुम आज कपडे नही उतारोगी, पलग पर सोने नही आओगी, यही तो?"

कुमुदिनी मुट्ठी बाँधे काठ की तरह निश्चल खड़ी रही।

"तब तार देकर उनकी आज्ञा मँगाई जाय—बहुत रात हो गई।"

कुमुदिनी कोई उत्तर दिये बिना ही छत वाले दरवाजे की ओर चली गई।

मधुसूदन गर्जन के स्वर में डाँटता हुआ बोला, "मै कहता हूँ कि यहाँ से मत जाओ!"

कुमुदिनी उसी क्षण लौटकर खडी हो गई और बोली, "तुम क्या चाहते हो, बताओ!"

"अभी कपड़े उतारकर आओ!" फिर घड़ी देखकर बोला, "पाँच मिनट का समय देता हूँ।"

कुमुदिनी गुसलखाने मे जाकर, कपड़े उतारकर, साड़ी के ऊपर एक मोटी चादर लपेटकर चली आई। अब दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करने लगी। देखकर मधुसूदन खूब समझ गया कि युद्ध-कला में वह लड़की भी कुछ कम नहीं है। उसका क्रोध बढ़ता जाता था, पर क्या करना होगा यह वह समझ नहीं पा रहा था। प्रचंड क्रोध की स्थिति में भी मधुसूदन व्यवस्था-बुद्धि खो नही बैठता था; इसीलिए वह सँभल गया। बोला, "अब तुम क्या करना चाहती हो बोलो!"

"तुम जो कहोगे वही करूँगी।"

मधुसूदन हताश होकर चौकी पर धम्म से बैठ गया। चादर लपेटी हुई उस लड़की को देखकर उसे लगा, जैसे वह विधवा की मूर्ति हो; जैसे उसके पति और उसके अपने बीच एक निस्तब्ध मृत्यु का सागर लहरा रहा हो। गरजने-

तरजने से उस समुद्र को पार नहीं किया जा सकता। तब पाल मे कौन-सी हवा लगाने पर नाव तैरेगी ? कभी तैरेगी भी या नही ?

वह चुप बैठा रहा, घड़ी के टिक-टिक शब्द के अतिरिक्त कमरे मे और कोई शब्द नही सुनाई दे रहा था। कुमुदिनी कमरे से बाहर नही गई—फिर मुड़कर बाहर छत के अँधेरे की ओर आँखें गडाए चित्र के समान खड़ी रही। रास्ते के मोड़ से नशे मे चूर किसी व्यक्ति के गद्‌गद् कंठ से निकले हुए गाने का स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। किसी पड़ोसी के अस्तबल मे कुत्ते का एक पिल्ला बँधा हुआ था। उसका अश्रांत आर्त्त-नाद रात्रि की शाति को चीरता हुआ उठ रहा था।

समय एक अतलस्पर्शी गह्वर की तरह शून्य मे जैसे मुँह बाये हुए था। मधुसूदन के संसार की मशीन के सभी चक्के जैसे बंद हो गए हों। कल उसे आफ़िस मे बहुत से काम है। डाइरेक्टरो की मीटिंग है—अनेक बाधाओं के बावजूद अनेक जटिल प्रस्ताव कौशल से पास करवा लेने है। ये सब आवश्यक काम आज उसके निकट एकदम छाया की तरह लग रहे थे। इसके पहले उसकी यह आदत थी कि दूसरे दिन के आवश्यक कार्यो को अपनी नोटबुक में दर्ज कर लेता था। आज इस तरह की कोई चिंता उसके मन को जकड़ नहीं रही थी। उसे लग रहा था कि संसार में जो सबसे कठिन और सुनिश्चित सत्य है वह है चादर लपेटे खड़ी वह लड़की, जो कमरे से बाहर निकलने के रास्ते पर स्तब्ध खड़ी थी। कुछ देर बाद उसने एक लंबी साँस ली, सारा कमरा जैसे ध्यान भंग होने पर चौक उठा। तुरंत चौकी पर से उठकर वह कुमुदिनी के पास जाकर बोला, "बडी बहू, तुम्हारा मन क्या पत्थर से गढा हुआ है ?"

यह 'बड़ी बहू' शब्द कुमुदिनी के मन में यंत्र की तरह बजता था। ऐसे अवसर पर उसके भीतर अपनी माँ के जीवन का चित्र सहसा उज्ज्वल हो उठता था। इस शब्द की पुकार ने उसकी माँ को न जाने कितने दिन कितने सहज भाव से प्रेरित किया था। उसीका अभ्यास जैसे कुमुदिनी के रक्त में घुला हुआ था। इसलिए परिचित पुकार सुनते ही वह मुड़कर खड़ी हो गई। मधुसूदन अत्यन्त कातर स्वर मे बोला, "मै तुम्हारे योग्य नही हूँ, पर तुम क्या मुझ पर दया भी नही करोगी ?"

कुमुदिनी व्यस्त होकर बोल उठी, "छी-छी, ऐसी बात न कहो !" फ़र्श पर गिरकर मधुसूदन के पैरों की धूल लेकर बोली, "मै तुम्हारी दासी हूँ, मुझे तुम आदेश दो !"

मधुसूदन ने उसे हाथ पकड़कर उठाया और छाती से लगाते हुए कहा,

"नहीं, मै तुम्हे आदेश नही दूँगा। तुम स्वयं अपनी इच्छा से मेरे पास आओ!"

मधुसूदन के बाहु-बंधन में जकडी हुई कुमुदिनी हाँफने लगी। पर अपने को छुड़ाने की चेष्टा उसने नहीं की। मधुसूदन प्रायः रुँधे हुए गले से फिर बोला, "नही, मै तुम्हे आदेश नही दूँगा, फिर भी तुम मेरे पास आओ!" यह कहकर उसने कुमुदिनी को छोड दिया।

कुमुदिनी का गोरा मुँह लाल हो उठा। आँखे नीचे की ओर करके बोली, "तुम्हारे आदेश से मेरा कर्तव्य सहज हो उठता है। मै स्वयं अपनी ओर से सोचने पर कुछ नही कर पाती।"

"अच्छा, तुम अपना वह चदरा उतार डालो—उसे मै देख नही पाता।"

कुमुदिनी ने ससकोच चदरा उतार दिया। वह एक डुरिया साड़ी पहने थी, जिसकी किनारी बहुत बारीक थी। काली धारियाँ उसके शरीर पर ऐसी लग रही थीं जैसे वे रेखाओं के झरने हों। लगता था जैसे वे निरंतर बहती चली जा रही है—जैसे कोई एक काली दृष्टि अपनी अश्रांत गति के चिह्न छोडती हुई उसके अंग के चारो ओर प्रदक्षिणा कर रही है, और वह प्रदक्षिणा किसी प्रकार भी थमती नही। देख-देखकर मधुसूदन मुग्ध हो गया। तथापि उसी क्षण वह इस बात पर ध्यान दिये बिना न रह सका कि वह साड़ी उसके यहाँ की नही है। कुमुदिनी के बदन पर वह कैसी ही क्यों न फबती हो, वह सादी थी और दूसरी बात यह थी कि वह उसके मायके की थी। गुसलखाने से ही जुड़ा हुआ जो कमरा कपड़े बदलने के लिए है वहाँ मेहागिनी की लकड़ी की बनी दराज़ वाली एक बड़ी अलमारी रखी है। उसका पल्ला शीशे से मढ़ा है। उसमे कुमुदिनी के विवाह के पहले से ही नाना प्रकार की कीमती साड़ियाँ रखी हुई हैं। उन सबके प्रति उसके मन में तनिक भी लोभ नही है—इतना घमंड है इस लड़की को। मधुसूदन को याद आई उन तीन अँगूठियों की बात, जिन्हे असहनीय उपेक्षा के साथ कुमुदिनी ने ग्रहण नहीं किया, तथापि एक तीन कौडी की नीलम की अँगूठी के प्रति उसका कितना आग्रह था! विप्रदास और मधुसूदन के बीच कुमुदिनी की ममता का कितना मूल्य-भेद है! इसी तरह की बाते हवा के एक आकस्मिक तेज झोके की तरह मधुसूदन को प्रचंड धक्का दे गई। पर हाय रे, लड़की कैसी सुन्दर है, आश्चर्यजनक रूप से सुन्दर है। और उसकी यह दर्द-भरी अवज्ञा—वह भी तो जैसे उसका एक अलंकार ही बन गया है! यही लड़की तो ऐश्वर्य की उपेक्षा कर सकती है! वह अपनी सहज संपदा से महीयसी होकर पैदा हुई है—उसे धन का मूल्य आँकना नही होता, हिसाब रखना नही होता, तब उसे क्या देकर लोभ दिखाया जा सकता है?

इसी तरह सोचता हुआ मधुसूदन बोला, "जाओ, तुम सोने चली जाओ !"

कुमुदिनी उसके मुँह की ओर देखती रह गई—उसका नीरव प्रश्न यह था, "क्या तुम पहले पलग पर नहीं जाओगे ?"

मधुसूदन फिर दृढ़ स्वर में बोला, "जाओ, अब अधिक देर न करो !"

कुमुदिनी जब पलंग पर चली गई तब मधुसूदन सोफे पर बैठा हुआ बोला, "मै यही बैठा रहूँगा। जब तुम मुझे बुलाओगी तभी आऊँगा। बरस-पर-बरस मै प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूँ।"

कुमुदिनी का सारा शरीर सिहर उठा—यह कैसी निराली परीक्षा है ! आज वह किसके दरवाज़े पर जाकर सिर पीटे ? देवता ने उसकी ओर ध्यान ही नही दिया। जिस रास्ते से होकर वह यहाँ आई वह तो एकदम गलत रास्ता है। पलंग पर बैठे-बैठे उसने मन-ही-मन कहा, 'देवता, तुम मुझे कभी भुला नही सकते हो, मै अब भी तुम्ही पर विश्वास करूँगी। ध्रुव को तुम्ही वन ले गए थे —वन में उसे दर्शन देने के लिए।'

उस स्तब्ध कमरे मे सन्नाटा छाया हुआ था। रास्ते के मोड पर उस मतवाले की भी आवाज नही सुनी जाती थी। केवल वह बदी पिल्ला थक जाने पर भी आर्त्त-नाद कर रहा था।

थोड़ा समय भी बहुत अधिक मालूम हो रहा था। स्तब्धता से भार-ग्रस्त पहर जैसे हिल नहीं पा रहा था। यही क्या उसके दाम्पत्य-जीवन का अनंत-कालीन चित्र है ? दोनों पार दो व्यक्ति मौन बैठे हुए—रात्रि का अंत नही है—बीच में एक अलंघनीय निस्तब्धता छाई हुई। अंत में कुमुदिनी अपनी सारी शक्ति बटोरकर पलंग से उठकर चली आई और बोली, "मुझे अपराधिनी मत बनाओ !"

मधुसूदन ने गम्भीर स्वर में कहा, "तुम क्या चाहती हो, बोलो ? क्या करना होगा ?" वह उसकी अन्तिम बात भी जैसे निचोड़कर बाहर निकाल लेना चाहता था।

कुमू बोली, "सोने आओ !"

पर क्या इसीको जीत कहते हैं ?

३८

दूसरे दिन सबेरे जब मोती की माँ कुमुदिनी के लिए एक प्याला दूध लेकर आई, तब उसने देखा, कुमुदिनी की दोनों आँखें लाल और फूली हुई थीं और मुँह का रंग हो गया था राख की तरह मैला-धुँधला। उसने सोचा था कि सबेरे छत के जिस कोने मे आसन बिछाकर पूरब की ओर मुँह करके कुमुदिनी मानसिक पूजा के लिए बैठती थी, आज भी वही बैठी होगी। पर आज वह वहाँ नहीं थी। सीढ़ी से ऊपर उठते ही छत का जो थोड़ा-सा हिस्सा ढका हुआ था वहीं दीवार से पीठ सटाये वह थकी हुई-सी फर्श पर बैठी थी। शायद आज वह देवता से रूठी हुई थी। निरपराध बेटे को बाप जब अकारण पीटता है, तब वह जिस प्रकार कुछ समझ नहीं पाता, सारी मार चुपचाप, अभिमान के साथ सह लेता है—प्रतिवाद या प्रतिरोध करने की तनिक भी चेष्टा नहीं करता, देवता के प्रति कुमुदिनी का भी मनोभाव आज ठीक उसी तरह था। जिस आह्वान को उसने दैवी माना था वह क्या इसी अपवित्रता मे निहित है? इसी आंतरिक अस्तित्व मे? देवता क्या नारी-बलि चाहते हैं? क्या इसीलिए वह शिकार को लुभाकर, भटकाकर ले आए है? जिस शरीर के भीतर मन ही नही है क्या उसी मांस-पिंड को बनायेंगे वह अपना नैवेद्य? आज किसी प्रकार भी उसके मन में भक्ति नहीं जगी। इतने दिनों तक वह बार-बार बोलती आ रही थी, मुझे तुम सहन करो, पर आज विद्रोहिणी का मन बोल रहा था, 'मैं तुम्हे कैसे सहन करूँगी? लज्जा में डूबी हुई मैं कैसे तुम्हारी पूजा रचूँगी? अपनी भक्ति को स्वयं ग्रहण न करके तुमने उसे किस दासी-हाट में बेच दिया? जिस हाट में मांस-मछली के ही भाव नारी भी बिकती है, जहाँ निर्माल्य उठाने के लिए कोई श्रद्धा पूर्वक पूजा की प्रतीक्षा में बैठा नहीं रहता, जहाँ बकरे को सारा फूलवन ही खिला दिया जाता है।'

जब मोती की माँ ने दूध पीने के लिए अनुरोध किया तब कुमुदिनी बोली, "रहने दो!"

मोती की माँ बोली, "क्यों, रहने क्यों दूँ? मेरे दूध के कटोरे का क्या दोष है?"

कुमुदिनी ने कहा, "अभी मैंने न स्नान किया है, न पूजा।"

मोती की माँ बोली, "तुम जाओ स्नान करने, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी रहूँगी।"

कुमुदिनी का स्नान समाप्त हो चला था। मोती की माँ ने सोचा कि अब वह खुली छत के कोने में जा बैठेगी। एक क्षण के लिए कुमुदिनी के पाँव अभ्यासवश छत की ओर बढ़ने लगे थे, पर फिर वह नही गई। लौटकर फिर वहीं फर्श पर बैठ गई। उसका मन तैयार नही था।

मोती की माँ से कुमुदिनी ने पूछा, "भैया की चिट्ठी क्या नही आई ?"

संभवतः आई होगी, यह सोचकर मोती की माँ आज तड़के ही चोरी-छिपे आफिस वाले कमरे मे गई थी। वहाँ उसने जब चिट्ठियो वाला दराज खोला तो देखा उसे चाबी से बंद कर दिया गया है। अतएव अब से चोरी के ऊपर डकैती के लिए रास्ता बंद हो गया था।

मोती की माँ बोली, "मै ठीक नही बता सकती। पता लगाऊँगी।"

तभी सहसा श्यामा आ पहुँची। बोली, "बहू, तुम्हे क्या हो गया है ? बहुत दुबली हो गई हो। क्या तबीयत खराब है ?"

कुमुदिनी बोली, "नही।"

"मायके के लिए तुम्हारा जी छटपटा रहा होगा। यह तो होना ही चाहिए। सो तुम्हारे भैया तो आ ही रहे है, भेट हो जायगी।"

कुमुदिनी चौक उठी। श्यामा के मुँह की ओर उत्सुक दृष्टि से देखती रही। मोती की माँ ने पूछा, "यह खबर तुम्हे कैसे मिली, बकुल फूल ?"

"यह लो ! यह तो सभीको मालूम है। हमारे रसोईघर की 'पार्वती कह रही थी, इनके मायके का 'सरकार' आया था राजा बहादुर के पास बहू की खबर पूछने। उसीसे उसने सुना कि बहू के भैया इलाज के लिए आज-कल मे ही कलकत्ता आ रहे है।"

कुमुदिनी ने चिंतित होकर पूछा, "क्या उनकी बीमारी बढ़ गई है ?"

"मैं कह नहीं सकती। पर चिता की कोई ऐसी बात नही है। होती तो सुनने में जरूर आता।"

श्यामा समझ गई थी कि उसके भैया का समाचार मधुसूदन ने उसे नही दिया है—शायद इसलिए कि जिस बहू का मन ही वह अभी तक नहीं पा सका है वह मायके की ओर उन्मुख होकर कही अधिक अनमनी न हो उठे। कुमुदिनी के मन को उकसाती हुई बोली, "तुम्हारे भैया के समान मनुष्य मुश्किल से पाए जाते है, सभी के मुँह से मैं यही बात सुनती हूँ। बकुल फूल, चलो देरी हुई जाती है, भंडार का काम निबटाना है। आफ़िस की रसोई में देर होने से मुश्किल हो जायगी।"

मोती की माँ दूध का कटोरा और एक बार कुमुदिनी की ओर बढाती हुई

बोली, "दीदी, दूध ठंडा हुआ जाता है। इसे पी लो, रानी बहन मेरी !"

इस बार कुमुदिनी ने दूध पीने में आपत्ति नहीं की।

मोती की माँ ने उसके कान में कहा, "आज क्या भंडार के कमरे मे जाओगी ?"

कुमुदिनी बोली, "आज रहने दो—एक बार गोपाल को मेरे पास भेज देना।"

एक काला, कठोर, भूखा बुढ़ापा बाहर से कुमुदिनी को राहु की तरह ग्रस रहा था। जो परिणत वय शात, स्निग्ध, शुभ्र और सुगंभीर होती है वह तो यह नहीं है। जो सदा लालायित रहता है, जिसके संयम की शक्ति शिथिल है, जिसका प्रेम विषयासक्ति की ही जाति का है, उसीके चिपचिपे स्पर्श से कुमुदिनी का मन अरुचि से भर उठा था। पति की उम्र अधिक होने की कोई शिकायत उसे नहीं थी; उसे पीडा केवल इस बात की थी कि वह वय अपनी मर्यादा को भूल चुकी थी। परिपूर्ण आत्म-निवेदन एक फल की तरह होता है; प्रकाश और हवा की मुक्ति के बीच मे वह पकता है। कच्चे फल को चक्की में पीसने से तो वह नहीं पकता ! इसके लिए समय नही मिल पाया, इसी कारण वह संबंध कुमुदिनी को इस तरह कचोट रहा था, इस कदर अपमानित कर रहा था। वह भागे कहाँ ? मोती की माँ से अभी जो उसने कहा था कि गोपाल को बुला देना, वह भागने के लिए रास्ता खोजने का ही एक बहाना-मात्र था। वह भागना चाहती थी अपवित्रता से नई निर्मलता की ओर, गंदी साँसों की घुटन से बाहर निकलकर सुगंध से महकते हुए फूलों के बाग़ की ओर।

एक पतला, रुईदार, छींट का कपडा पहने हाबलू सीढ़ी के चौखटे के पास आकर डरता-डरता खड़ा हो गया। अपनी माँ की तरह ही उसके दो बड़ी-बड़ी काली आँखें थीं, उसीकी तरह पानी-भरे बादलों की तरह सरस, साँवला रंग था। दोनों गाल फूले से लगते थे और बाल सब इस तरह कटे थे कि सिर सफ़ा-चट लगता था।

कुमुदिनी ने उठकर संकुचित हाबलू को खीचकर छाती से लगाया। बोली, "दुष्ट लड़का कही का ! दो दिन से आया क्यों नहीं ?"

हाबलू कुमुदिनी का गला पकड़कर उसके कान में बोला, "ताई, तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ, बताओ !"

कुमुदिनी उसका गाल चूमती हुई बोली, "माणिक लाये हो लल्ला !"

'मेरी जेब में है।"

"अच्छा, तब बाहर निकालो !"

"तुम बता नहीं सकीं ।"

"मेरे पास तो बुद्धि ही नहीं है । जो आँखों से देखती हूँ उसीको नहीं समझ पाती हूँ, और जिसे नहीं देखती हूँ उसे तो और भी गलत समझती हूँ ।"

तब हाबलू ने धीरे-धीरे अपनी जेब से भूरे कागज की एक पुड़िया निकालकर उसे कुमुदिनी की गोद में डालकर दौड़कर भागने की चेष्टा की ।

"नहीं, तुम्हें मैं भागने नहीं दूँगी ।"

पुड़िया हाथ से दबाकर हाबलू ने व्यस्त भाव से कहा, "तब इसे अभी मत देखो !"

"नहीं, डर की कोई बात नहीं, तुम जब चले जाओगे तब खोलूँगी ।"

"अच्छा ताई, तुमने जटा वाली बुढ़िया को देखा है ?"

"नीचे आँगन के पास कोयले वाले कमरे में वह साँझ के समय चमगीदड़ की पीठ पर चढकर आती है ।"

"चमगीदड की पीठ पर चढ़कर आती है वह !"

"वह जितना चाहे उतनी छोटी हो सकती है ।"

"तब तो यह मंत्र उससे सीख लेना होगा ।"

"क्यों ताई ?"

"मैं जब भागने के लिए कोयले वाले कमरे में जाती हूँ तब भी लोग मुझे देख लेते है ।"

हाबलू इस बात का कोई अर्थ नही समझ पाया । वह बोला, "कोयलों के बीच में उसने सिन्दूर की डिबिया छिपा रखी है । वह सिन्दूर वह कहाँ से लाई है, जानती हो ?"

"कुछ-कुछ जानती हूँ ।"

"अच्छा, तब बताओ तो जानें ।"

"भोर के बादलो के भीतर से ।"

हाबलू ठिठक गया । इस बात ने उसे सोचने को विवश कर दिया। विशेष संवाददाता ने उसे सागर के पार वाली दैत्यपुरी की बात बताई थी । पर उसे लगा कि ताई की बात विश्वास-योग्य है । इसलिए उसके विरोध में कोई शंका न उठाकर वह बोला, "जो लड़की उस डिबिया को खोजकर माथे पर उस सिन्दूर की बिंदिया लगायगी वह राजरानी बनेगी ।"

"गज़ब हो गया ! क्या किसी दुष्टा को इसकी खबर लग गई है ?"

"मँझली फूफी की लड़की खुदी को इसकी खबर है । जब सवेरे छन्नू टोकरी लेकर कोयला निकालने जाता है तब खुदी भी उसके साथ जाती है—

उसे तनिक भी डर नही लगता।"

"वह तो बच्ची है, इसलिए उसके राजरानी बनने मे डर की कोई बात नही है।"

बाहर उत्तर से आने वाली ठंडी हवा चल रही थी, इसलिए कुमुदिनी हाबलू को लेकर भीतर चली गई। वहाँ सोफ़े पर बैठकर उसने उसे गोद में उठा लिया। पास ही तिपाई पर चाँदी की एक छोटी-सी थलिया में जाडे के दिनों के फूल रखे थे—गेंदा, कुन्द, जवा आदि। नित्य की तरह माली उन फूलों को बीनकर रख गया था। कुमुदिनी छत के कोने में बैठकर सूर्योदय की ओर मुँह करके देवता को चढायगी, इस उद्देश्य से वे रखे गए थे। आज उन सब अनिवेदित फूलों को थलिया के साथ उठाकर उसने हाबलू के निकट उन्हें रख दिया। बोली, "लोगे फूल ?"

"हाँ, लूँगा।"

"क्या करोगे तुम इनका ?"

"पूजा का खेल करूँगा।"

कुमुदिनी की कमर मे एक रेशमी रूमाल ठुँसा हुआ था, उसीमें फूलो को बाँधकर, एक मीठी लेकर कुमुदिनी बोली, "यह लो !" मन-ही-मन बोली, 'मैंने भी पूजा का खेल खेल लिया !' बोली, "गोपाल, इनमे कौन-सा फूल तुम्हे सबसे अच्छा लगता है बताओ !"

हाबलू बोला, "जवा का।"

"जवा क्यों अच्छा लगता है, बताऊँ ?"

"उसने सबेरा होने के पहले ही जटा वाली बुढिया की सिन्दूर वाली डिबिया से रंग चुराया है।"

हाबलू कुछ देर तक गंभीर होकर सोचने लगा। सहसा बोल उठा, "ताई, जवा-फूल का रंग तुम्हारी साडी की इस लाल किनारी की तरह है।" इतने से उसने मन की सारी बात कह दी।

इतने में सहसा पीछे की ओर मुड़ने पर उसने देखा मधुसूदन खड़ा था। उसके पाँवों की आहट नही सुनाई पड़ी थी। तब अन्तःपुर में उसके आने का कोई समय नहीं था। इस समय बाहर वाले आफ़िस के कमरे में व्यवसाय-सम्बन्धी कामों को जो परिशिष्ट अंश होता था वह सब आ जुटता था। उस समय दलाल आते थे, उम्मीदवार आते थे और आता था सेक्रेटरी—तरह-तरह की छुट-पुट खबरें और कागज़-पत्र लेकर।

३९

जिस भिक्षुक की झोली में केवल भूसी इकट्ठा हो गई हो चावल नहीं, उसीकी तरह मन लेकर आज सबेरे मधुसूदन बड़ी रुखाई से बाहर निकल गया था। पर अतृप्ति का आकर्षण बड़ा प्रचंड होता है। बाधा के कारण ही वह व्यक्ति को बाधा से ऊपर खींच लाता है।

उसे देखते ही हाबलू का मुँह सूख गया। उसका हृदय धड़कने लगा। वह भागने की चेष्टा करने लगा। कुमुदिनी ने बलपूर्वक उसे जकड़ लिया, उठने नहीं दिया।

मधुसूदन यह समझ गया। हाबलू को जोर से डाँटता हुआ बोला, "यहाँ क्या कर रहा है ? पढ़ने नहीं जायगा क्या ?"

गुरुजी के आने का समय अभी नहीं हुआ है, यह बात बताने का साहस हाबलू को नहीं हुआ। डाँट को चुपचाप स्वीकार करके सिर नीचा किये वह धीरे-धीरे चलने लगा।

कुमुदिनी उसे रोकने की चेष्टा करती-करती रह गई। बोली, "अपने फूलों को तुम यहीं छोड़े जा रहे हो, क्या इन्हें ले नही जाओगे ?" कहकर उसने रूमाल की वह पोटली उसके आगे बढ़ाई। हाबलू ने फूल नही लिये—वह डरता हुआ अपने ताऊजी के मुँह की ओर ताकता रहा।

मधुसूदन ने चट से पोटली कुमुदिनी के हाथ से छीनकर पूछा, "यह रूमाल किसका है ?"

पल में कुमुदिनी का मुँह लाल हो आया। बोली, "मेरा।"

वह रूमाल पूर्णतः कुमुदिनी का था, उसमें सन्देह नही था—अर्थात् वह उसके विवाह के पहले की संपत्ति थी। उसमें किनारे पर जो रेशम का काम किया हुआ था वह भी कुमुदिनी की अपनी रचना थी।

फूलों को नीचे फर्श पर फेंककर मधुसूदन ने रूमाल अपनी जेब में डाल लिया। बोला, "इसे मैं लिये लेता हूँ—बच्चा इसे लेकर क्या करेगा ? तू जा !"

मधुसूदन की यह रुखाई देखकर कुमुदिनी स्तंभित हो गई। हाबलू दुखी होकर चला गया। कुमुदिनी कुछ नही बोली।

उसके मुख का भाव देखकर मधुसूदन बोला, "तुम तो ख़ैरात बाँट रही हो। क्या केवल मुझे ही वंचित करोगी ? यह रूमाल आज से मेरा ही हो गया, याद रहेगा कि तुमसे कुछ तो पाया था।"

मधुसूदन जो-कुछ चाहता था उसे पाने में उसका स्वभाव ही विरोध तथा बाधा उपस्थित करता था।

कुमुदिनी आँखें नीची करके सोफे के एक किनारे चुपचाप बैठी रही। साड़ी की लाल किनारी उसके सिर से लेकर मुँह तक घेरकर नीचे लटक रही थी। उसीके साथ लटके हुए थे उसके भीगे लहराते हुए बिखरे बाल। गले की सुकुमार कोमलता को सोने का एक हार घेरे हुए था। यह हार उसकी माँ का था, इसलिए वह सदा उसे पहने रहती थी। उसने भीतर केवल एक साया पहन रखा था। तब तक वह पूरे कपड़े पहन नही पाई थी। उसके दो खुले हाथ उसकी गोद पर स्थिर पडे थे। अत्यन्त सुकुमार और गोरे वे दो हाथ थे। उसके समस्त शरीर की वाणी जैसे वही आकर मुखरित हो उठी थी। मधुसूदन झुकी हुई आँखो से अभिमानिनी को एकटक देख रहा था। सोने के मोटे कंगन पहने उन दो हाथों से मधुसूदन आँखें हटा नहीं पाता था। सोफे में उसकी बगल में बैठकर उसने एक हाथ अपनी ओर खींचने का प्रयत्न किया—पर उसे एक विशेष बाधा का अनुभव हुआ। कुमुदिनी हाथ हटाना नही चाहती थी—हाथ में कागज़ की एक पुड़िया को वह दाबे हुए थी।

मधुसूदन ने पूछा, "उस कागज़ में क्या मुड़ा हुआ है?"

"पता नहीं।"

"पता नहीं! इसके क्या माने?"

"इसके माने है, मैं नही जानती।"

मधुसूदन को विश्वास नहीं हुआ। बोला, "मुझे दो, मै देखता हूँ।"

कुमुदिनी बोली, "वह मेरी गोपनीय वस्तु है। तुम्हें नहीं दिखा सकूँगी।"

सहसा क्रोध के तीर की तीखी लहर मधुसूदन के सिर पर दौड़ गई। बोला, "क्या? तुम्हारी इतनी स्पर्द्धा!" कहकर उसने जबर्दस्ती वह पुड़िया छीन ली। उसे खोलकर देखने लगा। उसमें कुछ नहीं था, केवल थोड़े से इलायची-दाने थे। माँ की सस्ती व्यवस्था में हाबलू के जल-पान का जो राशन बँधा था उसमें सबसे अधिक प्रलोभनीय उसके लिए शायद यही इलायची-दाना था। इसीलिए वह बड़े जतन से मोड़कर उसे लाया था।

मधुसूदन अवाक् रह गया। ठीक समझ न पाया कि मामला क्या है। उसने सोचा, 'अपने मायके से उसे इसी नाश्ते का अभ्यास है—इसीलिए वह उसे छिपाए है, संकोच के कारण उसे प्रकट नहीं करना चाहती।' मन-ही-मन वह हँसा। सोचने लगा, 'लक्ष्मी का मुक्त दान ग्रहण करने में समय लगता है।' सहसा उसके दिमाग़ में एक सूझ पैदा हुई। वह तेज़ी से बाहर चला गया।

कुमुदिनी ने अपना दराज खोलकर चन्दन का एक-छोटा-सा चौकोर बक्स निकाला। उसमें इलायची-दाना रखकर वह अपने भैया को चिट्ठी लिखने लगी। दो-चार पंक्तियाँ भी नहीं लिख पाई थी कि मधुसूदन लौट आया। तुरंत चिट्ठी दबा कुमुदिनी स्थिर होकर बैठ गई। मधुसूदन के हाथ में चाँदी और सोने का काम की हुई एक फलदानी थी, उसके ऊपर फूल कढा हुआ एक सुगंधित रेशमी रूमाल था। मंद-मंद हँसते हुए उसने उसे डैस्क के ऊपर कुमुदिनी के सामने रख दिया। बोला, "खोलकर देखो तो, क्या है।"

रूमाल हटाकर कुमुदिनी ने देखा, उस कीमती फलदानी में ढेर इलायची-दाने रखे हुए थे। यदि वह अकेली होती तो हँसती। कुछ न बोलकर वह गंभीर भाव से चुप बैठी रही। उसकी अपेक्षा हँसना ही अच्छा रहता।

मधुसूदन बोला, "इलायची-दाना छिपाकर खाने की क्या आवश्यकता है? इसमे लज्जा की क्या बात है? रोज ला दूँगा—कितना चाहिए तुम्हे? मुझसे तुमने पहले क्यों नही बताया?"

कुमुदिनी बोली, "तुम नही ला सकोगे।"

"नही ला सकूँगा? क्या कहती हो तुम?"

"नही, तुम नही ला सकोगे।"

"इसका दाम चुका सकना क्या मेरे लिए संभव नहीं है?"

"यह चीज रुपये से नही मिलती।"

सुनते ही मधुसूदन के दिमाग में एक संदेह घुस गया। बोला, "शायद तुम्हारे भैया ने पार्सल से भेजा है?"

इस प्रश्न का उत्तर देने की इच्छा कुमुदिनी को नही हुई। फलदानी को हटाकर वह चलने के लिए उठ खडी हुई। मधुसूदन ने उसका हाथ पकड़कर बलपूर्वक उसे बिठाया।

मधुसूदन को कुछ बोलने का अवसर न देकर कुमुदिनी ने पूछा, "भैया के यहाँ से तुम्हारे यहाँ कोई आदमी उनका कुशल-समाचार लेकर आया था क्या?"

कुमुदिनी को इस बात का पता पहले ही लग चुका है, यह जानकर मधुसूदन मन-ही-मन चिढ़ उठा। बोला, "वह समाचार देने ही तो मैं आज सबेरे-सबेरे तुम्हारे पास आया हूँ।" कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब झूठ था।

"भैया कब आयँगे?"

"एक सप्ताह के भीतर ही।"

मधुसूदन निश्चित रूप से जानता था कि विप्रदास कल ही पहुँच जायगा, पर 'एक सप्ताह के भीतर' कहकर उसने समाचार को अनिश्चित बना दिया।

"भैया का स्वास्थ्य क्या और अधिक बिगड़ गया है ?"

"नहीं, ऐसी कोई बात तो मेरे सुनने में नहीं आई।"

इस बात में भी तनिक घुमाव था। विप्रदास इलाज के ही लिए कलकत्ता आ रहा था—जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है।

"भैया का पत्र आया है क्या ?"

"चिट्ठियों का बक्स मैने अभी नहीं खोला है, यदि कोई पत्र होगा तो मै तुम्हारे पास भेज दूँगा।"

कुमुदिनी ने मधुसूदन की बातों पर अविश्वास करना आरंभ नहीं किया था, इसलिए यह बात भी उसने चुपचाप मान ली।

"भैया का पत्र आया है या नहीं, एक बार इस बात का पता लगाओगे ?"

"यदि आया होगा तो दोपहर को खाना खाने के बाद मैं स्वयं ही ले आऊँगा।"

कुमुदिनी अधैर्य का दमन करके चुपचाप राज़ी हो गई। तभी मधुसूदन ने एक बार और उसका हाथ खींचने का प्रयत्न किया। सहसा श्यामा कमरे के भीतर घुसते ही बोल उठी, "अरे, यहाँ तो लाला बैठे है !" बोलते ही उलटे पाँव लौटने लगी।

मधुसूदन बोला, "क्या बात है, तुम्हें क्या चाहिए ?"

"बहू को भंडार में बुलाने आई हूँ। राजरानी होने पर भी वह घर की लक्ष्मी तो है ही। पर आज चाहे रहने दो !" मधुसूदन सोफ़े से उठा और कुछ न बोल-कर तेज़ी से बाहर चला गया।

भोजन के बाद बाक़ायदा सोने के कमरे में जाकर, पलंग पर तकिये के सहारे आधा लेटे, पान चबाते हुए मधुसूदन ने कुमुदिनी को बुला भेजा। वह तुरंत चली आई। वह जानती थी कि उसे आज भैया की चिट्ठी अवश्य मिलेगी। सोने के कमरे में जाकर वह पलंग के पास खड़ी रही।

गुड़गुड़ी की नली हटाकर संकेत से स्थान बताते हुए मधुसूदन बोला, "बैठो !"

कुमुदिनी बैठ गई। मधुसूदन ने उसके हाथ में जो पत्र दिया उसमें केवल इतना ही लिखा था :

"प्राणप्रतिमासु
शुभाशीर्वादराशयः सन्तु।

इलाज के लिए जल्दी ही कलकत्ता आ रहा हूँ। स्वस्थ होने पर तुमसे मिलने आऊँगा। घर के कामों से अवकाश पाने पर बीच-बीच में यदि तुम्हारा कुशल-संवाद मिलता रहे तो मै आश्वस्त रहूँगा।"

यह छोटा-सा पत्र पाकर पहले कुमुदिनी के मन को एक धक्का पहुँचा। मन-ही-मन उसने कहा, "अब मै पराई हो गई हूँ। अभिमान जब प्रबल होने जा रहा था तब सहसा उसने सोचा, "भैया का स्वास्थ्य ठीक नही है, मेरा मन इतना छोटा है कि केवल अपनी ही बात सबसे पहले सोचती हूँ।"

मधुसूदन समझ गया कि कुमुदिनी उठने की तैयारी कर रही है। बोला, "जाती कहाँ हो ? तनिक बैठो !"

कुमुदिनी से तो उसने बैठने को कहा, पर सोच नहीं पा रहा था कि उससे क्या बात कहे। पर जल्दी ही कुछ-न-कुछ कहना ही होगा। इसलिए सबेरे से उसके मन मे जिस बात का खटका लगा हुआ था वही उसके मुँह से निकल गई। बोला, "इस इलायची-दाने वाली बात को लेकर तुमने इतना आडबर क्यो रचा ? उसमे लज्जा की क्या बात थी ?"

"वह मेरी निजी और गोपनीय बात थी।"

"गोपनीय बात ? मुझे भी नही बताई जा सकती ?"

"नही।"

मधुसूदन की आवाज़ कड़ी हो आई। बोला, "यह तुम लोगो की नूरनगरी चाल है—अपने भैया के स्कूल में सीखी हुई।"

कुमुदिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मधुसूदन तकिया छोड़कर उठ बैठा। बोला, "तुम्हारी यह आदत यदि मै न छुड़ा पाया तो मेरा नाम मधुसूदन नही।"

"तुम्हारा हुक्म क्या है, कहो !"

"वह पुड़िया तुम्हे किसने दी थी बताओ ?"

"हाबलू ने।"

"हाबलू ने ! तब इस बात को इतना छिपाने की आवश्यकता क्या थी ?"

"ठीक बता नही पाऊँगी।"

"क्या और किसी ने उसके द्वारा तुम्हारे पास वह पुड़िया भेजी थी ?"

"नही।"

"तब ?"

"बस बात वही तक है, उसके अलावा और कोई बात नहीं है।"

"तब इस क़दर लुकाव-छिपाव क्यों ?"

"तुम समझ नहीं पाओगे !"

कुमुदिनी का हाथ पकड़कर उसे झटककर खीचते हुए मधुसूदन बोला, "तुम्हारी यह ज्यादती असह्य है ।"

कुमुदिनी का मुँह लाल हो उठा । शात स्वर मे उसने कहा, "तुम क्या चाहते हो, ठीक-ठीक समझाकर कहो ! मै मानती हूँ कि तुम लोगों के यहाँ के चलन की आदी मैं नहीं हूँ ।'

मधुसूदन के माथे की दो नसे फूल उठी । कोई उत्तर न सोच पाने के कारण उसका जी करता था कि उसे पीटे । तभी बाहर से किसी के गला खखारने की आवाज़ सुनाई दी । किसी ने कहा, "आफिस का साहब आकर बैठा हुआ है ।" उसे याद आया कि आज डाइरेक्टरो की मीटिंग है । वह यह सोचकर लज्जित हुआ कि वह इसके लिए तैयार नहीं हो पाया—आज की सुबह एकदम व्यर्थ चली गई । इतनी ढिलाई उसके स्वभाव और अभ्यास के इस कदर विरुद्ध थी कि वह सोचकर स्वयं स्तंभित रह गया ।

४०

मधुसूदन जैसे ही गया वैसे ही कुमुदिनी पलंग से उतरकर फ़र्श पर जा बैठी । क्या जीवन-भर उसे ऐसे समुद्र में तैरते रहना होगा जिसका कहीं कूल-किनारा नहीं है ? मधुसूदन ने ठीक ही कहा था कि उन लोगों का चलन भिन्न है । और सभी अंतरों की अपेक्षा यह अधिक दुःसह । इसका उपाय क्या हो सकता है ?

सहसा कुछ सोचकर वह नीचे के खंड में मोती की माँ के कमरे की ओर चल दी । सीढ़ियों से नीचे उतरते समय उसने देखा, श्यामासुन्दरी ऊपर की ओर आ रही है ।

"क्यों बहू, किधर चलीं ? मै तुम्हारे ही कमरे की तरफ़ जा रही थी ।"

"कोई ख़ास बात है क्या ?"

"ऐसी कोई ख़ास बात नहीं है । मैंने देखा कि लाला का मिज़ाज कुछ गरम हो उठा है, सोचा जाकर एक बार तुमसे पूछूँ कि नये प्रेम में कहाँ पर अड़चन आई । याद रखना बहू, उनके साथ किस ढग से चलना चाहिए, यह सलाह हमीं दे सकते हैं । बकुल-फूल की तरफ़ चल रही हो शायद ? तब ठीक

है जाओ—जी तनिक हल्का कर आओ !"

आज सहसा कुमुदिनी को लगा, श्यामासुन्दरी और मधुसूदन दोनो एक ही कुम्हार के चक्के मे एक ही मिट्टी से गढे हुए है। यह बात क्यों उसके दिमाग में आई, यह बताना कठिन है। चरित्र-विश्लेषण करके वह समझ पाई हो, ऐसी बात नहीं थी; दोनों के आकार-प्रकार में भी विशेष मेल नही दिखता था, फिर भी उसे लगा कि जैसे दोनों के रंग-ढग एक ही अनुप्रास मे बँधे हैं—श्यामासुन्दरी की दुनिया और मधुसूदन की दुनिया में एक ही हवा बहती है। श्यामासुन्दरी जब हेल-मेल बढ़ाने आती थी तब वह भी कुमुदिनी को उल्टी ओर ढकेलता था, और उसके शरीर में एक सिहरन पैदा हो जाती थी।

मोती की माँ के सोने के कमरे मे जाकर उसने देखा कि नवीन और उसके बीच किसी चीज को लेकर छीना-झपटी चल रही है। वह लौट चलने की सोच ही रही थी कि सहसा नवीन बोल उठा, "भाभी, जाओ मत, जाओ मत ! मै तुम्हारे ही पास चलने को था। एक नालिश थी।"

"किस बात की नालिश ?"

"तनिक बैठो; अपने दुःख की बात तुमसे कहना चाहता हूँ।" कुमुदिनी तख्त पर बैठ गई।

नवीन बोला, "मेरे ऊपर बड़ा अत्याचार हो रहा है। इन भद्र महिला ने मेरी पुस्तक कही छिपा दी है।"

"ऐसा शासन क्यों ?"

"ईर्ष्या, क्योकि वह स्वय अँगरेजी नही पढ़ पाती है। मैं स्त्री-शिक्षा के पक्ष में हूँ, पर वह पति-जाति की 'एजुकेशन' की विरोधी है। मेरी बुद्धि की जितनी ही उन्नति होती चली जाती है उतना ही उनसे मेरा मतभेद भी बढ़ता जाता है। उनकी चिढ़ का यही कारण है। मैने कितना समझाया कि इतनी बड़ी जो सीता है वह भी रामचंद्र के पीछे-पीछे चलती थीं। विद्या-बुद्धि में मैं जो तुमसे बहुत दूर आगे निकल गया हूँ, इसमें बाधा मत दिया करो !"

"तुम्हारी विद्या की बात तो माँ सरस्वती जानें, पर अपनी बुद्धि की तारीफ़ न किया करो ! मेरा केवल इतना ही कहना है।"

नवीन ने अपना मुँह ऐसा बना लिया जैसे उस पर कोई महा संकट आ टूटा हो। देखकर कुमुदिनी खिलखिलाकर हँस पड़ी। इस घर में आने के बाद वह आज पहली बार ही जी खोलकर हँसी थी। उसकी यह हँसी नवीन को बहुत मीठी लगी। उसने मन-ही-मन कहा, 'अब से यही मेरा काम निश्चित हो गया—मैं भाभी को हँसाया करूँगा।'

कुमुदिनी ने हँसते-हँसते पूछा, "बहन, लाला की किताब क्या तुमने सचमुच छिपा रखी है ? क्यों ?"

"देखो तो दीदी, सोने के कमरे मे क्या उनकी पाठशाला के गुरुजी बैठे हुए है ? दिन-भर खटने के बाद रात मे जब मै अपने कमरे में आई तब देखती क्या हूँ कि एक मिट्टी का दीया जल रहा है और उसके साथ ही एक लैम्प भी, और हमारे महापंडित पुस्तक पढने बैठे हुए है। खाना ठंडा हो गया, ताकीद-पर-ताकीद की गई, पर उन्हे कुछ होश ही नही था।"

"क्या यह बात सच है, लाला ?"

"भाभी, मैं इतना बड़ा तपस्वी नही हूँ कि मुझे खाना ही अच्छा न लगता हो। पर उससे भी अच्छा लगता है मुझे उनके मुँह का मीठा उलाहना। इसीलिए जान-बूझकर खाने मे देर हो जाती है—किताब पढना तो एक बहाना-मात्र है।"

"उनसे तो बातों में पार पाना संभव ही नही है। हार माननी पड़ती है।"

"और मै तब हार मानता हूँ जब वह बोलना बंद करती है।"

"क्या ऐसा भी कभी-कभी होता है लाला ?"

दो-एक ताज़े दृष्टान्त देता हूँ, जो आँसुओं के उज्ज्वल अक्षरों से मन मे लिखे हुए हैं—"

"अच्छा, अच्छा, तुम्हे दृष्टांत देने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बताओ कि मेरी ताली कहाँ है ? तनिक देखो तो दीदी, मेरी ताली छिपाए बैठे हैं।"

"घर के आदमी पर तो पुलिस-केस चलाया नही जा सकता, इसलिए चोर को चोरी द्वारा ही दडित करना पड़ता है। पहले तो मेरी किताब मुझे दो !"

"तुम्हें नही दूँगी, मै दीदी को देती हूँ।"

कमरे के एक कोने में एक टोकरी मे रेशम, ऊन, कपड़ों के टुकड़े, फटे मौजे आदि का ढेर जमा था, उसीके नीचे से अंगरेज़ी के एक 'संक्षिप्त इन्साइक्लोपीडिया' का दूसरा खंड बाहर निकालकर मोती की माँ ने उसे कुमुदिनी की गोद में रख दिया और कहा, "दीदी, इसे अपने कमरे में ले जाओ, उन्हें मत देना। देखूँ, तुम्हारे साथ किस तरह झगड़ते है।"

नवीन ने मसहरी के ऊपर से ताली निकालकर कुमुदिनी के हाथ में थमा दी और कहा, "और किसी को न देना, भाभी, देखना चाहता हूँ कि तुम्हारे साथ कोई कैसा व्यवहार करता है।"

कुमुदिनी पुस्तक के पन्ने पलटती हुई बोली, "तब इस पुस्तक को पढ़ने का शौक़ है लाला को !"

"कोई पुस्तक ऐसी नही है जिसे पढने का शौक इन्हे न हो। उस दिन क्या देखती हूँ कि गो-पालन-संबंधी एक पुस्तक कही से जुटाकर पढने बैठ गए।"

"मै अ.ने शरीर की रक्षा के लिए उसे नही पढता, इसलिए इसमे लज्जा का कोई कारण मै नही देखता।"

"दीदी, तुम कुछ कहने आई थी। कहो तो इन वाचाल महाशय को विदा कर दूँ?"

"नही, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैने सुना है कि भैया दो-एक दिन के भीतर ही आ जायँगे।"

नवीन बोला, "हाँ, वह कल ही आ जायँगे।"

"कल!" विस्मित होकर कुमुदिनी क्षण-भर के लिए चुप रह गई। एक लंबी साँस लेकर बोली, "उनसे कैसे मिलना हो सकेगा?"

मोती की माँ ने पूछा, "तुमने जेठजी से कुछ नही कहा?"

कुमुदिनी ने सिर हिलाकर बताया कि उसने कुछ नही कहा।

नवीन बोला, "एक बार कहकर देख ही न लो!"

कुमुदिनी चुप रह गई। वह जानती थी कि मधुसूदन के निकट भैया के सबध में कोई बात कहना बहुत कठिन है। उसके कमरे में जैसे भैया के प्रति अपमान सब समय उद्यत रहता है। इसलिए उसे तनिक भी हिलाने-डुलाने में असहनीय संकोच का अनुभव होता था।

कुमुदिनी के मुख का भाव देखकर नवीन का मन पीड़ित हो उठा। बोला, "भाभी चिंता न करो, हम लोग सब ठीक कर लेंगे। तुम्हे कुछ कहना-सुनना नही होगा।"

नवीन के मन मे भैया के निकट एक जन्म-जात भीरुता का भाव वर्तमान था। आज उसे लगा, जैसे भाभी ने वह भय उसके मन से भगा दिया।

कुमुदिनी जब चली गई तब मोती की माँ नवीन से बोली, "क्या उपाय करोगे, कुछ बताओ तो सही! उस दिन रात में जब तुम्हारे भैया ने हम लोगों को बुलाकर अपनी पत्नी के निकट अपने को छोटा कर दिया तभी मै समझ गई थी कि यह ठीक नहीं हुआ। उसके बाद से तो वह तुम्हे देखते ही मुँह फेर-कर चल देते हैं।"

"भैया समझ गए है कि वे ठगे गए हैं। ताव मे आकर थैली खोलकर अग्रिम मूल्य चुकाया जा चुका है, पर माल ठीक तौल से नहीं मिला। हम लोग

उनकी इस मूर्खता के साक्षी थे । यही कारण है कि वह अब हम लोगों को सह नहीं पाते ।"

मोती की माँ बोली, "जो भी हो, विप्रदास बाबू के प्रति उनकी खीझ पागलपन की तरह उन पर सवार हो गई है और दिन-दिन बढ़ती ही चली जा रही है। यह कैसी अजीब बात है, बताओ तो !"

नवीन बोला, "उनका भक्ति जताने का ढंग ही ऐसा है, इस तरह के स्वभाव के लोग भीतर से जिसे श्रेष्ठ समझते है बाहर उसीको मारते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि राम के प्रति रावण की असाधारण भक्ति थी, इसीलिए वह बीस हाथो से नैवेद्य का भोग लगाता था। मै बताए देता हूँ कि भाभी का अपने भैया से मिलना आसानी से नही हो पायगा ।"

"ऐसा कहने से काम नही चलेगा । कुछ उपाय करना ही होगा ।"

"एक उपाय दिमाग में आया है ।"

"क्या सूझा है, बताओ तो ?"

"बता नहीं सकूँगा ।"

"क्यो ?"

"संकोच हो रहा है ।"

"मुझसे भी संकोच ?"

"तुम्हीसे संकोच है ।"

"कारण सुनूँ ?"

"भैया को धोखा देना होगा ।"

"अपने प्रिय व्यक्ति के लिए किसी को ठगने में भी संकोच नहीं करना चाहिए ।"

"तुमने मेरे ऊपर प्रयोग करके इस ठग-बुद्धि में हाथ पक्का किया है न ?"

"इस विद्या के प्रयोग के योग्य व्यक्ति मुझे कोई मिले तब तो !"

"मालकिन, मै शर्तनामा लिखे देता हूँ, जब चाहो तब मुझे ठगना !"

"इतना उत्साह तुम्हे इसके लिए क्यो है ?"

"बताऊँ ? विधाता ने तुम लोगों को ठगने के जितने भी उपाय दिए है उनमें उन्होंने मधु भी ढाल दिया है। उसी मधुमयी ठग-विद्या को कहते है माया ।"

"उसे तो काटकर ही चलना अच्छा है ।"

"गज़ब हो जायगा ! माया ही जब गायब हो जायगी तब संसार में रह क्या जायगा ? मूर्ति का रंग छूट जाने पर शेष रह जाती है खड़िया मिट्टी ।

देवि, अबोध को भुलाओ, ठगो, उसकी आँखों में भूम पैदा करो, मन मे नशा जगाओ, जैसा जी चाहे वैसा करो !"

इसके बाद उन दोनों के बीच जो बाते हुई वे हमारे काम की नहीं हैं। इस कहानी से उनका कोई संबंध नहीं है।

४१

उस दिन मीटिंग में पहली बार मधुसूदन की हार हुई। इसके पहले उसका कोई भी प्रस्ताव, कोई भी व्यवस्था अमान्य नहीं हुई थी। अपने ऊपर उसका जैसा विश्वास था, उसके प्रति उसके सहयोगियों का भी वैसा ही विश्वास था। इसी भरोसे पर वह मीटिंग में किसी आवश्यक प्रस्ताव को पक्का कर लेने के पहले ही काम को काफ़ी आगे बढ़ाए रहता था। इस बार एक पुरानी नीलकोठी वाली जायदाद को अपने नील-संबंधी कारोबार मे सम्मिलित करने की योजना थी। उस पर काफ़ी ख़र्चा भी हो चुका था। प्रायः सब-कुछ तय हो चुका था; केवल रजिस्टरी करके दाम चुकाना बाक़ी था। जिन सब लोगों को नियुक्त करना आवश्यक था उन्हें आशा में रखा गया था। ऐसे समय सहसा यह बाधा उपस्थित हुई। हाल ही में उनके किसी ट्रेज़रर का पद ख़ाली होने के कारण रिश्ते के एक जमाई को उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया जा रहा था। अयोग्य के उद्धार के संबंध में कोई उत्सुकता या उत्साह न रहने से मधुसूदन ने उसकी उपेक्षा की। वह मामला मिट्टी मे दबे बीज की तरह सहसा विरोध के रूप में अंकुरित हो उठा। एक छिद्र भी था। उस जायदाद का मालिक मधुसूदन के दूर के रिश्ते की एक फूफी के जेठ का लड़का था। फूफी जब उसके पीछे पड़ गई तब मधुसूदन ने हिसाब करके देखा कि वह जायदाद बहुत ही सस्ते दामों पर मिल जायगी और उसमें मुनाफ़ा भी है। इसके अतिरिक्त इस सौदे से अपने आत्मीयो पर अहसान लादने का भी गौरव प्राप्त होता था। जिनका अयोग्य दामाद ट्रेज़रर के पद से वंचित हो गया था उन्होंने आत्मीयों के प्रति मधुसूदन के पक्षपात की बात का पता बड़ी खोज के बाद लगाया और यथास्थान उसे प्रचारित भी कर दिया। साथ ही इस ग़लत संदेह को एक कान से दूसरे कान में संचारित करने का भार भी उन्होंने लिया था कि कंपनी के सभी क्रय-विक्रय-संबंधी मामलों मे मधुसूदन चोरी-छिपे कमीशन लिया करता है। इस प्रकार

की निन्दा के प्रमाण अधिकांश लोग नहीं चाहते, क्योंकि उनके अपने भीतर का लोभ उनका अन्तरतम और प्रबलतम साक्षी होता है। लोगों की धारणा को बिगोड़ना एक कारण से बड़ा आसान था। वह कारण था मधुसूदन की असाधारण श्री-वृद्धि और उसके निर्दोष चरित्र की असहनीय ख्याति। मधुसूदन भी डूब-डूबकर पानी पिया करता है, इस बदनामी से उन लोलुपों को परम शांति मिल रही थी। इन लोगों का मन गहरे जल में डुबकियाँ लगाने की आकांक्षा में पण्डूक चिड़िया के समान था, पर पास में कोई जलाशय नहीं था।

मधुसूदन ने जायदाद के मालिक को पक्का वचन दिया था। क्षति की आशंका से अपनी बात के विरुद्ध चलने वाला आदमी वह नही था। इसीलिए उसने निश्चय किया कि वह स्वय उसे खरीद लेगा, और कंपनी को दिखा देगा कि न ख़रीदकर वे लोग ठगे गए।

वह देर से घर पहुँचा। अपने भाग्य के प्रति उसके मन में अंध-विश्वास उत्पन्न हो गया था। आज उसके मन मे यह आशंका उत्पन्न हुई कि उसका जीवन-यात्रा की गाड़ी को उसका भाग्य एक लाइन से दूसरी लाइन में ले जाना चाहता है। पहले ही धक्के से उसका हृदय धड़क उठा। मीटिंग से लौटने पर आफ़िस की आराम-कुर्सी पर बैठकर गुड़गुड़ी से निकलने वाले धुएँ को अपनी काले रंग की चिंताओं से कुण्डलायित करने लगा।

नवीन ने आकर ख़बर दी कि विप्रदास के घर से एक आदमी आया है—मिलने के लिए। मधुसूदन ने झिड़ककर कहा, "उससे कह दो कि वापस चला जाय। मुझे इस समय मिलने का अवकाश नही है।"

नवीन ने मधुसूदन के रंग-ढंग को देखकर समझ लिया कि मीटिंग में कोई दुर्घटना घटी है और भैया का मन इस समय दुर्बल है। दुर्बलता स्वभावतः अनुदार होती है। दुर्बल की आत्म-गरिमा क्षमाहीन निष्ठुरता का रूप धारण करती है। भैया का चोट खाया हुआ मन भाभी पर कडी चोट करना चाहेगा, इस संबंध में उसे तनिक भी संदेह नहीं था। उसने सोचा कि जैसे भी हो, इस चोट को बचाना ही होगा। इसके पहले उसके मन में जो द्विविधा थी वह एकदम दूर हो गई। कुछ देर तक इधर-उधर टहलने के बाद जब वह लौटकर उसी कमरे में आया तब उसने देखा कि उसके भैया पते वाला रजिस्टर खोलकर पन्ने उलट रहे है। नवीन को देखकर रूखे स्वर में मधुसूदन ने पूछा, "फिर किसलिए आए हो? अपने विप्रदास बाबू की ओर से वकालत करने आए हो शायद?"

नवीन बोला, "नही भैया, चिंता की बात नहीं है। उनका आदमी इस कदर

डाँट खाकर वापस चला गया है कि तुम अब यदि स्वयं भी उसे बुलाओ तो वह इस ओर कदम भी नहीं रखेगा ।"

यह बात मधुसूदन को अच्छी नहीं लगी । बोला, "छोटी उँगली के इशारे पर पाँव पर गिड़गिड़ाना पड़ेगा । आदमी आया था किसलिए ?"

"तुम्हे यह सूचना देने कि विप्रदास बाबू का कलकत्ता आना दो दिन के लिए रुक गया । शरीर कुछ और स्वस्थ हो जाने पर आयँगे।"

"अच्छा, अच्छा, उसके लिए कोई जल्दी नही है ।"

नवीन बोला, "कल सुबह दो-एक घंटे के लिए छुट्टी चाहता हूँ ।"

"क्यों ?"

"सुनकर तुम नाराज़ होगे ।"

"न सुनने पर और नाराज हूँगा ।"

"कुंभकोणम से एक ज्योतिषी आए है। उनसे तनिक भाग्य-परीक्षा करवाना चाहता हूँ ।"

मधुसूदन का हृदय धडक उठा । इच्छा हुई कि तुरंत दौड़कर उसके पास पहुँचे। बाहर से डाँट के स्वर में बोला, "तुम क्या इन बातों पर विश्वास करते हो ?"

"साधारण अवस्था में नही करता, किसी बात की आशंका होने पर करता हूँ ।"

"आशंका किस बात की ?"

नवीन कोई उत्तर न देकर सिर खुजाने लगा ।

"किस का डर है, बताते क्यों नहीं ?"

"इस संसार में तुम्हें छोडकर मैं और किसी से नहीं डरता । कुछ दिनो मे तुम्हारे रंग-ढंग को देखकर चित्त स्थिर नहीं हो पा रहा है ।"

परिवार के लोग मधुसूदन से बाघ की तरह डरते हैं, इस बात से उसे बड़ा सुख मिलता है । नवीन के मुँह की ओर देखकर बिना कुछ बोले वह गंभीर भाव से हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ अपने बड़प्पन का अनुभव करने लगा ।

नवीन बोला, "इसीलिए एक बार स्पष्ट रूप से यह बात जान लेना चाहता हूँ कि मुझ पर ग्रहों की दृष्टि कैसी है और वे कब छुट्टी देंगे ।"

"तुम्हारे समान नास्तिक, जो किसी भी बात पर विश्वास नही करते, अन्त में—"

"यदि देवता पर विश्वास होता तो ग्रहों पर मेरा विश्वास न होता, भैया !

जो व्यक्ति डॉक्टर पर विश्वास नही करता उसे नीम-हकीम को मानने मे कोई आपत्ति नही होती ।"

अपने ग्रहों की परीक्षा के लिए मधुसूदन के मन में जितना ही अधिक आग्रह था उतने ही तीखे स्वर में वह बोला, "इतना सब पढ़ चुकने के बाद तुम्हारी यह बुद्धि है ? जो जैसा कहे उसी पर विश्वास कर लेते हो ?"

"उस ज्योतिषी के पास भृगु-सहिता है—जहाँ कही भी कोई आदमी पैदा हुआ हो या पैदा होने वाला हो, सबकी कुडलियाँ उसमे एकदम तैयार मिलेंगी । वे संस्कृत भाषा मे लिखी हुई है । इस पर तो अविश्वास नही किया जा सकता ! तत्काल परीक्षा करके देख न लिया जाय !"

"जो लोग मूर्खों को ठगकर रोजी चलाते है विधाता ने उनका पेट भरने के लिए तुम्हारे समान मूर्खों की भी सृष्टि कर रखी है ।"

"और उन मूर्खों को जिलाने के लिए तुम्हारे समान बुद्धिमानों की भी सृष्टि की है । जो मारता है उसके ऊपर उनकी जैसी दया रहती है वैसी ही दया वह उस पर भी करते है जिस पर मार पडनी है । भृगु-संहिता पर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से परीक्षा करके देखो न !"

"अच्छी बात है, कल सबेरे मुझे ले चलना ! तुम्हारे कुभकोणम के ज्योतिषी की चालाकी देखूँगा ।"

"भैया, तुम्हारा जैसा अविश्वास है उसे देखकर डर लगता है कि उससे कहीं गणना में भूल न हो जाय । संसार मे प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य पर विश्वास करने से मनुष्य विश्वासी हो उठता है । ग्रहों के संबंध में भी यही बात लागू होती है । यही देखो न, अँगरेज़ लोग ग्रहों पर विश्वास नही करते, इसीलिए उन पर ग्रहो का कोई प्रभाव नही पड़ता । उस दिन तुम्हारा छोटा साहब अशुभ मुहूर्त में बाहर निकलने पर भी घुड़दौड़ मे बाजी जीतकर चला आया । यदि मैं इसकी जगह होता तो बाजी जीतना तो दूर की बात, घोड़ा छूटकर मेरे पेट पर लात मार जाता । इसलिए भैया, इन सब ग्रह-नक्षत्रो के हिसाब पर अपनी बुद्धि न दौड़ाना, तनिक मन में विश्वास रखना ।"

मधुसूदन प्रसन्न होकर, मंद-मद मुस्काता हुआ हुक्का गुड़गुड़ाने लगा ।

दूसरे दिन सबेरे सात बजे मधुसूदन नवीन के साथ एक तग गली की गंदगी के बीच से होकर वेंकट शास्त्री के घर जा पहुँचा । पहले ही खंड में धुँधलके-से भरा कमरा था । लोना लग जाने से दीवारे जर्जर हो गई थीं; लगता था जैसे घातक चर्म-रोग से वे क्षत-विक्षत हो चली है । तख्त पर एक फटी-पुरानी सत-रंगी दरी बिछी हुई थी । एक किनारे कुछ पोथियाँ अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थी ।

दीवार पर शिव-पार्वती का एक पट-चित्र टँगा हुआ था। नवीन ने पुकारा, "शास्त्री जी !" मैली छींट का एक चदरा लपेटे, साँवले रंग और नाटे क़द का एक चोटी वाला व्यक्ति कमरे में चला आया। उसके सिर पर के सामने के बाल सफ़ाचट थे। नवीन ने बड़े क़ायदे से उसे प्रणाम किया। उसका चेहरा देखकर मधुसूदन के मन में तनिक भी भक्ति नहीं जगी—पर यह सोचकर कि दैव के साथ दैवज्ञ की घनिष्ठता किसी-न-किसी रूप में रहती ही है, उसने संक्षिप्त रूप से अभिवादन किया।

नवीन ने जब मधुसूदन की कुंडली ज्योतिषी के सामने रखी तब उसकी उपेक्षा करके शास्त्री ने मधुसूदन का हाथ देखना चाहा। काठ के बक्स से काग़ज़-क़लम निकालकर उसने एक चक्र बनाया। मधुसूदन के मुँह की ओर देखकर बोला, "पंचम वर्ग।" मधुसूदन कुछ नहीं समझा। ज्योतिषी उँगलियों के पोर गिनता हुआ बोलता गया, "कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग।" इससे भी मधुसूदन की बुद्धि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ा। ज्योतिषी ने फिर मंत्र की तरह रटना शुरू किया, "प—फ—ब—भ—म।" इससे मधुसूदन ने केवल इतना ही समझा कि भृगु मुनि ने व्याकरण के प्रथम अध्याय से ही अपनी संहिता आरंभ की है। इतने में वेंकट शास्त्री बोल उठा, "पंचाक्षरकम्।"

नवीन ने चकित भाव से मधुसूदन के कान में फुसफुसाते हुए कहा, "मैं समझ गया हूँ, भैया !"

"क्या समझे ?"

"पंचम वर्ण का पाँचवाँ वर्ण है 'म', और उसके बाद पंच अक्षर हैं म—धु—सू—द—न। जन्म-ग्रह की अद्भुत कृपा से तीन पाँच एक जगह आ मिले हैं।"

मधुसूदन चकित हो गया। पिता-माता द्वारा नाम रखे जाने के कई हज़ार वर्ष पहले ही उसका नामकरण भृगु मुनि की पोथी में आ चुका था। नक्षत्रों की यह कैसी लीला है ! उसके बाद वह स्तंभित होकर संस्कृत भाषा में लिखित अपने जीवन का पूर्व इतिहास सुनता रहा। भाषा जितना ही कम समझ पाता था उसकी भक्ति उसी परिमाण में बढ़ती चली जाती थी। उसे लगा कि उसका जीवन आदि से अन्त तक मूर्तिमान ऋषि-वाक्य है। अपनी छाती पर हाथ फेरकर उसने अनुभव किया कि उसका शरीर अनुस्वार—विसर्ग—तद्धित—प्रत्यय के मसाले से तैयार की गई, किसी एक तपोवन में लिखी गई पोथी के समान है। उसके बाद ज्योतिषी ने अंतिम बात यह बताई कि मधुसूदन के घर में एक दिन लक्ष्मी का आविर्भाव होगा, इस अपूर्व सौभाग्य के लक्षण उसके

घर में पहले ही प्रकट हो चुके है, क्योंकि कुछ ही दिन पहले उसके यहाँ नव-वधू के रूप में लक्ष्मी का आगमन हो चुका है। अब से उसे सावधान रहना चाहिए, क्योंकि नव-वधू रूपी लक्ष्मी यदि कुपित हो जायँगी तो उसका भाग्य भी कुपित हो जायगा।

वेंकट शास्त्री ने कहा कि कोप के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। जातक यदि अब भी सतर्क नही होगा तो उसकी विपत्ति बढती चली जायगी। मधुसूदन सुनकर चकित होकर बैठा रहा। उसे याद आई ठीक विवाह के दिन ही बहुत लाभ की बात। और उसके कुछ ही दिन बाद आज उसकी यह पराजय हुई है। लक्ष्मी स्वयं आई, यह तो बडे सौभाग्य की बात हुई, पर उसका अपना दायित्व भी तो कुछ कम कठिन नही है।

लौटते समय मधुसूदन गाडी पर स्तब्ध होकर बैठा रहा। सहसा नवीन बोल उठा, "इस वेंकट शास्त्री की बात पर मैं तनिक भी विश्वास नहीं करता। निश्चय ही उसने किसी से तुम्हारे बारे में सभी बातें पहले ही से जान ली है।"

"बडे बुद्धिमान हो तुम ! जितने भी मनुष्य उसके यहाँ आते है वह उन सबकी बातों का पता पहले ही से लगाकर लिख रखता है न ! यह क्या इतनी आसान बात है ?"

"मनुष्यों के पैदा होने के पहले से ही उनकी करोड़ों कुंडलियाँ लिखकर रखने की अपेक्षा यह निश्चय ही आसान है। भृगु मुनि को इतना काग़ज ही कहाँ मिला होगा, और वेंकट शास्त्री के कमरे में उन सबको रखने की जगह ही कैसे निकल सकती है ?"

"वे लोग एक चिह्न से हज़ार बातें लिख लेने की क्षमता रखते थे।"

"असंभव।"

"जो बात तुम्हारी बुद्धि में नही आ पाती वही तुम्हें असंभव लगती है। बड़ी आई तुम्हारी 'साइंस' ! अब तुम अधिक बहस न करो। उस दिन उन लोगों के घर से जो सरकार आया था उसे तुम स्वयं जाकर बुला लाओ ! आज ही—अधिक देर नहीं करनी है।"

"भैया को ठगने में सफल होने के कारण नवीन अपने भीतर ग्लानि का अनुभव करने लगा। जाल इतना सरल था, और भैया पर उसकी सफलता इतनी हास्यजनक थी कि उसे स्वयं लज्जा और कष्ट का अनुभव होने लगा। भैया को समय-समय पर छोटी-छोटी बातो मे उसने बहुत ठगा था, पर कभी इस तरह की ग्लानि का अनुभव उसने नहीं किया था। पर आज इतने आडंबर

के साथ इतनी बड़ी धोखाधड़ी की बात सोचने पर उसका मन जैसे अपवित्र हो उठा।

४२

मधुसूदन के मन से एक बहुत बड़ा भार उतर गया था। वह था आत्म-गौरव का भार—जो कठोर गौरव-बोध उसकी विकासोन्मुख अनुरक्ति को पत्थर के भार से केवल दबाता ही चला जा रहा था। कुमुदिनी पर जब उसका मन मुग्ध हो चुका था तब भी उस विह्वलता के विरुद्ध उसके भीतर द्वन्द्व चलता रहता था। जितना ही वह विवश होकर कुमुदिनी के प्रति अपने को समर्पित करता हुआ पकड़ में आता जाता था उतना ही अज्ञात में कुमुदिनी के प्रति उसके भीतर क्रोध जमता चला जा रहा था। ऐसे समय जब नक्षत्रो से यह सूचना उसे मिली कि उसके घर में स्वयं लक्ष्मी आ पहुँची है और उन्हे हर तरह प्रसन्न रखना होगा, तब उसका सारा द्वन्द्व दूर हो गया और शरीर और मन रोमांचित हो उठे। वह बार-बार मन-ही-मन रटने लगा, 'लक्ष्मी! मेरे घर लक्ष्मी आई है! मेरे भाग्य का यह परम दान है।' उसका जी चाहने लगा कि उसी क्षण समस्त संकोच त्यागकर कुमुदिनी के प्रति अपनी स्तुति निवेदित कर दे और कहे, 'यदि मैंने कभी कोई भूल की हो तो अपराध क्षमा करना!' पर आज अब समय नही रह गया था; व्यवसाय में जो दरार पड़ गई थी उसे ठीक करने के लिए उसे तत्काल आफ़िस जाना था। घर मे भोजन करने तक का अवकाश उसे नही था।

इधर दिन-भर कुमुदिनी के मन में उथल-पुथल मची रही। वह जानती थी कि कल भैया आयँगे और उनका शरीर अस्वस्थ है। उनके साथ भेट हो सकेगी या नही यह जानने के लिए उसका मन बेचैन हो उठा था। नवीन न जाने कहाँ चला गया था, अभी तक लौटकर नही आया था। वह निश्चित रूप से यह जानता था कि आज मधुसूदन स्वयं आकर भाभी को हर तरह से प्रसन्न रखने का प्रयत्न करेगा। पहले ही से इस बात का कोई आभास देकर वह रस-भंग नहीं करना चाहता था।

आज छत पर बैठने की सुविधा नही थी। कल साँझ से ही बादल घिरे हुए थे, और आज दोपहर से झमाझम पानी बरसना आरंभ हो गया था। जाड़े

के दिनो की बदली अनचाहे अतिथि की तरह लगती थी। बादल में कोई रंग नही था, पानी में कोई सुर नही था, भीगी हवा का मन ही जैसे मर गया था, और सूर्य के प्रकाश से रहित आकाश के दैन्य से पृथ्वी जैसे संकोच से सिमटी हुई थी, सीढ़ी से ऊपर चढते ही सोने के कमरे में प्रवेश करने के रास्ते मे जो ढकी हुई छत थी वही पर कुमुदिनी फ़र्श पर बैठी हुई थी। रह-रहकर शरीर पर पानी की बूँदें छितराकर पड़ रही थी। आज के छाया-म्लान, नमी से भरे, रस-वैचित्र्य-हीन दिन में कुमुदिनी को लग रहा था जैसे उसके अपने जीवन ने उसे अजगर की तरह निगल लिया है और उस अजगर के चिपचिपे पेट की बद्धता के बीच में कहीं तनिक भी छिद्र नही है। जिस देवता ने उसे भुलाकर आज इस निरुपाय नैराश्य के बीच मे लाकर पटक दिया था, उसके प्रति उसके भीतर-ही-भीतर जो एक अभिमान की भावना धुँधुआ रही थी वह जैसे आज क्रोध की आग से जल उठी। सहसा वह उठ खडी हुई। डैस्क खोलकर उसने युगल-रूप का वही पट निकाला। वह रेशमी छीट से लपेटा हुआ था। आज वह उस पट को फाड़ डालना चाहती थी। चिल्लाकर जैसे कहना चाहती थी, 'मै अब तुम पर तनिक भी विश्वास नही कर सकती।' उसका हाथ काँप रहा था, इसलिए गाँठ खोलने में उसे कठिनाई हो रही थी। खींच-तान से गाँठ और जटिल हो उठी। अधीर होकर उसने दाँत से कपड़ा फाड़ डाला। चिर-परिचित मूर्ति जब अनावृत होकर सामने आई तब वह रह न सकी। उसे छाती से चिपकाकर रो पड़ी। काठ का फ्रेम जितना ही अधिक गड़ता था उतना ही अधिक वह उसे जकड़ती थी।

इतने में मुरली बैरा सोने के कमरे में बिस्तर ठीक करने आया। उसका हाथ जाड़े से काँप रहा था। वह एक पुराना मैला चदरा ओढ़े था। सिर उसका गंजा हो चला था, नसें फूली हुई थीं, गाल पिचके हुए थे, और कुछ दिनों से दाढ़ी न बनाने के कारण काले और सफेद बालों की मिश्रित खूँटियाँ उभरी हुई थीं। अभी कुछ ही दिन पहले वह मलेरिया से पड़ा हुआ था, इसलिए शरीर में रक्त का एकदम अभाव दिखाई देता था। डॉक्टर ने उसे सलाह दी थी कि काम छोड़कर उसे घर लौट जाना चाहिए। पर नियति की निष्ठुरता को कोई क्या करे।

कुमुदिनी ने पूछा, "मुरली, जाड़ा मालूम हो रहा है क्या ?"

"हाँ, माँ जी, बदली है न, इसलिए सर्दी पड़ रही है।"

"तुम्हारे पास क्या गरम कपड़ा नही है ?"

"महाराज ने खिताब पाने के दिन दिया था, पर मेरे नाती को खाँसी की

बीमारी हो गई, इसलिए डॉक्टर के कहने पर वह कपड़ा मैंने उसे दे दिया।"

कुमुदिनी बगल वाले कमरे की अलमारी से एक पुराना सलेटी रंग का अलवान निकाल लाई और बोली, "यह लो, यह मैंने तुम्हे दे दिया।"

मुरली सिर झुकाकर बोला, "माफ करो माँ जी, महाराज नाराज होंगे।"

कुमुदिनी को याद आ गया कि इस घर मे दया करने का रास्ता बहुत तंग है। पर उसे तो अपने लिए भी देवता की दया की आवश्यकता है। उसका रास्ता है पुण्यकर्म। क्षोभ के साथ उसने अलवान जमीन पर फेक दिया।

मुरली ने हाथ जोडते हुए कहा, "रानी माँ, तुम लक्ष्मी हो, इसलिए नाराज मत होओ! मुझे गरम कपडे की कोई जरूरत नही रहती। मै हुक्काबरदार के कमरे मे रहता हूँ, वहाँ बरोसी में टिकियाँ और कंडे जलते रहते है, इसलिए कमरा गरम रहता है।"

कुमुदिनी बोली, "मुरली, नवीन बाबू यदि घर लौट आए हों तो उन्हें बुला देना!"

नवीन ज्यो ही कमरे में आया त्यों ही कुमुदिनी बोल उठी, "लाला, तुम्हें एक काम करना ही होगा। बोलो करोगे?"

"यदि उस काम से मेरा अनिष्ट होता हो तो मै अभी उसे कर डालूँगा, पर यदि तुम्हारा अनिष्ट होने की संभावना हो तो मै कभी नहीं करूँगा।"

"मेरा अब और क्या अनिष्ट होगा? मै किसी अनिष्ट से नहीं घबराती।" यह कहकर अपने हाथ से सोने के मोटे कंगनों को उतारकर बोली, "मेरे यह कंगन बेचकर भैया के लिए स्वस्ति-वाचन कराना होगा।"

"इसकी कोई आवश्यकता नही पडेगी, भाभी! तुम्हारे मन मे उनके प्रति जो भक्ति है उसीके पुण्य से हर घड़ी उनके लिए स्वस्ति-वाचन हो रहा है।"

"लाला, भैया के लिए मै अब और कुछ नही कर पाऊँगी। यदि हो सकेगा तो देवता के द्वार पर उनके लिए सेवा पहुँचा दूँगी।"

"तुम्हें कुछ नही करना होगा, भाभी! हम सेवक लोग है किस लिए?"

"तुम लोग क्या कर सकते हो, बताओ?"

"हम लोग पापी हैं, पाप कर सकते है। पाप करके भी यदि तुम्हारे किसी काम आ सकें तो अपने को धन्य समझेंगे।"

"लाला, इस बात को लेकर ठठोली न करो!"

"तनिक भी ठठोली नहीं कर रहा हूँ, भाभी! पुण्य करने की अपेक्षा पाप करना बड़ा कठिन काम है। देवता यदि यह बात समझ जायें तो पुरस्कार देंगे।"

नवीन की बातो के ढंग से देवता के प्रति उपेक्षा की कल्पना करके कुमुदिनी के मन को स्वभावतः चोट लग सकती थी; पर उसके भैया भी तो देवता के प्रति श्रद्धा नहीं रखते, इसलिए इस अभक्ति से वह नाराज नही हो पाती थी। छोटे बच्चे के नटखटपन के प्रति भी जिस प्रकार माता का सकौतुक स्नेह उमड़ उठता है, इस प्रकार के अपराध के प्रति कुमुदिनी के मन मे वैसा ही भाव जगता था।

एक मुरझाई हुई मुस्कान के साथ कुमुदिनी बोली, "लाला, तुम लोग संसार में अपने जोर से काम कर सकते हो; पर हम लोगो को अपना जोर लगाने की भी सुविधा नही है। जिनसे हम स्नेह करती है यदि उनकी भीतरी बातो तक हमारी पहुँच ही न हो तो उनका काम हम क्या कर सकती है? दिन नही कट पाता, कही रास्ता खोज नही पाती। हम लोगों पर दया करने वाला क्या कही कोई नही है?"

नवीन की आँखों से पानी बह निकला।

"भैया के लिए मुझे कुछ करना ही होगा लाला! कुछ देना ही होगा। यह कंगन मेरी माँ का है, मै माँ की ही ओर से यह कंगन अपने देवता को दूँगी।"

"देवता के हाथ में रखने की आवश्यकता नहीं होती भाभी, उन्होंने सहज ही उसे ग्रहण कर लिया है। दो दिन ठहर जाओ, यदि तब भी तुम्हें ऐसा लगे कि वह प्रसन्न नही हुए तो जैसा कहोगी वैसा करूँगा। जो देवता तुम पर दया नहीं करते उन्हे भी भोग लगा आऊँगा।"

रात का अँधेरा चारों ओर छा गया—बाहर सीढ़ी पर जूतों का वही परिचित शब्द सुनाई दिया। नवीन चौक उठा। समझ गया कि भैया आ रहे हैं। पर भगा नहीं, और साहस के साथ भैया की प्रतीक्षा करने लगा। इधर कुमुदिनी का मन पल में अत्यन्त संकुचित हो उठा। इस अदृश्य विरोध के धक्के ने जब उसकी नस-नस को प्रबल धक्के से झकझोर दिया तब उसे बड़ा भय मालूम होने लगा। इस पाप ने क्यों उसे इस तरह कसकर जकड़ लिया है?

सहसा उसने नवीन से पूछा, "लाला, किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हो जो मुझे गुरु की तरह उपदेश दे सकें?"

"क्या होगा, भाभी?"

"अपने मन के साथ अब अधिक जूझ नहीं पाती।"

"यह तुम्हारे मन का दोष नहीं है।"

"विपत्ति बाहर की होती है, पर दोष मन का होता है, यह बात मैने भैया से बार-बार सुनी है।"

"तुम्हारे भैया ही तुम्हे उपदेश देगे, घबराओ मत !"

"ऐसा दिन अब मेरे लिए नहीं आयगा।"

मधुसूदन की सांसारिक बुद्धि के साथ उसके प्रेम का समझौता हो जाने पर वह प्रेम उसके सभी काम-काजों के ऊपर से होकर बहने लगा था। कुमुदिनी का सुन्दर मुख उसके भाग्य का अभय वरदान था। पराभव मिट जायगा उसका आभास उसने आज ही पाया था। कल जिन लोगों ने उसके विरोध में मत दिया था आज उन्हींमें से कुछ व्यक्तियों ने बदले हुए लहजे में उसके पास पत्र भेजे थे। जिस संपत्ति को अपने नाम लिख लेने का प्रस्ताव मधुसूदन ने किया था, उसके संबंध में किसी-किसी के मन में यह बात उठी कि कहीं हम ठगे तो नही गए। किसी-किसी ने यह मत भी प्रकट किया कि बात पर और एक बार विचार कर लेना चाहिए।

अनुपस्थिति के अपराध मे आफ़िस के दरबान का आधे महीने का वेतन कट गया था। आज टिफिन के समय ज्यो ही उसने मधुसूदन के पाँव पकड़े त्यों ही उसे क्षमा कर दिया गया। क्षमा करने का अर्थ था अपनी जेब से क्षति-पूर्ति। खाते मे जुर्माना ज्यों-का-त्यो बना रहा। क्योंकि मधुसूदन के नियम में व्यतिक्रम नहीं हो सकता था।

आज का दिन मधुसूदन के लिए बडे ही आश्चर्य का दिन था। बाहर आसमान में बादल छाए हुए थे। रिमझिम पानी बरस रहा था, किंतु इससे उसके मन का आनन्द और अधिक बढ़ उठा। आफ़िस से लौटने पर रात में भोजन के पूर्व तक वह बाहर के कमरे में ही रहता था। ब्याह हो जाने के बाद असमय मे अतःपुर जाने के लिए वह लोगों की दृष्टि बचाकर चलता था। पर आज वह जान-बूझकर अपने पाँवो की आवाज से सबको यह जताता हुआ चल रहा था कि वह कुमुदिनी से मिलने के लिए जा रहा है। आज वह समझ गया था कि उसका सौभाग्य कितना बड़ा है। सारी पृथ्वी के लोग उसके इस भाग्य पर ईर्ष्या कर सकते है।

कुछ देर के लिए पानी थम गया था। तब सभी कमरों में रोशनी नही जली थी। आन्दी बुढ़िया धूपदानी हाथ में लेकर सभी कमरों मे धूप की गंध महका रही थी। एक चमगादड सहन के ऊपर वाले आकाश से अंतःपुर के लालटेन जले हुए गलियारे तक बार-बार एक ही चक्र में घूम रहा था। नौकरानियाँ बरामदे में पाँव पसारकर जाँघ के ऊपर रुई की बत्तियाँ बाट रही थीं। मधुसूदन को देखकर वे घूँघट निकालकर तुरन्त भगीं। पाँवों की आहट सुनकर श्यामासुन्दरी अपने कमरे से बाहर निकल आई। उसके हाथ मे एक

का डिब्बा था। मधुसूदन के आफ़िस से लौटने पर वह नियमित रूप से उसके लिए बाहर के कमरे में पान भेज दिया करती थी। सभी जानते थे कि मधुसूदन की रुचि के ठीक अनुकूल पान केवल श्यामासुन्दरी ही बना पाती है। इस 'जानने' के भीतर 'कुछ और' जानने का भी संकेत निहित रहता था। उसी बल पर श्यामा ने मधुसूदन के सामने डिब्बा खोलकर कहा, "लाला, पान तैयार है, लेते जाओ!" यदि और कोई दिन होता तो इस उपलक्ष्य में दो-एक बाते हो गई होती और उन बातो में रस-रंग का पुट भी काफ़ी रहता। पर आज न जाने क्या बात हो गई थी, कही श्यामा की छाया भी उसे छू न जाय, इस आशंका से मधुसूदन बचकर तेज़ पगो से निकल गया। श्यामा की दो बड़ी-बड़ी आँखे अभिमान से जल उठी, और उसके बाद आँसुओं की बडी-बड़ी बूँदों ने जैसे सब-कुछ बहा दिया। अन्तर्यामी जानते थे कि श्यामा मधुसूदन को चाहती थी।

मधुसूदन ज्यों ही कमरे मे पहुँचा त्यो ही नवीन कुमुदिनी के पाँव छूकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "गुरु की बात मै याद रखूँगा—कही खोजकर देखूँगा।" भैया से बोला, "भाभी गुरु से शास्त्रोपदेश सुनना चाहती है। हमारे गुरुजी हैं, पर—"

मधुसूदन उत्तेजित हो उठा। बोला, "शास्त्रोपदेश? अच्छा वह मै देख लूँगा, तुम्हें कुछ करना नहीं होगा।"

नवीन चला गया।

मधुसूदन रास्ते-भर मन-ही-मन यह वाक्य रटता हुआ आ रहा था, 'बड़ी बहू, तुम्हारे आने से मेरे घर मे उजाला हो गया है।' इस तरह की भावपूर्ण बात कहने का आदी वह नही था, इसीलिए उसने मन-ही-मन निश्चय किया था कि कमरे में पहुँचते ही पहले ही आवेश मे बिना दुविधा के वह यह बात कह डालेगा। पर नवीन को देखते ही वह बात उसके गले मे अटककर रह गई। उसके बाद ही आया शास्त्रोपदेश का प्रसंग, जिससे उसका मुँह एकदम बन्द होकर रह गया। उसके भीतर इतनी देर से जो आयोजन चल रहा था, वह इस तनिक-सी बाधा से चौपट हो गया। उसके बाद ही उसे कुमुदिनी के चेहरे पर एक भय का-सा भाव दिखाई दिया—उसके शरीर और मन का संकोच उसके आगे स्पष्ट प्रकट हो गया। और कोई दिन होता तो यह बात उसकी दृष्टि में न आ पाती। पर आज उसके भीतर जो एक प्रकाश जल उठा था उससे उसकी देखने की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। कुमुदिनी के संबंध में उसके अन्तर का स्पर्श-बोध आज अत्यन्त सूक्ष्म हो उठा था। आज के दिन भी कुमुदिनी के मन का यह विमुख-भाव उसे निष्ठुर अन्याय की तरह लगा। फिर भी मन-

ही-मन उसने निश्चय किया कि वह विचलित नही होगा। पर जो बात सहज ही हो सकती थी वह अब सहज नहीं रही।

तनिक मौन रहने के बाद मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू, तुम क्या जा रही हो ? कुछ देर ठहरोगी नही ?"

मधुसूदन की बात सुनकर और उसके बोलने का ढंग देखकर कुमुदिनी को आश्चर्य हुआ। बोली, "नही, मै क्यों जाऊँगी ?"

"तुम्हारे लिए एक चीज लाया हूँ, तनिक खोलकर देखो !" यह कहकर उसने कुमुदिनी के हाथ मे एक छोटी-सी डिबिया थमा दी। डिबिया खोलकर कुमुदिनी ने देखा, भैया की दी हुई वही नीलम वाली अँगूठी थी वह। उसका हृदय धड़क उठा। वह सोच नहीं पाई कि क्या करे ?

"यह अँगूठी मैं पहना दूँ ?"

कुमुदिनी ने हाथ आगे बढ़ा दिया। मधुसूदन उसका हाथ अपनी गोद में रखकर धीरे-धीरे पहनाने लगा। जान-बूझकर वह देर कर रहा था। जब पहना चुका तब हाथ को ऊपर उठाकर उसने उसे चूमा। बोला, "तुम्हारे हाथ की अँगूठी खोलकर मैने भूल की थी। तुम्हारे इस हाथ मे कोई भी रत्न पहनाया जाय वह निर्दोष सिद्ध होगा।"

कुमुदिनी को यदि मधुसूदन मारता तो उसे इससे कम ही आश्चर्य होता। कुमुदिनी के मुख पर बच्चों का-सा विस्मित भाव देखकर मधुसूदन प्रसन्न हो रहा था। वह साधारण दान नहीं था, यह बात कुमुदिनी के मुख के भाव से स्पष्ट हो उठी थी। पर मधुसूदन ने और भी कोई बात उसके लिए रख छोड़ी थी, जिसे उसने बाद मे प्रकट किया। बोला, "तुम्हारे घर का कालू मुखर्जी आया हुआ है, उससे क्या मिलना चाहोगी ?"

कुमुदिनी का चेहरा खिल उठा। बोली, "कालू भैया ?"

"उसे अभी बुलाए देता हूँ। तुम दोनों बातें करना, तब तक मै खाना खाकर आता हूँ।"

कृतज्ञता से कुमुदिनी की आँखे भर आईं।

४३

चटर्जी-वंश के जमीदारो के साथ कालू का परम्परागत संबंध था। सभी विश्वास के काम उसीके द्वारा सम्पन्न होते थे। उसका कोई-एक पूर्वज चटर्जी लोगों की खातिर जेल गया था। आज कालू विप्रदास की ओर से सूद की एक किश्त देकर रसीद लेने के लिए मधुसूदन के दफ़्तर में आया था। वह ठिगने कद का था। रंग उसका गोरा था, चेहरा भरा-पुरा था, आँखे भूरी और बड़ी-बड़ी थी और मोटी भौंहों के अधपके बालों से घिरी थी, मूँछों के बाल पक गए थे, पर सिर के बाल अभी काले ही थे। वह बड़े जतन से चुनी हुई शांतिपुरी धोती पहने था और अपने मालिक की मर्यादा-रक्षा के उपयुक्त पुराना कीमती चदरा ओढे था। वह उँगुली में एक अँगूठी पहने था, जिसका नग कुछ कम कीमती नही था।

कालू जब कमरे में आया तब कुमुदिनी ने उसे प्रणाम किया। दोनों कालीन के ऊपर बैठ गए। कालू बोला, "बिटिया, तुम्हे यहाँ आये अभी कुछ ही दिन तो हुए हैं, पर लगता है जैसे तुम्हें बरसो से नही देखा।"

"पहले यह तो बताओ कि भैया कैसे हैं ?"

"बड़े बाबू के लिए बड़ी चिन्ता रही इधर। तुम जिस दिन चली आई उसके दूसरे दिन बड़ी ज्यादती हुई थी। पर उनका शरीर बडा मज़बूत है, इसलिए जल्दी ही सम्हल गए। डॉक्टरों को बड़ा आश्चर्य हुआ।"

"भैया क्या कल यहाँ आ रहे है ?"

"यही तय हुआ था। पर अभी दो-एक दिन और लगेंगे। पूर्णिमा पड़ रही है। सभीने उन्हे मना किया—कही फिर ज्वर न धर दबाये। पर यह तो बताओ कि तुम कैसी हो ?"

"मैं अच्छी ही हूँ।"

कालू कुछ बोला नहीं, पर सोचने लगा कि कुमुदिनी के मुख का वह लावण्य कहाँ चला गया ? उसकी आँखों के नीचे काली रेखाएँ क्यों पड़ गई हैं ? उसका ऐसा सुन्दर चिकना रंग इस क़दर फीका क्यों पड़ गया ? कुमुदिनी के मन में भी एक प्रश्न उठ रहा था, जिसे वह स्पष्ट कह नहीं पा रही थी, "भैया ने क्या मेरे लिए कोई संदेश नहीं भेजा ?' उसके उस अव्यक्त प्रश्न के ही उत्तर मे जैसे कालू अपने-आप बोल उठा, "बड़े बाबू ने मेरी मार्फ़त तुम्हारे लिए एक चीज़ भेजी है।"

अधीर होकर कुमुदिनी बोल उठी, "क्या भेजा है ? कहाँ है वह चीज ?"

"उसे मैं बाहर रख आया हूँ ।"

"यहाँ क्यों नही ले आए ?"

"घबराओ मत, महाराजा बोले कि वह स्वयं उसे लेकर आयँगे ।"

"क्या चीज़ है वह, पहले बताओ मुझे !"

"उन्होंने मुझे बताने को मना किया है ।" उसके बाद कमरे के चारों ओर देखकर कालू ने कहा, "देखता हूँ यहाँ तुम्हे बडे लाड-प्यार से रखा है । मै जाकर बडे बाबू को बताऊँगा । सुनकर उन्हें बड़ी खुशी होगी । पहले दो दिन तुम्हारा कुशल-समाचार मिलने मे देर होने से वह बहुत छटपटाए थे । डाक का कुछ गड़बड़ी थी । अन्त मे तीन चिट्ठियाँ उन्हे एक साथ मिलीं ।"

डाक की गड़बड़ी होने का कारण क्या था, इसका अंदाज लगाने में कुमुदिनी को कठिनाई नहीं हुई ।

कुमुदिनी कालू भैया से खाने के लिए कहना चाहती थी, पर साहस नही हो रहा था । तनिक संकोच के साथ उसने पूछा, "कालू भैया, क्या अभी तक तुमने खाना नहीं खाया ?"

"नहीं, बिटिया, कलकत्ता मे शाम का खाना मुझे माफिक नहीं जाता । इसीलिए अपने रामदास कविराज से कुछ मकरध्वज लेकर खा रहा हूँ । पर कुछ लाभ नही हुआ ।"

कालू समझ गया था, अभी कुमुदिनी घर की नई बहू है, अभी उसके हाथ मे अधिकार नहीं आया है, मुँह खोलकर खाने की बात कह नही पायगी, केवल कष्ट ही पायगी ।

तभी मोती की माँ दरवाजे की ओट से हाथ से इशारा करके कुमुदिनी को अपने पास बुलाकर बोली, "तुम्हारे यहाँ से मुखर्जी साहब आए है, उनके लिए खाना तैयार है । नीचे के कमरे मे उन्हे ले आओ, वहीं खिलाओगी ।"

कुमुदिनी ने लौटकर कालू से कहा, "कालू भैया, अपने कविराज की बात रहने दो । तुम यहाँ से खाना खाकर ही जाओगे ।"

"यह कैसे हो सकता है ! यह तो तुम्हारा अत्याचार है ! आज रहने दो । फिर किसी दिन देखी जायगी ।"

"नही, ऐसा नही हो सकता, चलो !"

अंत में पता चला कि मकरध्वज ने बड़ा लाभ किया है, भूख में तनिक भी कमी नहीं पाई गई ।

कालू भया जब खा चुके तब कुमुदिनी अपने सोने के कमरे मे चली गई ।

आज उसका मन मायके की स्मृतियों से भरा हुआ था। नूरनगर के अंतःपुर वाले बाग के आमों पर बौर आ गया होगा। तालाब के किनारे फूलों से लदे अमरूद के पेड के नीचे वाले पक्के फर्श पर कितनी ही एकांत दुपहरियाँ कुमुदिनी ने हाथ के ऊपर सिर रखकर बालों को बिखराकर लेटे-लेटे बिताई थीं। क्या दुपहरियाँ थीं वे—भौरों के गुंजन से मुखरित धूप-छाँह से गड़ी हुई! रह-रहकर उसके भीतर एक मीठी टीस उठा करती थी, जिसका अर्थ उसकी समझ मे नहीं आता था। उसी मीठी टीस के कारण साँझ को ब्रज के पथ में विचरने वाली गायो के खुरो की धूल से उसके स्वप्न रंगीन हो उठते थे। वह तब समझ नहीं पाई थी कि उसके यौवन के अप्राप्त साथी ने जल में, स्थल में अपनी माया बिखेर दी है, उसके युगल-रूप की उपासना में वही आँख-मिचौनी खेलता रहा है, इसराज में मुलतानी की धुन बजाते समय वह अपने चित्त की अलक्ष्य पुरी में उसीको खीचकर अपने पास बुलाती रही है। उसके प्रथम यौवन के उस अनागत की उपस्थिति का आभास वह अपने घर के न जाने कितने स्थानों में पाती रहती थी। उसे अपने यहाँ के छत वाले कमरे की याद आई जहाँ से गाँव के टेढे-मेढे रास्ते के किनारे फूल की आग से जलता हुआ-सा सरसों का खेत दिखाई देता था। पिछवाड़े की दीवाल से सटे उस चबूतरे की याद आई जहाँ बैठकर वह उस पुरानी दीवाल पर हरे-काले रंगों से बनी रेखाओं में न जाने किस पुरानी कहानी के अस्पष्ट चित्रों को अंकित पाती थी। अपने दूसरे खंड के सोने के कमरे की खिड़की से सबेरे सोकर उठते ही वह दूर रंगीन आकाश की ओर सफेद पालों को देखती थी जो क्षितिज के ऊपर मन की निरुद्देश्य कामनाओं की तरह तैरते रहते थे। प्रथम यौवन की वही मरीचिका उसके साथ-साथ कलकत्ता मे आकर उसकी पूजा और उसके गीतों में घुल-मिल गई थी। वह मरीचिका ही तो दैव-वाणी का रूप धारण करके उसे अंधभाव से इस विवाह की फाँस के बीच में खींच लाई थी! और स्वयं वह तेज चमचमाती हुई धूप मे न जाने कहाँ विलीन हो गई थी।

इस बीच मधुसूदन न जाने कब से पीछे खड़ा था और दीवार पर टँगे शीशे पर पड़ी कुमुदिनी के मुख की परछाँही की ओर एकटक देख रहा था। वह समझ गया था कि कुमुदिनी का मन जहाँ खो गया है, उस अदृश्य और अज्ञात के साथ प्रतियोगिता किसी प्रकार भी नहीं चल पायगी। और कोई दिन होता तो उसे कुमुदिनी का वह अनमना भाव देखकर क्रोध आता। पर आज वह मौन विषाद के साथ कुमुदिनी की बग़ल में आकर बैठ गया। बोला, "बड़ी बहू, क्या सोच रही हो?"

कुमुदिनी चौंक उठी। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। मधुसूदन उसका हाथ पकड़कर धीरे-से हिलाता हुआ बोला, "तुम क्या किसी भी उपाय से मेरी पकड़ में नहीं आओगी ?"

इस बात का कोई उत्तर कुमुदिनी को नही सूझा। वह क्यों पकड में नही आ पाती, यह प्रश्न वह स्वयं भी अपने से किया करती थी। जब मधुसूदन का व्यवहार उसके प्रति कठोर था तब उत्तर सहज था, पर जब वह विनम्र हो उठता था तब कुमुदिनी अपनी निन्दा करने के अतिरिक्त और कोई उत्तर खोज नहीं पाती थी। पति को अपना मन और प्राण समर्पित न कर पाना महापाप है। उसके मन में तनिक भी सन्देह नहीं था, फिर भी उसकी ऐसी मनोदशा कैसे हुई ? स्त्रियों का एक-मात्र लक्ष्य सती-सावित्री बनना है। उस लक्ष्य से भ्रष्ट होने की चरम दुर्गति से वह अपने को बचाना चाहती थी। इसीलिए आज वह व्याकुल हो उठी और मधुसूदन से बोली, "मुझ पर दया करो !"

"किस बात के लिए तुम पर दया करूँ ?"

"मुझे अपना बना लो—आज्ञा दो, दंड दो ! मुझे लगता है कि मै तुम्हारे योग्य नही हूँ।"

सुनकर बड़े दुःख में भी मधुसूदन को हँसी आई। कुमुदिनी सती का कर्तव्य पूरा करना चाहती है। वह यदि साधारण गृहिणी-मात्र होती तो इतना ही यथेष्ट होता, पर वह तो मधुसूदन के लिए मंत्र पढकर लाई गई पत्नी की अपेक्षा बहुत अधिक थी। उस 'अधिक' को पाने के लिए वह जितना ही दाम बढाता जाता था सब व्यर्थ सिद्ध हो रहा था। केवल अपनी ही हीनता सामने आ रही थी। कुमुदिनी के साथ अपनी दुर्लंघ्य विषमता देखकर उसकी विकलता बढ़ती चली जा रही थी।

लंबी साँस खींचते हुए मधुसूदन ने कहा, "यदि एक चीज तुम्हे दूँ तो तुम मुझे क्या दोगी, बोलो !"

कुमुदिनी समझ गई कि भैया की दी हुई चीज है। वह व्यग्र भाव से मधुसूदन की ओर देखती रही।

"जैसी चीज है वैसा ही दाम लूँगा मैं", कहकर पलंग के नीचे से उसने रेशम के खोल के भीतर से एक इसराज बाहर निकाला, और उसका ढकना भी खोलकर रख दिया। कुमुदिनी ने देखा, उसका वही चिर-परिचित इसराज था—हाथी के दाँत से बना हुआ। घर से चले आने पर वह उसे वहीं छोड़ आई थी।

मधुसूदन बोला, "अब तो खुश हो न ? लाओ तब दाम दो !"

कुमुदिनी समझ नही पाई कि मधुसूदन क्या दाम चाहता है, मधुसूदन बोला, "इसे बजाकर सुनाओ मुझे !"

यह वैसे कोई बड़ी बात नहीं थी, फिर भी यह माँग बडी टेढ़ी थी। कुमुदिनी इतना जान चुकी थी कि मधुसूदन के मन मे संगीत की रसज्ञता नही है, इसलिए उसके सामने बजाने का सकोच त्याग देना बहुत कठिन था। वह मुँह नीचे की ओर करके इसराज बजाने की······हिलाने-डुलाने लगी। मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू, बजाओ न ! मेरे सामने संकोच क्यो करती हो ?"

कुमुदिनी बोली, "सुर बँधा नहीं है।"

"तुम्हारे अपने ही मन का सुर बँधा नही है, साफ़-साफ क्यों नही कहती हो ?"

बात की सचाई ने कुमुदिनी के मन पर चोट की। बोली, "बाजे को तनिक ठीक करना होगा। तुम्हे और किसी दिन सुनाऊँगी।"

"कब सुनाओगी, ठीक बताओ ! कल ?"

"अच्छी बात है, कल ही सुनाऊँगी।"

"शाम को दफ़्तर से लौटने पर ?"

"हाँ, ऐसा ही होगा।"

"इसराज मिलने पर प्रसन्न तो हो न ?"

"हाँ, बहुत खुश हूँ।"

शाल के भीतर से एक चमड़े का 'केस' बाहर निकालकर मधुसूदन बोला, "तुम्हारे लिए यह मोतियों का हार लाया हूँ; इसे पाकर क्या उतनी ही प्रसन्नता नही होगी तुम्हें ?"

ऐसा कठिन प्रश्न पूछने से क्या लाभ ? कुमुदिनी चुपचाप इसराज की छडी से खेलने लगी।

"समझ गया हूँ कि मेरी दरखास्त नामंजूर हो गई है।"

कुमुदिनी बात का अर्थ ठीक समझ न पाई।

मधुसूदन बोला, "तुम्हारे हृदय के निकट अपने अन्तर का यह निवेदन लटकाए रहूँगा, ऐसी इच्छा थी—पर तुमने पहले ही 'डिसमिस' कर दिया।"

कुमुदिनी के सामने, फ़र्श पर वह हार खुला पडा रह गया। दोनों में से किसी ने एक भी बात नही कही। रह-रहकर कुमुदिनी अभ्यासवश स्वप्नाविष्ट-सी होती चली जा रही थी। पर कुछ ही देर बाद सचेत होकर उसने हार गले में पहन लिया और मधुसूदन को प्रणाम किया। बोली, "तुम मेरा बजाना सुनोगे ?"

"अवश्य सुनूँगा।"

"अच्छा, तब अभी सुनाती हूँ।" यह कहकर उसने इसराज मे सुर बाँधा। केदारा में आलाप आरंभ किया। वह भूल गई कि कमरे में और कोई बैठा है, और केदारा से पहुँच गई छायानट में। जो गीत उसे बहुत प्यारा था उसीको उसने उठाया, 'ठाढ़ रहो मोरी अँखियन आगे।' सुर के आकाश मे रंगीन छाया फैलाकर उसी अपरूप का आविर्भाव हुआ, जिसे कुमुदिनी ने गीत में पाया था, प्राणों में पाया था, और केवल आँखों में पाने की तृष्णा से जिसके लिए यह विनती उसके अंतर में नित्य बजती रहती थी, 'ठाढ रहो मोरी अँखियन आगे।'

मधुसूदन संगीत का रस ग्रहण नही कर पाता था, पर कुमुदिनी के विश्व-विस्मृत मुख के ऊपर जो सुर खेल रहा था, इसराज के पर्दे-पर्दे पर कुमुदिनी की उँगलियों के स्पर्श से जो छंद नाच उठता था उसने उसके हृदय को डुला दिया—उसे लगा, जैसे कोई उसे वरदान देता चला जा रहा है। अनमने भाव से बजाते-बजाते कुमुदिनी ने सहसा देखा कि मधुसूदन उसके मुख की ओर एक-टक देख रहा है। उसी क्षण उसका हाथ रुक गया और संकोच ने घेर लिया। उसने बजाना बंद कर दिया।

मधुसूदन के मन का बांध टूट गया और एक उदार भावना की लहर दौड़ पड़ी। बोला, "बड़ी बहू, तुम क्या चाहती हो, बोलो!" कुमुदिनी यदि उस समय यह कहती कि मैं कुछ दिन भैया की सेवा करना चाहती हूँ तो उस समय मधुसूदन इस बात पर राजी हो सकता था। आज कुमुदिनी के गीत-मुग्ध मुख की ओर आँखे गड़ाए हुए वह मन-ही-मन कह रहा था, 'यह मेरे घर मे आई है, यह कितना बड़ा आश्चर्य है!'

इसराज फर्श पर रखकर और छडी एक ओर फेककर कुमुदिनी चुप हो गई।

मधुसूदन और एक बार अनुनय करता हुआ बोला, "बड़ी बहू, तुम मुझसे कुछ माँगो। जो चाहोगी वही मिलेगा।"

कुमुदिनी बोली, "मुरली बैरे को जाड़े से बचने के लिए एक गरम कपड़ा देना चाहती हूँ।"

यदि वह यह कहती कि मुझे कुछ नही चाहिए, तो भी इससे अच्छा था। पर मुरली बैरे के लिए गरम कपड़ा! जो सिर का मुकुट देने की क्षमता रखता है उससे जूते के फीते की माँग!

मधुसूदन स्तब्ध होकर बैठा रह गया। उसे क्रोध आया बैरे पर। बोला,

"मालूम होता है वह अभागा मुरली तुम्हें तंग कर रहा है ?"

"नहीं, मैंने स्वयं ही उसे एक अलवान देना चाहा, पर उसने नहीं लिया। तुम्हारे कहने पर ही उसे लेने का साहस हो सकता है।"

मधुसूदन दंग रह गया। कुछ देर बाद बोला, "तुम भिक्षा देना चाहती हो ! अच्छा दिखाओ, कहाँ है तुम्हारा अलवान।"

कुमुदिनी अपना वही पुराना, बादामी रंग का अलवान ले आई। मधुसूदन ने उसे स्वयं ओढ लिया। तिपाई के ऊपर रखी हुई छोटी-सी घंटी बजाने पर एक बूढ़ी नौकरानी भीतर आई। उससे मधुसूदन ने कहा, "मुरली बैरे को बुलाओ !"

मुरली आकर हाथ जोड़कर खडा हो गया। जाडे से और भय से उसके हाथ काँप रहे थे।

"तुम्हारी माँ जी तुम्हे बख्शीश देना चाहती हैं," कहकर मधुसूदन ने जेब से सौ रुपये का एक नोट बाहर निकालकर उसकी तह खोलकर उसे कुमुदिनी के हाथ में दे दिया। इस प्रकार का अयाचित दान इसके पहले मधुसूदन ने अपने जीवन में कभी किसी को नहीं दिया था। इस असंभव कांड से मुरली बैरे का भय और अधिक बढ़ गया। काँपते हुए स्वर में वह बोला, "हुजूर—"

"हुजूर-हुजूर क्या बकता है बे ? अरे गधे, यह ले अपनी माँ जी के हाथ से। इस रुपये से जितना गरम कपड़ा चाहिए, ले लेना !"

बात यही पर आकर समाप्त हो गई—और उसीके साथ उस दिन का सभी-कुछ जैसे समाप्त हो गया। जिस स्रोत मे कुमुदिनी का मन बहने लगा था वह सहसा बंद हो गया। मधुसूदन के भीतर आत्म-त्याग की जो लहर चित्त की संकीर्ण सीमा को लाँघकर उमड़ चली थी वह भी एक साधारण बैरे के लिए की गई तुच्छ प्रार्थना से टकराकर फिर लौटकर तल तक उतर आई। इसके बाद सहज वार्तालाप दोनों ओर से संभव नही रह गया। मधुसूदन इस बीच यह बात ही भूल गया था कि आज शाम उसी जायदाद खरीदने की बात के संबंध मे बाहर के कमरे में लोग आकर उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इतनी देर बाद उसे सहसा याद आई और वह चौक उठा। अपने को धिक्कारने लगा। वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "काम है, इसलिए जा रहा हूँ।" कहकर तुरत चला गया।

रास्ते में श्यामासुन्दरी के कमरे के सामने ठहरकर गला खोलकर बोला, "कमरे में हो क्या ?"

श्यामासुन्दरी ने आज खाना नहीं खाया था। वह एक चादर ओढ़कर फ़र्श पर

चटाई के ऊपर थकी हुई-सी लेटी थी। मधुसूदन की आवाज सुनकर तुरंत दरवाज़े के पास आकर बोली, "क्या है लाला ?"

"पान नहीं दिया तुमने मुझे ?"

४४

बाहर अँधेरे मे दरवाज़े की ओट में इतनी देर तक एक व्यक्ति खड़ा था---हाबलू। उसने कुछ कम साहस का काम नही किया था। मधुसूदन से वह यम की तरह डरता था, फिर भी काठ के पुतले की तरह स्तब्ध खडा था। उस दिन मधुसूदन ने उसे डाँटा था तब से वह ताई के पास नही आ पाया था—केवल मन-ही-मन छटपटाता रहता था। आज इस साँझ के समय आना खतरे से खाली नहीं था। पर उसकी अम्माँ उसे बिस्तर पर लिटाकर जब स्वयं घर का काम-काज देखने चली गई तब सहसा उसके कानों में इसराज बजने की आवाज़ आई। क्या बज रहा है यह वह नहीं जानता था, कौन बजा रहा है इसका भी पता उसे नहीं था, पर इतना निश्चित था कि वह आवाज ताई के कमरे से आ रही थी; उसका विश्वास था कि ताऊजी वहाँ नही होगे, क्योंकि उनके सामने कोई बाजा बजाने का साहस करेगा यह बात उसकी कल्पना में भी नही आ सकती थी। जब वह ऊपर वाले खड मे दरवाज़े के निकट आया तब ताऊजी के जूते देखते ही वह भागने की तैयारी करने लगा। पर जब बाहर से उसने देखा कि उसकी ताई स्वय बजा रही है, तब भागने के लिए उसके पाँव किसी तरह भी तैयार नही हुए। दरवाज़े की ओट में छिपकर वह सुनता रहा। पहले ही दिन से वह ताई को आश्चर्य की मूर्ति के रूप में देखता आया है, और आज तो उसके विस्मय का अंत नहीं था। मधुसूदन के जाते ही वह अपने मन के उच्छ्वास को अधिक दबा न सका—कमरे के भीतर पहुँचते ही वह चट से कुमुदिनी की गोद में बैठ गया और उसके गले से लिपटकर कान के निकट मुँह ले जाकर बोला, "ताई !"

कुमुदिनी ने भी उसे छाती से लगा लिया और लगाते ही बोली, "यह क्या, तुम्हारे हाथ एकदम ठंडे है। मालूम होता है बदरिहा हवा लग गई है।"

हाबलू उत्तर में कुछ नहीं बोला, वह डर गया। उसने सोचा, ताई कहां

उसे बिस्तर पर जाकर लेटने के लिए वापस न भेज दे। कुमुदिनी ने उसे अपने शाल से अच्छी तरह ढक लिया और अपने शरीर के ताप से उसे गरमी पहुँचाती हुई बोली, "गोपाल, तुम अभी तक सोने नही गए ?"

"तुम्हारा बजाना सुनने आया था। तुमने उसे कैसे बजाया, ताई ?"

"तुम जब सीखोगे तब तुम भी बजा सकोगे।"

"मुझे सिखा दोगी तुम ?"

इतने में मोती की माँ आँधी की तरह कमरे में घुसी और बोल उठी, "यहाँ आया हुआ है यह शैतान, यहाँ आकर छिपा हुआ है! और मै इसे न जाने कहाँ-कहाँ खोज आई हूँ। साँझ होते ही कमरे से बाहर निकलते हुए इस क़दर डरता है कि थर-थर काँपने लगता है, और ताई के पास जाने में इसे तनिक भी डर नही लगता। चल, सोने चल !"

हाबलू कुमुदिनी को जकडे रहा।

कुमुदिनी बोली, "अरे भई, रहने भी दो न कुछ देर और !"

"इस तरह इसका साहस बढ़ता रहेगा तो अत में बड़ी विपत्ति में पड जायगा। इसे सुलाकर मैं अभी आती हूँ।"

कुमुदिनी का जी कर रहा था कि हाबलू को कुछ दे—खाने की या खेलने की कोई चीज। पर देने के लिए उसके पास उस समय कुछ नही था, इसलिए उसका मुँह चूमती हुई बोली, "राजा बेटा, अभी सोने चले जाओ, कल दोपहर में तुम्हे बाजा सुनाऊँगी मै।"

हाबलू उदास मुँह लेकर उठा और अपनी अम्माँ के साथ चला गया।

कुछ ही देर बाद मोती की माँ लौट आई। नवीन के षड्यंत्र का क्या फल हुआ, यह जानने के लिए वह बेचैन थी। कुमुदिनी के निकट बैठते ही उसके हाथ मे नीलम की अँगूठी देखकर वह समझ गई कि काम बन गया है। बात उठाने के उद्देश्य से बोली, "दीदी, यह बाजा आज कैसे और कहाँ से मिल गया ?"

"भैया ने भेजा है।"

"जेठजी ने स्वयं लाकर तुम्हे दिया होगा ?"

कुमुदिनी ने संक्षेप से कहा, "हाँ।"

मोती की माँ ने कुमुदिनी के मुख पर उल्लास या विस्मय का कोई भी चिह्न नहीं देखा।

"तुम्हारे भैया की कोई बात उन्होंने बताई क्या ?"

"नहीं।"

"वह तो परसो आ रहे है, उनके पास तुम्हारे जाने की कोई बात नही उठी थी ?"

"नहीं, भैया के संबध में कोई बात नहीं हुई ।"

"तुमने स्वयं यह बात क्यों नहीं चलाई ?"

"मैं उनसे चाहे और किसी बात के लिए क्यों न कहूँ, पर इसके लिए नही कह सकती।"

"तुम्हे इसके लिए उनसे कहने की कोई जरूरत ही नही पड़ेगी। तुम अपने ही से उनके पास चली जाओ। जेठजी कुछ नहीं बोलेगे।"

मोती की माँ अभी तक यह बात ठीक से नहीं समझ पाई थी कि मधुसूदन का अनुकूल मनोभाव कुमुदिनी के लिए सकट-स्वरूप हो उठा है; इसके बदले मे मधुसूदन जो-कुछ चाहता है वह चाहने पर भी उसे दे नहीं पायगी। क्योंकि उसका अपना हृदय हो गया था दिवालिया। इसीलिए मधुसूदन से दान स्वीकार करके ऋरण बढाने में उसे इतने संकोच का अनुभव हो रहा है। वह यहाँ तक सोचने लगी थी कि भैया यदि और कुछ दिन देर करके आयँ तो अच्छा है।

कुछ ठहरकर मोती की माँ बोली, "आज तो ऐसा लगा कि जेठजी का चित्त कुछ प्रसन्न है।"

कुमुदिनी संशय-विकल आँखों से मोती की माँ की ओर देखती हुई बोली, "यह प्रसन्नता क्यों है, मैं ठीक समझ नही पाई, इसीलिए मुझे भय लगता है। क्या करना चाहिए कुछ सोच नही पा रही हूँ।"

कुमुदिनी की ठुड्डी पकड़कर मोती की माँ बोली, "कुछ भी नहीं करना होगा। तुम यह नहीं समझ पा रही हो कि इतने दिन तक वह केवल अपने कारोबार को लेकर व्यस्त रहे; तुम्हारे समान लड़की इसके पहले उन्होने कभी देखी नहीं। धीरे-धीरे वह तुम्हें जितना ही समझने जा रहे हैं उतना ही तुम्हारा आदर बढता जाता है।"

"अधिक देखने पर मुझे और अधिक पहचानेंगे, ऐसी कोई ख़ास बात मुझमे नही है। मैं स्वयं देख रही हूँ कि मेरे भीतर बिलकुल शून्य है। वही खोखलापन दिन-पर-दिन अधिक स्पष्ट दिखाई देगा। यही कारण है कि जब मैं सहसा उन्हें प्रसन्न देखती हूँ तो लगता है शायद उन्हे धोखा हुआ है। जब असलियत सामने आ जायगी तब वह और अधिक बिगड़ उठेंगे। उनका वह बिगड़ना ही असल में सत्य है, इसलिए उससे मैं भयभीत नहीं होती हूँ।"

"तुम अपना दाम स्वयं क्या जानो दीदी ! जिस दिन तुम इन लोगों के घर आई हो उसी दिन तुम जो दे चुकीं उसे ये सब लोग मिलकर कभी चुका

नही पायँगे। मेरे अपने कर्ता महाशय का तो यह हाल है कि तुम्हारे लिए समुद्र लाँघे बिना उन्हे चैन नहीं मिल रहा है। यदि मैं तुम्हें न चाहती होती तो इस बात को लेकर उनसे मेरा झगड़ा हो गया होता।"

कुमुदिनी को हँसी आ गई। बोली, "कितने बड़े भाग्य से मैंने ऐसा देवर पाया है।"

"और तुम्हारी यह देवरानी शायद तुम्हारे भाग्य-स्थान में राहु या केतु की तरह आ पड़ी है न ?"

"तुम दोनों मे से एक का नाम लेने पर दूसरे का नाम लेने की आवश्यकता ही नही रह जाती।"

मोती की माँ ने अपना दायाँ हाथ कुमुदिनी के गले में डालते हुए कहा, "मेरा एक अनुरोध है तुमसे।"

"क्या है, बोलो ?"

"मुझसे तुम 'मन की बात' बताने का संबंध जोड़ लो !"

"यह बड़ी अच्छी बात है। हम दोनों के बीच मन का संबंध तो पहले ही जुड़ चुका है।"

"तब मुझसे कोई बात मत छिपाओ ! आज तुम इस तरह मुँह बनाकर क्यों बैठी हो, यह मैं कुछ भी नहीं समझ पाती।"

कुछ देर तक कुमुदिनी मोती की माँ की ओर देखती रही। फिर बोली, "ठीक बताऊँ ? मुझे, जाने क्यों, स्वयं अपने ही से डर मालूम हो रहा है।"

"यह कैसी बात तुम कह रही हो ? अपने से कैसा डर ?"

"इतने दिनो तक मै अपने को जैसा सोचती आ रही थी, आज सहसा देखती हूँ कि मैं वह नही हूँ। अपने मन के भीतर सब-कुछ सँजोकर मै निश्चिंत होकर ही यहाँ आई थी। जब भैया और उनके साथी दुविधा में पड़े हुए थे तब मैंने बरबस नये रास्ते पर पाँव बढ़ाया था। पर जो व्यक्ति भरोसा करके निकला उसे आज कही भी खोज नहीं पा रही हूँ।"

"तुम प्यार नही कर पा रही हो। अच्छा, मुझसे छिपाना मत, सच-सच बताना, तुमने कभी किसी को प्यार किया है ? क्या तुम जानती हो, प्यार किसे कहते हैं ?"

"यदि मैं कहूँ कि जानती हूँ तो तुम्हें हँसी आयगी। सूरज निकलने के पहले जैसा उजाला होता है, ठीक उसी तरह मेरे समस्त आकाश में प्यार उसी तरह जग उठा था। मन में रह-रहकर यह विश्वास ज़ोर मारता था कि सूरज अब निकला, तब निकला। उस सूर्योदय की कल्पना को साथ लेकर ही मैं बाहर

निकली हूँ—तीर्थ का जल लेकर और फूल की डाली सजाकर। जिस देवता को इतने दिन तक मै संपूर्ण मन से मानती चली आई हूँ, बीच-बीच में ऐसा लगता रहा है कि उनकी ओर से मुझे उत्साह मिला है। जिस प्रकार कोई युवती अभिसार के लिए निकल पडती है मैं भी उसी तरह निकल पड़ी थी। अँधेरी रात मुझे कभी अँधेरी ही नहीं मालूम हुई। पर आज जब प्रकाश में मैने देखा, तब क्या पाया मैंने अपने भीतर और क्या पा रही हूँ बाहर! अब बरस-पर-बरस, मुहूर्त-पर-मुहूर्त कैसे काट पाऊँगी!"

"क्या तुम यह सोचती हो कि तुम जेठजी को प्यार नहीं कर पाओगी?"

"मै प्यार कर सकती थी। अपने मन के भीतर मै कुछ ऐसी चीज साथ मे लाई थी कि जिससे सभी-कुछ अपनी पसंद के अनुसार गढना मेरे लिए सहज हो जाता। पर तुम्हारे जेठजी ने आरंभ ही मे तोडकर चूर-चूर कर दिया। आज सभी चीजे कडी होकर अंतर में जैसे गड रही है। मेरे शरीर के ऊपर की नरम खाल जैसे किसी ने खीच डाली है, इसलिए चारों ओर से सभी कुछ जैसे मुझे कचोट रहा है। जो-कुछ भी मै छूती हूँ इसीसे चौक उठती हूँ। इसके बाद यदि फिर कभी मेरी चमड़ी कड़ी हो जायगी तो शायद तब सब सहन हो सकेगा। पर हर हालत मे अब मै जीवन में कभी आनंद नही पा सकूँगी।"

"कुछ कहा नही जा सकता, दीदी!"

"कहा क्यों नही जा सकता! आज मेरे मन में तनिक भी मोह नही है। मेरा जीवन निपट निर्लज्ज की तरह स्पष्ट हो गया है। अपने को भुलाने के लिए भी कहीं तनिक भी ओट नही रह गई है। मौत के सिवा क्या स्त्रियों के लिए कहीं हाथ-पाँव हिला-डुलाकर बैठने योग्य कोई स्थान नही है? उनके संसार को निष्ठुर विधाता ने क्या इस कदर कसकर तैयार किया है?"

मोती की माँ ने इसके पहले कभी कुमुदिनी के मुँह से इस हद तक उत्तेजना-भरी बातें नहीं सुनी थीं। विशेषकर आज जब उन लोगों ने जेठजी को कुमुदिनी के प्रति प्रसन्न कराने में सफलता पाई है, तब ठीक उसी दिन उसकी इतनी अधिक अधीरता देखकर वह भयभीत हो उठी। वह समझ गई कि लता की एकदम जड़ ही मे चोट लगी है, इसलिए ऊपर से अनुग्रह का जल डालने से माली उसे ताज़ा नहीं कर सकता।

कुछ ही देर बाद कुमुदिनी फिर बोली, "मै जानती हूँ कि मैं जो अपने पति को श्रद्धा के साथ आत्म-समर्पण नहीं कर पा रही हूँ, वह महापाप है। पर उस पाप से भी मैं उतनी नही डरती हूँ जितनी श्रद्धाहीन आत्म-समर्पण की ग्लानि की बात याद करके।"

मोती की माँ कोई भी उत्तर नहीं सोच पा रही थी और केवल भ्रान्त-दृष्टि से कुमुदिनी की ओर देख रही थी। तनिक चुप रहकर कुमुदिनी फिर बोली, "तुम्हारा कितना बड़ा भाग्य है बहन, जाने कितना पुण्य तुमने किया था; जिससे तुम संपूर्ण मन से लाला को प्यार कर पाती हो। आगे मै सोचती थी कि प्यार करना बड़ा आसान है—सभी स्त्रियाँ अपने पतियों को सहज ही प्यार करती है। पर आज मै देख रही हूँ कि प्यार करा सकना ही सबसे अधिक कठिन है—जन्म-जन्मान्तर की साधना से ही यह सुलभ हो सकता है। अच्छा बहन, सच बताना, क्या सभी स्त्रियाँ अपने पतियों को प्यार करती है ?"

मोती की माँ तनिक मुस्कराती हुई बोली, "प्यार न करने पर भी अच्छी स्त्री तो बना ही जा सकता है, नहीं तो संसार चलेगा कैसे ?"

"यही भरोसा मुझे दो ! और चाहे कुछ न हो, पर मैं भली स्त्री बन पाऊँ। पुण्य उसीमे अधिक है, यही अधिक कठिन साधना है।"

"पर बाहर से तो उसमें भी बाधा पडती है।"

"अन्तर से वह बाधा कट सकती है। मै काट सकूँगी, मै हार नही मानूँगी।"

"तुम यदि ऐसा न कर सकोगी तो दूसरा कौन कर सकेगा ?"

बाहर पानी का ज़ोर बढ रहा था। लैम्प की रोशनी रह-रहकर हवा से चौंक-चौक उठती थी। हवा का झोंका एक भीगे निशाचर पक्षी की तरह पंख फटकारकर कमरे के भीतर घुसा आता था। कुमुदिनी का शरीर और मन दोनों सिहर उठते थे। वह बोली, "अपने इष्टदेवता के नाम से भी अब मुझे बल नहीं मिलता। मंत्र पढ़ती रहती हूँ, पर मन मुँह फेरे रहता है, किसी प्रकार भी जम नही पाता। इसीसे मुझे सबसे अधिक डर मालूम होता है।"

बनावटी बातों से झूठी सान्त्वना देने की इच्छा मोती की माँ को नही हुई। कोई उत्तर न देकर उसने कुमुदिनी को छाती से लगा लिया। इतने में बाहर से आवाज़ आई, "मँझली बहू !"

कुमुदिनी प्रसन्न होकर बोल उठी, "आओ, आओ लाला, चले आओ !"

"साँझ के समय के कमरे के उजाले को कमरे में न देखकर यहाँ खोजने आया हूँ।"

मोती की माँ बोली, "हाय, हाय, मणि बिना फणि की जो दुर्दशा होती है, वही हुई होगी।"

"कौन मणि है और कौन फणि, यह लक्षणों से ही स्पष्ट समझा जा सकता है, क्यों भाभी ?"

"मुझे साक्षी न बनाओ, लाला !"

"जानता हूँ, क्योंकि ऐसा करने में मैं ही ठगा जाऊँगा।"

"तब तुम अपने खोए रतन का उद्धार करके ले जाओ, मै उसे पकड़े न रहूँगी।"

मोती की माँ बोली, "खोए रतन के लिए उन्हें तनिक भी उत्साह नहीं है दीदी ! बहाना बनाकर भाभी के चरणों का दर्शन करने आए है।"

"बहाने की क्या कोई जरूरत है ? चरण अपने-आप ही पकड़ में आ गए है। जो सबसे अधिक असाध्य है उसकी साधना कौन करेगा ? वह जब आता है अपने-आप ही सहज में आता है। पृथ्वी में हजारों मनुष्य मुझसे योग्य है, पर इन दो सुन्दर पाँवों को छूने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हुआ, दूसरो को तो वह सुलभ नहीं हो पाया। नवीन का जन्म बिना मूल्य के सार्थक हो गया।"

"ओः, यह सब क्या कह रहे हो लाला, शायद अपनी इन्साइक्लोपीडिया से—"

"तुम्हारी यह बात ठीक बैठती नहीं, भाभी ! चरण का ठीक अर्थ क्या होता है, यह इन्साइक्लोपीडिया वाले क्या जानें ! बकरी के खुर के समान छोटी-छोटी एड़ियों वाले जूतों मे उन्होंने अपनी लक्ष्मियों के पाँव कड़े जनाने में बन्द कर रखे है। पाँवों की महिमा समझने की शक्ति उनमे कहाँ ? लक्ष्मण ने चौदह बरस केवल सीता के चरणों की ओर देखकर निर्वासन का काल बिता दिया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि चरणों की महिमा केवल हमारे ही देश के देवर जान सकते हैं, तुम यह जो अपने पाँवो को भी साड़ी खींचकर ढकना चाह रही हो, सो ठीक है। पर मै कहता हूँ कि डर की कोई बात नही है। कमल साँझ के समय भले ही सिकुड़ जाय, पर सब समय तो वह इस तरह नहीं रहता—फिर कभी तो उसकी पंखुड़ियाँ खुलेगी ही।"

"बहन, अब मै समझ गई हूँ कि इसी तरह की स्तुति से लाला ने तुम्हे मोह रखा है।"

"तनिक भी नही, दीदी, मीठी बातों का अपव्यय करने वाले आदमी नही है वह।"

"शायद स्तुति की आवश्यकता ही नही पड़ती ?"

नवीन बोल उठा, "भाभी, देवियों की स्तुति की भूख कभी शान्त नहीं होती। आवश्यकता खूब रहती है। पर मैं तो शिवजी की तरह पंचानन नही हूँ। केवल एक मुख की स्तुति पुरानी पड़ गई है, इससे यह अब उसमें अधिक रस नहीं पातीं।"

तभी मुरली बैरे ने आकर नवीन को खबर दी , "कर्ता महाराज ने बाहर के दफ़्तर वाले कमरे में बुलाया है ।"

सुनकर नवीन का जी खराब हो गया । उसने सोचा था कि मधुसूदन आज आफ़िस से लौटते ही सीधे अपने सोने के कमरे में चला आयगा । शायद नाव फिर कगार पर अटक गई ।

नवीन के चले जाने पर मोती की माँ धीरे-से बोली, "जो भी हो, तुम्हे इतनी बात याद रखनी चाहिए कि जेठ जी तुम्हें चाहते है ।"

कुमुदिनी बोली, "इसी बात पर तो मुझे आश्चर्य होता है ।"

"यह क्या कहती हो ? तुम्हें चाहने में आश्चर्य की क्या बात है ? वह क्या पत्थर के बने है ?"

"मैं उनके योग्य नही हूँ ।"

"तुम जिसके योग्य नहीं हो, वह पुरुष है भी कही ?"

"उनकी कितनी बड़ी शक्ति है, कितना सम्मान है, कैसी बुद्धि है, कितने बड़े आदमी है वह ! मुझमें वह कितना पा सकते है ? मै किस हद तक कच्ची हूँ, यह बात यहाँ आने पर मैं दो ही दिन के भीतर समझ गई हूँ । इसीलिए जब वह मुझे प्यार करते हैं तभी मुझे सबसे अधिक भय मालूम होने लगता है । मैं अपने भीतर तो कुछ भी नही पाती । इतना बड़ा खोखलापन लेकर मै उनकी सेवा कैसे करूँगी ? कल रात बैठे-बैठे यह बात मेरी समझ में आई कि मैं एक बैरंग लिफ़ाफ़ा हूँ । मुझे दाम देकर लिया गया है, पर लिफाफ़ा खुलते ही पता लग जायगा कि भीतर चिट्ठी तक नही है ।"

"हँसी आती है तुम्हारी बात पर, दीदी ! जेठजी का कारोबार बहुत बड़ा है, और कारोबारी बुद्धि में उनके बराबर कोई भी नहीं है, यह बात मैं जानती हूँ । पर तुम क्या उनके कारोबार की मैनेजरी करने आई हो कि योग्यता न होने से डरती हो ? जेठजी यदि अपने मन की बात खोलकर बतायें तो वह भी निश्चय ही यही कहेंगे कि वह भी तुम्हारे योग्य नहा है ।"

"यह बात उन्होंने मुझसे कही थी ।"

"तुम्हें विश्वास नहीं हुआ ?"

"नहीं । उलटा भय मालूम हुआ था । मुझे लगा था कि उन्होंने मेरे संबंध में भूल की है और वह भूल पकड़ में आ जायगी ।"

"तुम्हें ऐसा क्यों लगा, बताओ तो सही ?"

"बताऊँ ? यह जो अचानक मेरा ब्याह हो गया, यह तो सब जैसे मैंने ही रच डाला—पर किस अनोखे मोह में पड़कर, किस लड़कपन के भुलावे में आकर !

तब जिस बात ने मुझे भुलावे में डाला था वह सब था केवल धोखा। फिर भी मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास था, ऐसी विकट जिद थी कि तब मुझे कोई भी नही रोक सकता था। भैया तो यह निश्चित रूप से जानते थे, इसीलिए उन्होने व्यर्थ बाधा नही डाली। पर वह कितने घबराए हुए थे, कितने चिंतित हो उठे थे, यह क्या मै नहीं समझ पाई थी ? पर समझने पर भी अपनी धुन से छुटकारा न पा सकी—इतनी बडी अयानी हूँ मै ! आज से सदा के लिए मै अब केवल कष्ट ही पाती रहूँगी, केवल दूसरों को कष्ट ही देती रहूँगी, और नित्य यह महसूस करती रहूँगी कि यह सब मेरा ही किया हुआ है।"

मोती की माँ कुछ समझ न पाई कि क्या कहे। कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने पूछा, "अच्छा दीदी, तुमने जो ब्याह के लिए अपने मन में निश्चय कर लिया, वह क्या सोचकर किया ?"

"तब मै निश्चित रूप से यह समझे बैठी थी कि पति अच्छा या बुरा, चाहे कैसा ही क्यों न हो, स्त्री के सतीत्व-गौरव को प्रमाणित करने का एक उपलक्ष्य-मात्र होता है। मेरे मन में तनिक भी सदेह नहीं था कि विवाह के देवता ने चाहे जिसे भी पति ठहरा दिया हो उसीको मै सहज ही प्यार करूँगी। लगता था कि शास्त्र के साथ अपने मन का मेल बिठाना बहुत ही आसान है।"

"दीदी, उन्नीस बरस की कुमारी के लिए शास्त्र नहीं लिखा गया।"

"आज मै समझ गई हूँ कि संसार में प्रेम एक ऊपरी आमदनी है। उसे गिनती में न लाकर, धर्म को जकडे रहकर संसार-समुद्र में बहे चले जाना होगा। धर्म यदि सरस होकर फूल नही देता, फल नहीं देता तो कम-से-कम सूखकर तैरने में सहायक तो सिद्ध हो ही सकता है।"

मोती की माँ स्वयं विशेष कुछ न कहकर कुमुदिनी को बोलते रहने का अवसर देती रही।

४५

मधुसूदन को ऑफ़िस में जाते ही पता लगा कि समाचार अच्छा नहीं है। मद्रास का कोई बड़ा बैंक 'फेल' हो गया है, जिससे मधुसूदन की कंपनी का संबंध था। उसके बाद यह सुना गया कि किसी डाइरेक्टर की प्रेरणा से कुछ कर्मचारी मधुसूदन के अज्ञान में आवश्यक कागज़ों की जाँच-परख कर रहे हैं। इतने दिनों

तक किसी ने कभी मधुसूदन पर किसी प्रकार का संदेह करने का साहस नही किया, पर एक बार जब किसी ने कोई गड़बड़ी पकड़ ली तब जैसे कोई मंत्र-शक्ति दौड़ पड़ी। बडे कामों की छोटी भूलें पकड़ना आसान है ; जो योग्य सेनापति होते हैं न जाने कितनी छोटी-छोटी हारों से ही आगे बढते है और कुल मिलाकर उनकी जीत बहुत बडी होती है। मधुसूदन भी ठीक इसी तरह बराबर जीतता ही रहा है—इसीलिए उसकी छोटी-छोटी हारों पर किसी का ध्यान ही कभी नहीं गया। पर चुन-चुनकर उन्हीं हारों की एक सूची तैयार करके साधारण लोगों की दृष्टि में जब उसे लाया जाता है तब वे अपनी बुद्धि की तारीफ करते हुए कहते है, "यदि हम लोग होते तो ऐसी भूल कभी न करते।" उन्हें कौन समझाए कि टूटी नाव लेकर ही मधुसूदन पार जाने के लिए निकल पड़ा था, नही तो वह यात्रा ही आरंभ न कर पाता। असली बात यह थी कि वह किनारे पर पहुंच गया था। आज नाव के किनारे लगने पर, जो लोग बिना किसी विघ्न के घाट में पहुँच चुके है वे जब उस टूटी-फूटी नाव पर विचार करते हैं तब सिहर उठते हैं। ऐसी खंड आलोचनाओं द्वारा अनाडियों को चौंका देना आसान है। साधारणतः अनाड़ियों को यह सुविधा रहती है कि वे लाभ चाहते है, विचार करना नहीं चाहते। पर जब संयोग से वे विचार करने बैठ जाते है तब वे घातक रूप धारण कर लेते है। इन सब मूर्खों के सम्बन्ध में मधुसूदन के मन मे अत्यन्त अवज्ञा-मिश्रित घृणा पैदा हो गई। पर जहाँ मूर्खो की ही प्रधानता हो वहाँ उनके साथ समझौता करने के सिवा दूसरी कोई गति नहीं रह जाती। काठ की पुरानी सीढ़ी लचकती है, हिलती है, टूटने का भय दिखाती है, और जो व्यक्ति ऊपर चढता है उसे अपने पाँवों के नीचे के इस अवलंब को सावधानी से बचाए रखना होता है। क्रोध से उसे लात मारकर ठुकराने को जी अवश्य चाहता है, पर उससे कठिनाई बढने के सिवा, घटने की कोई संभावना ही नही रह जाती।

अपने बच्चे के लिए खतरे की संभावना देखकर सिंहनी अपने आहार का लोभ भूल जाती है। अपने व्यवसाय के संबंध में मधुसूदन के मन की भी वैसी ही हालत थी। वह उसकी अपनी सृष्टि थी ; उसके प्रति उसके मन में जो दर्द था वह प्रधानतः रुपये के मोह का दर्द नही था। जिसमें रचना-शक्ति है, वह अपनी रचना में ही अपने को पूरी तरह से पाता है। उस पाने में जब विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होने लगती है, तब जीवन के और सभी सुख-दुःख, सभी कामनाएँ तुच्छ हो जाती हैं।

कुछ दिनों से कुमुदिनी ने मधुसूदन को प्रबल वेग से अपनी ओर खींचा

था, पर वह खिंचाव सहसा टूट गया। जीवन में प्रेम के प्रयोजन का अनुभव मधुसूदन ने अपनी प्रौढावस्था में बडे जोरो से किया था। यह उपसर्ग जब असमय में दिखाई देता है, तब स्वभावतः वह काबू के बाहर हो उठता है। मधुसूदन को धक्का कुछ कम नहीं लगा था, पर आज उसकी वह वेदना कहाँ चली गई ?

नवीन ज्योंही कमरे में पहुँचा त्योही मधुसूदन ने उससे पूछा, "मेरे प्राइवेट जमा-खर्च का खाता क्या किसी बाहर के आदमी के हाथ में पड़ा है ?"

नवीन चौक उठा। बोला, "यह क्या बात है ?"

"तुम्हे इस बात का पता लगाना होगा कि ख़जांची के कमरे मे कोई आता-जाता तो नही है।"

"रतिकात विश्वासी आदमी है, वह क्या कभी—"

"उसके अज्ञान मे उसके नीचे काम करने वाले कर्मचारियों के साथ कोई आदमी मिला हुआ है और उनसे बाते मालूम करता रहता है, इस तरह के संदेह का कारण घटा है। बड़ी सावधानी से तुम्हे पता लगाना होगा कि इसके पीछे किन लोगों का हाथ है।"

नौकर ने आकर समाचार दिया कि खाना ठंडा हो रहा है। मधुसूदन ने उसकी बात पर ध्यान न देकर नवीन से कहा, "जल्दी ही मेरी गाडी तैयार करके लाने को कह दो !"

नवीन बोला, "खाना खाकर नही जाओगे ? रात हो आई है।"

"बाहर ही खाऊँगा, काम है।"

नवीन सिर झुकाकर सोचता हुआ चला गया, उसने जो कौशल रचा था वह असफल होता दिखाई दिया।

सहसा मधुसूदन ने नवीन को वापस बुलाकर कहा, "यह चिट्ठी कुमु को दे आओ !"

नवीन ने देखा, वह विप्रदास का पत्र था। वह समझ गया कि वह पत्र उसी दिन सवेरे आया था और कुमुदिनी को देने के लिए मधुसूदन ने अपने पास रख छोड़ा था, इसी तरह हर बार मिलने के उपलक्ष्य मे अर्द्ध-रूप मे कोई एक चीज़ हाथ में लेकर उसके पास जाने की इच्छा वह रखता था। पर आज जब दफ़्तर के वातावरण में एक तूफान-सा उठ गया तब उसका यह प्रेम का आयोजन उसमें डूब गया।

मद्रास में जो बैंक 'फेल' हो गया था उस पर जन-साधारण की निश्चित आस्था थी। उसके साथ घोषाल-कम्पनी का जो संबंध जुड़ा हुआ था उसके बारे

में न संचालकों के मन मे कोई संदेह था, न हिस्सेदारों के मन में। पर जब वह कल ही बिगड़ गई तब उनमें से बहुत-से आपस मे काना-फूसी करने लगे कि हम लोग आरम्भ ही से यह सब जानते थे, इत्यादि।

घातक आघात के समय जब व्यवसाय को संगठित प्रयत्नो से सम्भालने की आवश्यकता आ पड़ती है, उसी समय पराजय के संबंध में दोषारोपण प्रबल हो उठता है, और जिन लोगों के प्रति ईर्षा होती है उन्हे पद से हटाने की चेष्टा में व्यवसाय को चौपट कर दिया जाता है। मधुसूदन समझ गया था कि इस बार भी इसी तरह की चेष्टाएँ चलेगी। मद्रास-बैंक के फेल हो जाने पर घोषाल-कम्पनी को कितना नुकसान उठाना पड़ेगा, इसका ठीक-ठीक अंदाज़ लगाने का समय अभी नही आया था, पर मधुसूदन की साख नष्ट करने के आयोजन में इस बात से भी कुछ मसाला जुटेगा, इसमे कोई संदेह नहीं था। जो भी हो, मधुसूदन ने सोचा कि समय खराब है, इस समय और सब बातें भूलकर इसी एक काम के लिए उसे कमर कसकर तैयार होना होगा।

रात में मधुसूदन के साथ बातें होने के बाद जब नवीन लौटकर आया तब उसने देखा कि कुमुदिनी और मोती की माँ के बीच तब भी बातें हो रही थीं। उसने कहा, "भाभी, तुम्हारे भैया की चिट्ठी आई है।"

कुमुदिनी ने हड़बड़ाकर वह चिट्ठी ले ली। खोलते हुए हाथ काँपने लगा। उसे आशंका हुई कि कहीं कोई अप्रिय समाचार उसमे न हो। कहीं भैया ने यह सूचित किया हो कि वह अभी आ न सकेंगे। धीरे-धीरे लिफ़ाफ़ा खोलकर उसने पत्र पढ़ना आरम्भ किया। वह चुप थी। उसका मुँह देखकर लगता था जैसे कहीं कोई पीड़ा उसे कचोट रही है। अन्त में वह नवीन से बोली, "भैया आज तीसरे पहर, तीन बजे कलकत्ता पहुँच गए हैं।"

"आज ही पहुँच गए हैं? वह तो—"

"उन्होने लिखा है कि दो-एक दिन बाद आने की बात थी, पर विशेष कारण से कुछ पहले आना पड़ा।"

इसके बाद फिर कुमुदिनी कुछ न बोली। पत्र के अन्त मे लिखा था कि तनिक स्वस्थ होते ही वह (विप्रदास) कुमुदिनी से मिलने आयगा, और इस संबंध में कुमुदिनी अधीर या चिंतित न हो। ठीक यही बात पहली वाली चिट्ठी में भी लिखी थी। पर क्यों? क्या हुआ है? उसने क्या अपराध किया है? यह तो जैसे स्पष्ट शब्दों मे यह कहने के बराबर था कि "तुम अब हमारे घर न आना।" उसकी इच्छा हुई कि फ़र्श पर लोटकर कुछ देर जी भरकर रो

ले। पर अपने भीतर की रुलाई को दबाकर वह पत्थर की तरह सख्त होकर बैठी रही।

नवीन समझ गया कि पत्र में कहीं कोई कडी चोट छिपी हुई है। कुमुदिनी का मुँह देखकर उसका मन करुणा से पिघल उठा। बोला, "भाभी, उनके पास तुम्हे कल ही जाना चाहिए।"

"नही, मै नहीं जाऊँगी।" कहते ही वह अपने को रोक न पाई और दोनो हाथों से मुँह ढाँपकर रो पडी, मोती की माँ ने बिना कोई प्रश्न किये उसे गले से लगा लिया। रुँधे हुए गले से कुमुदिनी ने कहा, "भैया ने मुझे वहाँ जाने से मना किया है।"

नवीन बोला, "नही, नही, भाभी, तुमने निश्चय ही गलत समझा है।"

कुमुदिनी ने बड़े ज़ोर से सिर हिलाते हुए बता दिया कि उसने समझने में तनिक भी भूल नहीं की है।

नवीन बोला, "मै बताऊँ तुमने कहाँ पर ग़लत समझा है? विप्रदास बाबू ने सोचा होगा कि भैया तुम्हे उनके यहाँ नहीं जाने देना चाहेगे। जाने की चेष्टा करने मे बाद में कही तुम्हे अपमानित होना पड़े, दुःख हो, इसलिए उन्होंने स्वयं ही तुम्हारा रास्ता सरल बना दिया है।"

पल-भर में कुमुदिनी का मन शांत हो गया। अपनी भीगी आँखों की पलके नवीन की ओर उठाकर, स्निग्ध-दृष्टि से उसे देखती ही वह चुप हो रही। नवीन की बात मे पूरी सचाई है, इस संबंध में उसे कोई संदेह नही रहा। अपने भैया के स्नेह पर क्षण-भर के लिए भी संदेह होने के कारण उसने अपने को धिक्कारा। उसे अपने भीतर बल का अनुभव हुआ। उसी क्षण भैया के पास न जाकर वह उनके आने की प्रतीक्षा मे अब बैठी रह सकेगी। यही ठीक है— उसने सोचा।

मोती की माँ कुमुदिनी की ठोड़ी पकड़कर बोली, "वाह भई, भैया की बात का रुख़ तनिक भी बदलने पर तुम्हारे अभिमान का समुद्र ही उमड़ पड़ता है!"

नवीन बोला, "तो भाभी, कल तुम्हारे जाने का प्रबंध किया जाय!"

"नहीं, इसकी आवश्यकता नही है।"

"तुम्हे भले ही आवश्यकता न हो, पर मुझे तो है।"

"तुम्हे क्या आवश्यकता है?"

"वाह, मेरे भैया को तुम्हारे भैया-जैसा कुछ भी समझने लगें, उसे मैं यों ही सह लूँगा? मैं अपने भैया की ओर से लडूँगा। तुमसे हार नहीं मानना चाहूँगा।

कल तुम्हे उनके पास जाना ही होगा ।"

कुमुदिनी हँसने लगी ।

"भाभी, यह हँसने की बात नही है । हमारे घर की बदनामी तुम्हारे लिए गौरव की बात नही हो सकती । अब तनिक मुँह-हाथ धो लो, खाने को चलना होगा । भैया को मैनेजर साहब के यहाँ भोजन का निमंत्रण है । मुझे विश्वास है कि वह आज घर के भीतर सोने नही आयँगे । बाहर के कमरे में उनका बिस्तर बिछ चुका है ।"

यह समाचार पाकर कुमुदिनी को मन-ही-मन आराम का अनुभव हुआ । पर दूसरे ही क्षण इस बात की लज्जा भी उसे अनुभव हुई कि उस संवाद से उसे प्रसन्नता हुई ।

रात में नवीन और मोती की माँ के बीच सोने के कमरे मे उसी बात को लेकर बहस हुई । मोती की माँ बोली, "तुमने तो दीदी को आश्वासन दे दिया । पर उसके बाद ?"

"उसके बाद और क्या । नवीन जैसी बात करता है वैसा ही काम भी करता है । भाभी को जाना ही होगा, उसके बाद जो होना होगा वह होगा ।

नये गडे गए राजाओं का पारिवारिक मर्यादा-बोध ज़बर्दस्त होता है । ये लोग निश्चित समझे रहते है कि ब्याह होने पर नव-वधू अपनी पूर्व-पदवी की अपेक्षा बहुत ऊपर उठ जाती है । इसलिए मायका नाम की कोई बला है, यह बात भूलना ही उनकी दृष्टि में उचित है । इस स्थिति में यदि दोनों ओर सँभालना असंभव हो उठे तो एक ओर तो सँभालना ही होगा । वह दिशा कौन-सी है, यह बात नवीन ने मन-ही-मन निश्चित कर ली । जहाँ भैया का सहज अधिकार है वहाँ भी वह उनके साथ लड़ने का साहस करेगा, कुछ दिन पहले तक नवीन स्वप्न में भी यह बात नहीं सोच सकता था ।

पति-पत्नी ने आपस में परामर्श करके तय किया कि कल सबेरे कुमुदिनी एक बार कुछ ही समय के लिए विप्रदास से मिल आयगी, यह प्रस्ताव मधुसूदन के आगे रखना होगा । यदि मधुसूदन राज़ी हो जाय और कुमुदिनी को वहाँ भेजने की बात पक्की हो जाय तब वहाँ से दो-चार दिन तक उसके न लौटने का कोई संगत कारण गढ लेना कठिन नहीं होगा ।

मधुसूदन रात में बड़ी देर में घर लौटा । साथ में कागजों का एक पूरा गट्ठर था । नवीन ने झाँककर देखा, मधुसूदन सोने न जाकर, आँखों में चश्मा जमाकर, एक नीली पेन्सिल हाथ मे लिये आफ़िस के कमरे में एक डेस्क के सामने बैठकर किसी दलील में निशान लगा रहा था या नोट-बुक में कुछ लिख

रहा था। साहस करके नवीन कमरे में घुस गया और बोला, "भैया, मैं क्या तुम्हारे किसी काम में हाथ बँटा सकता हूँ ?" मधुसूदन ने संक्षेप में उत्तर दिया, "नहीं।" व्यवसाय की उस संकटपूर्ण स्थिति में मधुसूदन सब-कुछ स्वयं ही देखकर सारी स्थिति को एक बार प्रत्यक्ष समझ लेना चाहता था। इस काम में किसी दूसरे की दृष्टि की सहायता लेने से अपने को दुर्बल बनाना वह नहीं चाहता था।

कोई बात कहने का बहाना न मिलने पर नवीन बाहर चला गया। वह सुयोग शीघ्र ही मिलेगा, इसका भी कोई लक्षण उसे नहीं दिखाई दिया। पर उसने प्रण कर लिया था कि कल सुबह ही भाभी को रवाना कर देगा। आज ही रात को भैया की अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक था।

कुछ ही देर बाद नवीन हाथ में एक लैम्प लेकर आया और उसे भैया की मेज पर रखकर बोला, "तुम्हारे लिए रोशनी कम हो रही है।"

मधुसूदन ने अनुभव किया कि उस दूसरे लैम्प से उसे अपने काम में अधिक सुविधा हो गई। पर इस उपलक्ष्य से भी बात का सुयोग न बन पाया। नवीन को फिर बाहर आना पड़ा।

कुछ ही देर बाद मधुसूदन के हुक्के में चिलम भरकर ले आया और उसको कुर्सी के बाईं ओर रख दिया। नली को धीरे से मेज पर लिटा दिया। मधुसूदन ने तत्काल अनुभव किया कि उसकी भी आवश्यकता थी। कुछ क्षणों के लिए पेन्सिल नीचे रखकर हुक्का गुडगुड़ाने लगा।

इस अवकाश में नवीन ने बात चलाई, "भैया, सोने नहीं जाओगे क्या ? बहुत रात हो गई। भाभी तुम्हारी इंतज़ार में बैठी होंगी।"

"भाभी इंतज़ार कर रही होंगी," यह बात पल में मधुसूदन के भीतर जा लगी। लहरों पर जब जहाज डगमगाता हुआ चल रहा था तब किनारे की एक छोटी-सी चिड़िया जैसे मस्तूल के ऊपर आकर बैठ गई। क्षुब्ध सागर के बीच मे एक बार हरे-भरे द्वीप की स्निग्ध छाया-छवि आँखों के आगे सजीव हो उठी। पर उस बात की ओर अधिक ध्यान देने का अवकाश नहीं है—क्योंकि संकट में पड़े जहाज़ को चलाना अत्यन्त आवश्यक है।

मधुसूदन अपने मन की इतनी-सी चंचलता से घबरा उठा। उसी क्षण उसे दमन करके बोला, "बड़ी बहू से सो जाने के लिए कह दो ! मैं आज बाहर ही सोऊँगा।"

"कहो तो उन्हें यहीं बुला दूँ", कहकर नवीन चिलम में फूंक मारकर आग तेज़ करने लगा।

मधुसूदन सहसा झल्लाकर बोल उठा, "नहीं, नहीं।"

नवीन इस पर भी विचलित नहीं हुआ। बोला, "वह तुम्हारे साथ कुछ परामर्श करने की प्रतीक्षा में बैठी हैं।"

रूखे स्वर में मधुसूदन ने कहा, "अभी परामर्श के लिए समय नहीं है।"

"तुम्हें तो समय नहीं है, भैया, पर उनके पास भी अधिक समय नहीं है।"

"क्या बात है ? क्या हुआ है ?"

"समाचार मिला है कि विप्रदास बाबू आज कलकत्ता पहुँच गए है। इसलिए भाभी कल सुबह—"

"सुबह ही जाना चाहती है ?"

"अधिक समय के लिए नहीं, एक बार केवल—"

मधुसूदन हाथ झटकाता हुआ बोला, "तब जायँ न ! बस अब बहुत हुआ, तुम जाओ !"

अनुमति पाते ही नवीन सरपट कमरे से बाहर निकला। पर बाहर निकलते ही मधुसूदन की आवाज सुनाई दी, "नवीन !"

नवीन को आशंका हुई कि कहीं भैया अपनी अनुमति वापस न ले लें। जैसे ही वह कमरे में पहुँचा, मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू अभी कुछ दिन अपने भैया के ही यहाँ रहेंगी, तुम इसका प्रबंध कर देना !"

नवीन को डर लगा कि कहीं भैया के इस प्रस्ताव से उसके मुख पर उत्साह का चिह्न प्रकट न हो उठे। वह ऊपर से कुछ दुविधा का-सा भाव जताकर सिर खुजलाने लगा, "बोला, "भाभी के चले जाने से सारा घर ख़ाली लगेगा।"

मधुसूदन कोई उत्तर न देकर, हुक्के की नली नीचे रखकर काम पर जुट गया। समझ गया कि प्रलोभन का रास्ता अब भी खुला है—उस ओर तनिक भी नहीं।

नवीन अत्यंत प्रसन्न होकर चला गया। मधुसूदन काम में व्यस्त हो गया। पर उस काम की धारा की बग़ल से कब और एक उलटी मानस-धारा खुल गई थी, यह बात काफी देर तक स्वयं उसके ध्यान में नहीं आई। सहसा एक बार नीली पेन्सिल प्रयोजन समाप्त न होने के पहले ही छूट्टी पा गई और हुक्के की नली मुख पर जा पहुँची। दिन में जब मधुसूदन का मन कुमुदिनी से संबंधित भावना से मुक्त हो गया था, तब पहले की ही तरह अपने ऊपर स्वयं अपना एकाधिपत्य वापस पाकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। पर रात ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों उसके मन में संदेह होता जाता था कि शत्रु अभी किला छोड़कर

भगा नहीं है। सुरंग के भीतर छिपा बैठा है।

पानी थम गया था। कृष्ण-पक्ष का चन्द्रमा बाग के एक कोने में एक पुराने पेड़ के ऊपर आकाश में उठकर गीली धरती को विह्वल कर रहा था। ठंडी हवा चल रही थी। मधुसूदन का शरीर बिस्तर के भीतर एक गरम कोमल स्पर्श पाने के लिए उत्सुक होने लगा। नीली पेंसिल पकड़कर वह फिर कागज़ों पर जुट गया। पर मन के गहन आकाश में एक बात क्षीण तथापि स्पष्ट स्वर में बज रही थी, "भाभी तुम्हारी इंतज़ार में बैठी होंगी।"

मधुसूदन ने निश्चय किया था कि एक विशेष काम आज ही रात में समाप्त कर डालेगा। कल सबेरे भी वह हो सकता था और उसे विशेष असुविधा न होती। पर अपने निश्चय को पूरा करना उसके व्यवसाय की धर्म-नीति थी। उससे जब वह किसी भी कारण से च्युत होता था तब अपने को क्षमा नहीं कर पाता था। इतने दिनों तक वह इस धर्म की रक्षा पूरी तरह से करता आया था। और उसका पुरस्कार भी उसे यथेष्ट मिला था। पर इधर दिन वाले मधुसूदन के साथ रात वाले मधुसूदन के सुर में ठीक मेल नहीं बैठ पा रहा था—एक ही वीणा के दो तारों की तरह। जिस दृढ निश्चय के साथ डैस्क के ऊपर काम में जुट पड़ा था, रात बढ़ने पर उस निश्चय के किसी एक छिद्र के भीतर से एक बात उसके कानों में भौंरे की तरह निरंतर गुन-गुन शब्द के साथ बज रही थी, "भाभी तुम्हारी इन्तज़ार में बैठी होंगी।"

वह उठ बैठा। बत्ती न बुझाकर, कागज़ों को ज्यों-का-त्यों छोड़कर सोने के कमरे की ओर चल दिया। अंत:पुर के सहन वाले जिस बरामदे से होकर तीसरे खंड में जाना होता था उसके जंगले के एक किनारे श्यामासुन्दरी नीचे फर्श पर बैठी हुई थी। चाँद उस समय मध्य आकाश में था; उसकी रोशनी उसके ऊपर छाई हुई थी। वह किसी कहानी की पुस्तक के चित्र की तरह दिखाई दे रही थी। अर्थात् वह जैसे प्रतिदिन की परिचित मानुषी नही थी। अति-परिचय के कठोर आवरण से मुक्त होकर वह जैसे एक दूरत्व के बीच बाहर निकल आई थी। वह जानती थी कि मधुसूदन इसी रास्ते से होकर सोने के कमरे में जाया करता है—उसके उधर जाने का दृश्य उसके लिए अत्यंत पीड़ादायक था, इसीलिए उसका आकर्षण भी उसके लिए इतना प्रबल था। पर इस प्रतीक्षा में केवल हृदय को व्यर्थ वेदना से कचोटने का पागलपन ही नहीं था। इसमें एक प्रत्याशा भी निहित थी—किसी क्षण कुछ घट सकने की संभावना की आशा। कभी असंभव भी संभव हो सकता है, इस आशा में वह रास्ते में जगी बैठी रहती थी।

उसकी ओर एक दृष्टि डालकर मधुसूदन ऊपर चला गया। श्यामासुंदरी अपने भाग्य को कोसती हुई, जँगले को मजबूती से पकड़कर उस पर सिर मारने लगी।

सोने के कमरे में जाकर मधुसूदन ने देखा कि कुमुदिनी उसकी प्रतीक्षा में जगी हुई नहीं बैठी है। कमरा अँधेरा था, केवल गुसलखाने के खुले दरवाजे से थोडी-सी रोशनी आ रही थी। मधुसूदन ने सोचा कि लौट चलना चाहिए, पर ऐसा कर न सका। उसने गैस की रोशनी जला दी। कुमुदिनी पलंग पर गुड़मुड़ी बाँधे सो रही थी। रोशनी जलाने पर भी उसकी नीद नहीं टूटी। उसका इस प्रकार आराम से सोना मधुसूदन को अच्छा नही लगा। उसे कुमुदिनी पर क्रोध आ रहा था। बड़ी अधीरता से मसहरी खोलकर धम से पलंग पर बैठ गया। पलंग चर-मर शब्द से जैसे काँप उठा।

कुमुदिनी चौंकती हुई उठ बैठी। उसे यही खबर थी कि आज मधुसूदन उसके पास नही आयगा। सहसा उसे देखकर कुमुदिनी के मुख पर एक ऐसे भाव की छाया अंकित हो गई कि देखकर मधुसूदन की छाती पर जैसे शूल बिंध गया। सिर पर खून चढ आया। वह बोल उठा, "मुझे तुम किसी प्रकार भी सहन नही कर पा रही हो न ?"

इस प्रकार के प्रश्न का क्या उत्तर दे, कुमुदिनी कुछ सोच ही न पाई। सचमुच मधुसूदन को देखकर उसका हृदय आतंक से काँप उठा था। तब उसका मन सतर्क नही था। जिस भावना को वह स्वयं अपने से भी छिपाये रखना चाहती थी, जिसकी प्रबलता का पूरा परिचय उसे स्वयं भी नही था, वह तब सहसा अपने सही रूप में प्रकट हो पड़ा था।

मधुसूदन खीभ-भरे स्वर में बोला, "भैया के पास जाने के लिए तुम परामर्श करना चाहती थीं न ?"

कुमुदिनी दूसरे ही क्षण उसके पाँवों पर पड़ने के लिए तैयार हो उठी थी, पर उसके मुँह से भैया का नाम सुनते ही वह सख्त हो उठी। बोली, "नहीं।"

"तुम क्या जाना नहीं चाहती हो ?"

"नहीं, मैं नहीं चाहती।"

"तुमने नवीन् को मेरे पास सिफारिश करने के लिए नही भेजा ?"

"नहीं, मैंने नही भेजा।"

"तुमने अपने भैया के पास जाने की इच्छा उसे नहीं जताई ?"

"मैंने उनसे कहा था कि मैं भैया से मिलने नही जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"यह मैं नहीं बता सकती।"

"बता नहीं सकती ? फिर तुम वही नूरनगरी चाल चलना चाहती हो ?"

"मैं तो नूरनगर की ही लड़की हूँ।"

"जाओ, वहीं के लोगों के पास जाओ ! यहाँ के योग्य तुम नहीं हो। मैंने अनुग्रह किया था, पर तुमने मर्यादा नहीं समझी। अब तुम्हें पश्चात्ताप करना होगा।"

कुमुदिनी को जैसे काठ मार गया हो। उसने कोई उत्तर नही दिया। मधुसूदन ने उसका हाथ पकड़कर एक जोर का झटका दिया। फिर बोला, "क्षमा चाहना भी नही जानती हो ?"

"किस बात के लिए ?"

"तुम यह जो मेरे पलंग पर सो पाई हो, उसके लिए।"

कुमुदिनी उसी क्षरण पलंग पर से उठकर बगल वाले कमरे में चली गई।

मधुसूदन ने बाहर वाले कमरे में जाते हुए देखा कि रास्ते में श्यामासुंदरी उसी बरामदे में औंधी लेटी हुई पडी है। उसके निकट जाकर, नीचे झुककर मधुसूदन ने उसका हाथ खीचने की चेष्टा करते हुए कहा, "क्या कर रही हो, श्यामा ?" श्यामा तुरंत उठ बैठी और मधुसूदन के दोनो पाँवों को अपनी छाती से लगाकर गद्गद् कंठ से बोली, "मुझे मार डालो तुम।"

मधुसूदन ने उसका हाथ पकड़कर उसे उठाया और कहा, "उफ़ ! तुम्हारा बदन एकदम बर्फ की तरह ठंडा हो गया है। चलो तुम्हें सुला आऊँ।" कहकर उसे अपने शाल के हिस्से से ढककर, बाएँ हाथ से उसे मज़बूती से जकड़कर सोने के कमरे में पहुँचा दिया। श्यामा ने धीरे से कहा, "तनिक बैठोगे नहीं ?"

मधुसूदन बोला, "काम है।"

रात के समय न जाने कहाँ से इतनी देर तक उस पर कौन एक भूत सवार हो गया था, जिसने उसका सारा काम ही नष्ट कर देना चाहा था। 'बहुत हुआ, अब अधिक नही'—उसने मन-ही-मन कहा। कुमुदिनी से जो अवज्ञा उसने पाई थी उसकी क्षति-पूर्ति का भंडार अन्यत्र कहीं सुरक्षित है। इतना वह समझ चुका था। प्यार के माध्यम से मनुष्य अपने जिस परम मूल्य की उपलब्धि करता है, आज रात उसीका अनुभव करने की आवश्यकता मधुसूदन को थी। श्यामासुंदरी अपना संपूर्ण जीवन और मन देकर उसकी प्रतीक्षा में बैठी है, यह आश्वासन पाकर मधुसूदन को रात में काम पर जुटने का बल मिला। जिस अमर्यादा का काँटा उसके मन में गड़ा हुआ था उसकी पीड़ा बहुत-कुछ कम हो गई।

इधर कुमुदिनी को जो धक्का लगा था उसके भीतर एक सांत्वना थी।

जब-जब मधुसूदन ने उसे प्यार जताया तब-तब कुमुदिनी के मन में एक तनाव आ जाता था। उसका परिशोध केवल प्यार के मूल्य से ही होना चाहिए, इस कर्त्तव्य-बोध से वह अत्यंत अस्थिर हो उठती थी। इस लड़ाई में कुमुदिनी के जीतने की कोई आशा नही थी। पर हार भी अशोभन है, इसलिए उसे बराबर दबाते रहने का प्रयत्न वह प्राणपण से करती आ रही थी। कल रात वह दबी हुई हार एक पल में पकड़ मे आ गई। कुमुदिनी की असावधान मनःस्थिति में मधुसूदन ने स्पष्ट देख लिया था कि कुमुदिनी की सारी प्रकृति उसकी अपनी प्रकृति के विरुद्ध है; यह बात निश्चित रूप से प्रकट हो गई, यह अच्छा ही हुआ; इसके बाद परस्पर जो कर्त्तव्य है उसे बिना किसी छल के निभा सकना अब संभव हो जायगा। मधुसूदन जब उसे चाहता है तभी समस्या उठ खड़ी होती है; वह जब क्षोभ के साथ उसे त्यागना चाहता है तभी वास्तविकता अपने सच्चे रूप मे दिखाई देती है। यह सच है कि उसे मधुसूदन के पलंग पर सोने का अधिकार नहीं है। उस पर सोकर वह केवल धोखा दे रही है। इस घर में उसका जो पद है, वह केवल विडंबना है।

आज रात वह प्रश्न बार-बार कुमुदिनी के मन में उठ रहा था—उसके लिए मधुसूदन की इस उत्सुकता का कारण क्या है? वह जो बार-बार नूरनगरी चाल की बात उठाकर उसे कोंचता रहता है उसका स्पष्ट अर्थ यह है कि कुमुदिनी से उन लोगों का एकदम प्रकृतिगत प्रभेद है, संस्कार-पार्थक्य है। पर यह होने पर भी मधुसूदन उसके प्रति प्रेम क्यों जताना चाहता है। यह प्रेम क्या किसी भी हालत में सच्चा प्रेम हो सकता है? कुमुदिनी के मन में यह निश्चित विश्वास जमा हुआ था कि आज मधुसूदन चाहे कुछ भी क्यों न सोचे, उससे उसका मन कभी नही भर सकता। जितनी जल्दी मधुसूदन यह बात समझेगा उतना ही सबके लिए हितकर होगा।

नवीन कल रात भैया से अनुमति लेकर जिस आनंद के साथ सोने गया था, आज उसमें से विशेष कुछ शेष न रहा। कल ही रात ढाई बजे मधुसूदन ने काम समाप्त करने के बाद नवीन को बुला लिया था और यह आदेश दिया था कि कुमुदिनी को विप्रदास के वहाँ भेज देना होगा। उसने यह भी कहा था कि जब तक वह स्वयं उसे बुलायगा नहीं तब तक उसके वहाँ से लौटने की कोई आवश्यकता नही है। नवीन समझ गया कि यह निर्वासन-दंड है।

आँगन से घिरे हुए चौकोर बरामदे के जिस स्थान पर कल रात श्यामा के साथ मधुसूदन की भेट हुई थी ठीक उसके सामने वाले बरामदे से नवीन का सोने का कमरा जुड़ा हुआ था। उस समय पति-पत्नी मिलकर कुमुदिनी के ही संबंध

में बातें कर रहे थे। तभी किसी के गले की आवाज सुनकर मोती की माँ ने कमरे का दरवाज़ा खोला और खोलते ही चाँदनी के प्रकाश में श्यामा के साथ मधुसूदन के मिलन का दृश्य देख लिया, वह समझ गई कि कुमुदिनी के भाग्य के जाल में उस रात चुपचाप और एक मजबूत गाँठ पड़ गई।

उसने नवीन से कहा, "ठीक इस संकट के समय क्या दीदी का चले जाना उचित होगा ?"

नवीन बोला, "इतने दिन तक जब भाभी इस घर में नही थी तब यह बात इतनी दूर तक नहीं पहुँच पाई थी। भाभी है इसलिए यह कांड घटा है।"

"यह क्या कह रहे हो तुम !"

"भाभी ने जिस सोई हुई भूख को जगा दिया उसके लिए पर्याप्त अन्न वह नही जुटा पाई, इसी कारण वह इस अनर्थ पर तुल गई है। मै तो कहता हूँ कि अभी भाभी का दूर ही रहना अच्छा है, इससे चाहे और कुछ न हो, कम-से-कम शांति से तो वह रह पायेंगी।"

"तब क्या यह कांड इसी तरह चलता रहेगा ?"

"जिस आग को बुझाने का कोई उपाय नही है उसे स्वयं जलकर राख होने तक ताकते रहना होगा।"

दूसरे दिन हाबलू सब समय कुमुदिनी के साथ-साथ फिरता रहा। जब गुरु जी ने उसे पढ़ने के लिए बाहर के कमरे में बुलाया तब वह कुमुदिनी के मुँह की ओर ताकने लगा। यदि कुमुदिनी उससे जाने को कहती तो उसे जाना ही पड़ता, पर उसने बैरा से कहला दिया कि आज हाबलू की छुट्टी है।

नई बहू कुछ दिनो के लिए मायके जा रही है, इस बात का अनुभव कुमुदिनी की यात्रा से किसी को नही हुआ। आज जैसे यह घर उसे खोने बैठा था। जिस चिड़िया को पिंजरे में बंद कर दिया गया था, आज दरवाज़ा तनिक खुलते ही वह उड़ पड़ी। लगता था, जैसे अब फिर कभी वह पिंजरे में नहीं घुसेगी।

नवीन बोला, "भाभी, लौटने में देर न करना—यह बात यदि मै संपूर्ण मन से कह पाता तो बड़ा संतोष होता, पर मुँह से यह बात जैसे निकल ही नहीं पाती। जिन लोगों के बीच मे तुम्हारा सच्चा सम्मान है, वहीं जाकर रहो। यदि किसी कारण से कभी नवीन की आवश्यकता पड़े तो याद करना।"

मोती की माँ ने अपने हाथ से तैयार की गई अमावट, अचार आदि चीजें एक हँडिया में सजाकर पालकी में रख दीं। वह विशेष कुछ न बोली। पर उसके मन के भीतर उसकी विशेष आपत्ति थी। जब तक बाधा स्थूल थी,

जब तक मधुसूदन ने कुमुदिनी को बाहर से अपमानित किया था, तब तक मोती की माँ का सारा मन कुमुदिनी के पक्ष में था; पर जो बाधा सूक्ष्म और मर्मगत है—विश्लेषण द्वारा जिसका ठीक-ठीक निर्धारण नही किया जा सकता, उसीकी शक्ति सबसे अधिक प्रबल है, यह बात मोती की माँ की समझ में नही आ पाती थी। पति जिस क्षण प्रसन्न हो, उस क्षण को पत्नी सहज ही अपना सौभाग्य समझे, मोती की माँ इसी बात को स्वाभाविक समझती थी। इसके व्यतिक्रम को वह ज्यादती मानती थी। यहाँ तक कि नवीन के मन में अब भी भाभी के लिए दर्द है, इस बात से वह प्रसन्न नहीं थी। कुमुदिनी की प्रकृतिगत वितृष्णा एकदम अकृत्रिम है, वह उसका झूठा अहंकार नहीं है—बल्कि इस बात से कुमुदिनी को स्वयं अपने से विकट विरोध है, यह बात साधारणतः स्त्रियों की समझ में सहज में नहीं आ सकती। जो चीनी लड़की प्रथा के अनुसार अपना पाँव छोटा करने का विरोध न कर पाई, वह यदि सुनती कि संसार में ऐसी भी लड़की है जो इस पद-संकोचन की पीड़ा को स्वीकार करना अपमानजनक समझती है तब निश्चय ही वह उसकी मानसिक कुंठा को हँसकर उड़ा देती। वह निश्चित रूप से इसे सिड़ीपन समझती। जो बात निगूढ़ रूप से स्वाभाविक है ऐसी स्त्रियाँ उसीको अस्वाभाविक समझती है। मोती की माँ एक दिन कुमुदिनी के दुःख से सबसे अधिक दुखी हुई थी, शायद इसीलिए आज उसका मन इतना कठोर होने लगा था। प्रतिकूल भाग्य जब वरदान देने आता है तब जो स्त्री उसके चरणों पर माथा टेककर उस वर को ग्रहण नहीं कर पाती उसके प्रति ममता का अनुभव करना मोती की माँ के लिए असम्भव था—यहाँ तक क्षमा करना भी।

४६

घर के सामने पहुँचते ही पालकी का दरवाज़ा तनिक खोलकर कुमुदिनी ने ऊपर की ओर देखा। विप्रदास इस समय नित्य रास्ते के किनारे वाले बरामदे में बैठकर अखबार पढ़ा करता था। पर आज वहाँ कोई नहीं था। कुमुदिनी आज वहाँ आयगी, यह समाचार इस घर में नहीं पहुँचाया गया था। पालकी के साथ महाराजा के तग़मे वाले दरबान को देखकर इस घर के दरबान व्यस्त हो उठे। वे समझ गए कि दीदी रानी आ गई है। बाहर वाले घर का आँगन पार करके पालकी अंतःपुर की ओर चली जा रही थी। कुमुदिनी उसे रोककर बाहर

वाली सीढ़ियों से बड़ी तेज़ी के साथ ऊपर चली गई। वह चाहती थी कि और किसी से भेंट होने के पहले वह भैया के दर्शन करे। वह निश्चित रूप से यह जानती थी कि बाहर के विश्राम-कक्ष में ही रोगी के रहने की व्यवस्था की गई है। वहाँ की खिड़की से बाग़ के कृष्ण चूड़ा, कांचन और पीपल के पेड़ों से घिरा एक कुंज दिखाई देता है। सबेरे की धूप पेड़ों की डालों से छनकर उसी कमरे में सबसे पहले प्रवेश करती है। वही कमरा विप्रदास को पसंद था।

सबसे पहले उनका कुत्ता टाम दौड़ा आया और कूदता हुआ उसके शरीर से लिपट पड़ा। प्यार से भूँककर दुम हिलाकर उसने कुमुदिनी को अस्थिर कर दिया। उसके साथ-ही-साथ वह कूदता-फाँदता और चिल्लाता हुआ चला। विप्रदास एक कौच की पीठ के सहारे आधा लेटा हुआ था और उसके पाँवों के ऊपर एक चादर खिंची हुई थी। एक पुस्तक हाथ में लेकर उसने दाएँ हाथ को पलंग पर फैला रखा था। लगता था जैसे थक जाने पर उसने कुछ पहले ही पढ़ना बंद कर दिया था। चाय का प्याला और खा चुकने के बाद बचे हुए रोटी के टुकड़े सहित एक रकाबी फ़र्श पर पड़ी हुई थी। सिरहाने के पास ताक पर रखी हुई पुस्तकें अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ी हुई थीं। रात में जो लैम्प जलाया गया था वह धुएँ के दाग़ के साथ कमरे के एक कोने में अभी पड़ा हुआ था।

कुमुदिनी विप्रदास के मुँह की ओर देखकर चौंक उठी। उसकी ऐसी विवर्ण और रुग्ण मूर्ति इसके पहले उसने कभी नहीं देखी थी। उस विप्रदास और इस विप्रदास के बीच न जाने कितने युगों का अंतर आ गया था। भैया के पाँवों के नीचे सिर रखकर वह रोने लगी।

"अरे कुमू, तू आ गई है ? आ, बैठ, इधर आ !" कहकर विप्रदास ने उसे अपने निकट खींच लिया। यद्यपि विप्रदास ने अपने पत्र में उसे आने के संबंध में एक प्रकार से मना ही किया था, फिर भी उसके मन में आशा थी कि वह आयगी। वह आ पाई है, यह देखकर उसे लगा कि शायद इसमें बाधा की कोई बात पहले ही से नहीं थी—तब तो कुमुदिनी के लिए घर-गिरस्ती सहज सरल हो उठी है। पालकी और आदमी इन्हींकी ओर से भेजे जाने चाहिए थे—यही नियम था। पर ऐसा न होने पर भी कुमुदिनी जो आ पहुँची, इससे लगा कि कुमुदिनी को वहाँ यथेष्ट स्वाधीनता प्राप्त है—यद्यपि मधुसूदन के घर में इसकी कोई आशा विप्रदास ने नहीं की थी।

कुमुदिनी अपने दोनों हाथों से विप्रदास के बिखरे बालों को ठीक करती हुई बोली, "भैया, तुम्हारा चेहरा ऐसा कैसे हो गया है ?"

"इधर मेरा चेहरा ठीक होने योग्य तो कोई घटना नहीं घटी—पर तू

अपना हाल बता, तेरे चेहरे का यह क्या हाल है ? एकदम रंग ही जैसे उड़ गया है।"

इस बीच ख़बर पाकर क्षेमा बुआ आ पहुँची। साथ ही दरवाज़े के पास नौकर-नौकरानियों की भीड़ लग गई। क्षेमा बुआ को प्रणाम करते ही उन्होंने उसे दोनो बाँहों में भर लिया और उसका कपाल चूमा। नौकर-नौकरानियो ने भी आकर प्रणाम किया। सबसे कुशल-समाचार की बातें हो जाने पर कुमुदिनी बोली, "बुआ, भैया का चेहरा तो एकदम मुरझा गया है।"

"मुरझायगा क्यों नहीं ! तुम्हारे हाथ की सेवा न पाने से उसका शरीर किसी भी हालत में अच्छा ही नहीं होना चाहता। कितने ही दिनों का पुराना अभ्यास है न !"

विप्रदास बोला, "बुआ, कुमू से खाने को नहीं कहोगी ?"

"खायगी क्यों नहीं ! यह भी क्या तुम्हें कहना होगा ! उन लोगों के यहाँ से आए हुए पालकी ढोने वाले आदमियों और दरबान को बिठा आई हूँ। जाकर उन्हें खिला आती हूँ। तुम दोनों भाई-बहन तब तक बातें करो ! मैं जाती हूँ।"

विप्रदास ने इशारे से क्षेमा बुआ को निकट बुलाकर उनके कान में कहा। कुमुदिनी समझ गई कि उनके घर से आए हुए लोगों की विदाई किस रूप में करनी होगी यही परामर्श चल रहा है। इस परामर्श के लिए आज वह स्वयं दूसरे पक्ष की हो गई है, इसलिए उससे कोई राय नही ली जा रही है। यह बात उसे तनिक भी अच्छी नही लगी। वह इसका बदला चुकाने पर तुल गई। इस घर मे अपना सदा का स्थान और अधिकार फिर से प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया।

पहले उसने भैया के खानसामा गोकुल के कान में फुसफुसाकर उसे कुछ आदेश दिया, और उसके बाद वह अपनी रुचि के अनुसार घर की सब चीज़ों को सँजोने लगी। प्लेट, प्याला, लैम्प, सोडावाटर का ख़ाली बोतल, टूटी कुर्सी, मैले तौलिए और बनियाइन आदि चीज़ों को कमरे से हटाकर बाहर वाले बरामदे मे रख दिया। ताक पर रखी पुस्तकों को ठीक से सजाकर रखा। भैया के हाथ के निकट एक तिपाई रखकर उस पर पढ़ने की किताबें क़रीने से रख दी। उसी तरह कलमदान, ब्लाटिंग-पैड, शीशे की सुराही, गिलास, एक छोटा शीशा, कंघी और ब्रुश—इन चीज़ों को भी सजाकर पास ही रखा।

इस बीच गोकुल पीतल के एक 'जग' मे गरम पानी, पीतल की शिलफची और एक साफ़ तौलिया ले आया और बेंत के एक मोढ़े पर उन्हें रख दिया। भैया की सम्मति की तनिक भी प्रतीक्षा किये बिना कुमुदिनी ने तौलिया भिगोकर

विप्रदास का मुँह-हाथ पोंछकर उसके बालों पर कंघी करनी शुरू कर दी। विप्रदास बच्चों की तरह चुपचाप सहन करता रहा। कब कौन दवा खानी होगी और पथ्य का क्या नियम बँधा हुआ है, यह मालूम करके वह भैया की सेवा में इस तरह जुट गई जैसे जीवन में इसके सिवा उस पर और कोई दायित्व ही न हो।

विप्रदास मन-ही-मन सोचने लगा कि इन सब बातों का अर्थ क्या है? उसने सोचा था कि कुमू उससे मिलने आई है और फिर चली जायगी। पर ये सब ढंग तो कुछ दूसरे ही मालूम होते थे! वह जानना चाहता था कि ससुराल मे कुमुदिनी की कैसी निभ रही है, पर स्पष्ट रूप से पूछने में उसे संकोच हो रहा था। कुमु अपने-आप बतायगी, इस आशा में चुप बैठा रहा। केवल एक बार धीरे से उसने पूछा, "आज तुझे किस समय जाना होगा?"

कुमुदिनी बोली, "आज नहीं जाना है।"

विप्रदास ने आश्चर्य से पूछा, "क्या तुम्हारे ससुराल वाले इस पर कोई आपत्ति नहीं करेंगे?"

"नहीं, मेरे पति की अनुमति है।"

विप्रदास चुप हो रहा। कुमुदिनी कमरे के कोने वाली एक मेज़ पर चादर बिछाकर उस पर दवाओं की शीशियाँ, बोतल आदि सँजोकर रखने लगी। कुछ देर बाद विप्रदास ने पूछा, "तब क्या तू कल जायगी?"

"नहीं, अभी मैं कुछ दिन तुम्हारे ही साथ रहूँगी।"

टाम (कुत्ता) कौच के नीचे शांत भाव से सोने की योजना बना रहा था। कुमुदिनी ने उसे प्यार जताकर उसके प्रीति-उच्छ्वास का बाँध ही तोड़ दिया। वह उछलकर कुमुदिनी की गोद में अपने दोनों पाँव रखकर, प्यार-भरे मीठे-स्वर में बातें करने लगा। विप्रदास समझ गया कि कुमुदिनी ने सहसा टाम से यह खेल आरंभ करके उसकी ओट मे अपने को छिपा लिया है।

कुछ देर बाद टाम से खेलना बंद करके कुमुदिनी ने ऊपर की ओर मुँह करके कहा, "भैया, तुम्हारा बार्ली खाने का समय हो गया है, ले आती हूँ।"

"नहीं, अभी समय नही हुआ है" कहकर विप्रदास ने उसे पलंग की बगल-वाली चौकी पर बैठने के लिए इशारा किया। अपने हाथ पर उसका हाथ रख-कर बोला, "कुमू, मुझसे साफ़-साफ़ बता कि ससुराल में तुम्हारी कैसी पट रही है?"

कुमुदिनी तत्काल कुछ बोल न पाई। सिर नीचा किये बैठी रही। और फिर देखते-देखते उसका चेहरा लाल हो आया। बचपन की तरह विप्रदास की

गोद में मुँह छिपाकर रो पड़ी। बोली, "भैया, मैंने सब-कुछ ग़लत समझा। मै कुछ भी नहीं जानती थी।"

विप्रदास धीरे-से कुमुदिनी के सिर पर हाथ फेरने लगा। कुछ देर बाद बोला, "मैं तुझे ठीक तरह से समझा-बुझा न पाया। माँ होती तो वह तुझे ससुराल के लिए ठीक तरह से तैयार कर पाती।"

कुमुदिनी ने कहा, "मै जीवन-भर केवल तुम्ही लोगों को जानती रही। दूसरी जगह में यहाँ से इतना अधिक अंतर हो सकता है यह मै नही जानती थी। बचपन से मैंने जो-कुछ भी सोचा-समझा है वह सब तुम्हीं लोगो के साँचे मे ढलकर। इसीलिए मेरे मन में कभी तनिक भी भय की भावना नहीं जगी। मैं जानती हूँ कि पिता जी ने माँ को अनेक बार कष्ट दिया, पर वह केवल उनके स्वभाव की उग्रता थी, उसकी चोट केवल बाहर थी, भीतर नही। पर यहाँ तो बराबर भीतर-ही-भीतर मेरा अपमान होता रहता है।"

विप्रदास ने कुछ न बोलकर केवल एक लंबी साँस खींची और चुप रहकर सोचने लगा। मधुसूदन उन लोगों से एकदम भिन्न जगत् का आदमी है, यह बात वह विवाह की तैयारियों के समय से ही समझ गया था। उसीकी दुःसह चिंता से उसका शरीर किसी तरह भी स्वस्थ नहीं हो पाता था। इस दिङ्नाग के स्थूल हस्तावलेप से कुमुदिनी का उद्धार करने का कोई उपाय वह सोच नही पा रहा था। सबसे बड़ी मुश्किल यह थी कि इस आदमी से लिये गए कर्ज़ के कारण उसकी सारी संपत्ति बंधक में थी। इस अपमानित संबंध का धक्का कुमुदिनी को भी स्वाभाविक महसूस हो रहा था। इतने दिनो तक रोग-शय्या पर पड़े-पड़े विप्रदास सब समय केवल यही एक बात सोचता रहता था कि मधुसूदन के ऋण के बंधन से किस प्रकार छुटकारा पायगा। उसकी कलकत्ता आने की इच्छा नहीं थी, इस आशंका से कि कहीं कुमुदिनी के ससुराल वालों को उन लोगों का सहज व्यवहार असंभव न हो उठे। कुमुदिनी पर उसके स्वाभाविक स्नेह का जो अधिकार है, कहीं वह पग-पग पर अवमानित न हो उठे। इसीलिए उसने यह निश्चय किया था कि नूरनगर में ही रहेगा, पर किसी दूसरे महाजन से कर्ज़ लेने की व्यवस्था करने के लिए उसे कलकत्ता जाने को विवश होना पड़ा। वह जानता था कि यह काम अत्यन्त दुःसाध्य है, इसी कारण उसकी दुश्चिन्ता का बोझ उसकी छाती को दबोचे हुए था।

कुछ ही देर बाद कुमुदिनी विप्रदास की दूसरी ओर टेढ़ी गर्दन करके बोली, "अच्छा भैया, पति के प्रति मैं जो किसी भी प्रकार अपने मन को प्रसन्न भाव से नही लगा पाती हूँ, यह क्या मेरा पाप है?"

"कुमू, तू तो जानती है कि पाप-पुण्य के संबंध मे मेरा मतामत शास्त्र से मेल नहीं खाता।"

कुमुदिनी अनमने भाव से एक सचित्र अँगरेज़ी मासिक-पत्र के पन्ने उलटने लगी। विप्रदास बोला, "भिन्न-भिन्न मनुष्यों का जीवन घटनाओं और परिस्थितियों में इतना भिन्न हो सकता है कि अच्छे-बुरे के साधारण नियमों को बड़ी मजबूती से कसकर बाँधने पर वे केवल नियम ही रह जाते हैं, धर्म नहीं बन पाते।"

कुमुदिनी ने मासिक पत्र की ओर आँखे नीची करके कहा, "जिस प्रकार मीराबाई ने अपने जीवन में अनुभव किया था।"

कुमुदिनी के भीतर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का द्वन्द्व जब भी तीव्र हो उठता था तभी वह मीराबाई की बात सोचने लगती थी। उसके मन मे इस बात की एकांत उत्सुकता रहती थी कि कोई उसे मीराबाई का आदर्श समझा दे।

बलपूर्वक संकोच त्यागकर कुमुदिनी कहती चली गई, "मीराबाई ने अपने वास्तविक पति को अंतर में पा लिया था, इसी कारण वह समाज द्वारा अनुमोदित पति को त्यागने में समर्थ हुई थी। पर संसार की अवज्ञा करने का उतना बडा अधिकार क्या मुझे है?"

विप्रदास बोला, "कुमू, अपने देवता को तो तूने समस्त अंतर से ही पाया है।"

"एक दिन मै भी ऐसा ही सोचती थी, पर जब संकट ने आ घेरा तब मैने देखा कि मेरे प्राणों का रस ही जैसे सूख गया है। इतने प्रयत्न करने पर भी जैसे अपने अतर में उनकी यथार्थ उपलब्धि नहीं कर पाती हूँ। सबसे बडा दुःख मुझे इसी बात का है।"

"कुमू, मन के भीतर ज्वार-भाटा चलता रहता है। इसलिए तू इस बात की चिंता तनिक भी न किया कर। बीच-बीच में रात आती रहती है, पर उससे दिन का महत्त्व तो नही हो जाता। तूने जो-कुछ भी पाया है वह तेरे प्राणों के साथ एक-रूप हो गया है।"

"यही आशीर्वाद दो भैया, कि अपने सच्चे देवता को खोऊँ नही। वह निर्दय बनकर दुख देते है, पर केवल इसलिए कि इस उपाय से ही वह अपने को देंगे। भैया, अपने लिए तुम्हें चिंतित करके मैं तुम्हें थका रही हूँ।"

"कुमू, जब तू बच्ची थी तभी से तेरे संबंध में सोचने का मेरा अभ्यास बन गया है। आज यदि तुम्हारे संबंध में कोई बात जान न पाऊँ, तुम्हारी चिंता न कर पाऊँ, तो सब-कुछ सूना लगने लगता है। उस सूनेपन में टटोलने के कारण ही तो मन थक गया है।"

कुमुदिनी विप्रदास के पाँवों को सहलाती हुई बोली, "मेरे लिए तुम कुछ भी चिंता न किया करो, भैया ! जो मेरी रक्षा करेंगे वे मेरे भीतर ही है, इसलिए संकट की कोई आशंका मुझे नहीं है ।"

"अच्छा, ये सब बातें अभी रहने दे । तुझे जिस तरह मै पहले गीत सिखाया करता था, जी चाहता है कि आज भी उसी तरह सिखाऊँ ।"

"तुम्हारा वह सिखाना ही मेरे लिए बड़ा हितकर सिद्ध हुआ है, उसने मुझे जिलाया है । पर आज नहीं, पहले अपने शरीर में कुछ ताक़त आने दो ! अच्छा यह होगा कि आज मैं स्वयं तुम्हे एक गीत सुनाऊँ ।"

भैया के सिरहाने के निकट बैठकर कुमुदिनी धीरे-से गाने लगी :

पिया घर आये, सोइ पीतम पिय प्यार रे !
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण-कमल बलिहार रे' !

विप्रदास आँखे बंद किये सुनने लगा । गाते-गाते कुमुदिनी की आँखे एक अपरूप दर्शन से भर आईं । भीतर का आकाश उज्ज्वल हो उठा । प्यारे पीतम घर आए हैं, उनके चरण-कमलों को वह जैसे अपने हृदय से छू पा रही है । उसका अन्तर-लोक, जहाँ प्रियतम से मिलन होता है, एकदम सत्य हो उठा, गीत गाते-गाते वह वहीं पहुँच गई थी । 'चरण-कमल बलिहार रे'—उन दो प्यारे चरणों ने जैसे उसके सारे जीवन को छा लिया । उनकी सीमा का कहीं अंत नहीं था—इसके बाद अब संसार में दुःख और अपमान के लिए जगह ही कहाँ रह गई ! 'पिया घर आयँ', इससे अधिक और चाहिए ही क्या ! यह गीत यदि कभी समाप्त न हो तब तो कुमुदिनी सदा के लिए जी गई !

गोकुल टोस्ट और एक प्याला बार्ली तिपाई के ऊपर रख गया । गीत बंद करके कुमुदिनी बोली, "भैया, कुछ दिन पहले तक मैं मन-ही-मन गुरु को खोजती रहती थी, पर अब सोचती हूँ कि मुझे गुरु की आवश्यकता ही क्या है ? तुम तो मुझे गीत-मंत्र पहले ही दे चुके हो !"

"कुमू, मुझे लज्जित मत कर ! मेरे समान गुरु रास्ते में चलते-फिरते हुए पाए जाते है । वे लोग दूसरों को जो मंत्र देते है उसका अर्थ स्वयं ही नहीं समझते । अच्छा, अब यह बता कि तू यहाँ कितने दिन ठहर पायगी ?"

"जब तक वहाँ से बुलावा नहीं आता ।"

"तूने क्या यहाँ आने की इच्छा जताई थी ?"

"नहीं, मैंने नहीं चाहा था ।"

"तब इसका अर्थ क्या है ?"

"अर्थ की बात सोचने से कोई लाभ नहीं है, भैया! चेष्टा करके भी मैं समझ नही पाऊँगी। तुम्हारे पास आ गई हूँ, इतना ही काफ़ी है। जितने दिन भी यहाँ रह सकूँ उतना ही अच्छा है। भैया, तुमने अभी तक कुछ भी नहीं खाया, लो अब खाओ!"

नौकर ने आकर सूचना दी कि मुखर्जी महाशय आए हुए है। विप्रदास हड़बडाता हुआ बोला, "उन्हें यहाँ बुला लो!"

४७

कालू ने ज्यों ही कमरे में पाँव रखा त्यो ही कुमुदिनी ने उसे प्रणाम किया।

कालू बोला, "छोटी रानी, आ गई हो? तब तो अब भैया को स्वस्थ होने में देर न लगेगी।"

कुमुदिनी की आँखें डबडबा आईं। आँसू किसी तरह रोककर बोली, "भैया, अपनी बार्ली में नींबू नहीं निचोड़ोगे?"

विप्रदास ने उदासीन भाव से हाथ उलटाया, जैसे यह जताना चाहता हो कि न निचोड़ने से भी क्या हानि होगी। कुमुदिनी जानती थी कि विप्रदास बार्ली पसंद नहीं करता, इसीलिए जब भी वह बार्ली देती थी तभी उसमें तनिक नींबू का रस निचोड़कर और थोड़ा-सा गुलाब-जल छोड़कर, बरफ़ डालकर उसे शरबत की तरह बना डालती थी। उसका आयोजन आज नही था, फिर भी विप्रदास ने अपनी इच्छा किसी के आगे प्रकट नही की। जो-कुछ भी मिलता था उसीको अरुचि के साथ ले लेता था।

कुमुदिनी बार्ली ठीक तरह से तैयार करने के लिए चली गई।

विप्रदास ने चिन्तित भाव से पूछा, "कालू भैया, क्या समाचार है? बताओ!"

"तुम्हारे अकेले के दस्तखत पर रुपया देने को कोई तैयार नहीं होता। सुबोध के दस्तखत की भी आवश्यकता बताते हैं। मारवाड़ी महाजनों में से कोई-कोई देने को तैयार अवश्य है, पर वह बहुत ब्याज चाहते हैं, जो हम लोगों की हैसियत के बाहर है।"

"कालू भैया, सुबोध को आने के लिए तार भेजना होगा। अधिक देर करने से काम नहीं चलेगा।"

"मुझे भी अच्छा नहीं लग रहा है। उस बार तुम्हारी अँगूठी बेचकर जो रुपया मिला था उससे मधुसूदन के मूलधन का एक अंश चुकाने गया, पर वह उसे लेने पर किसी तरह भी राजी न हुआ। तभी मै समझ गया कि मामला आसान नही है। वह अपनी मर्ज़ी से न जाने कब किस दिन सहसा फाँस कस देगा।"

विप्रदास चुपचाप सोचने लगा।

कालू बोला, "भैया, छोटी रानी जो आज सुबह अचानक वहाँ से चली आई, क्या झगड़कर तो नहीं आई ? मधुसूदन को नाराज़ करने की स्थिति इस समय हम लोगों की नहीं है, यह बात ध्यान में रखनी होगी।"

"कुमू का कहना है कि वह अपने पति की अनुमति से ही आई है।"

"उस अनुमति का रूप ठीक कैसा है, यह जाने बिना मन निश्चिंत नहीं हो पा रहा है, उसके साथ कितनी सावधानी बरतनी होती है, यह तुम्हें क्या समझाऊँ। गुस्से से जब सारा शरीर जलने लगता है तब भी मैने ठंडा होकर सब-कुछ चुपचाप सहा है—ठीक गौरीशंकर की चोटी की तरह, जिसकी बर्फ़ दोपहर की धूप में भी नहीं पिघलती। एक तो वह महाजन है दूसरे तुम्हारा बहनोई—इन संबंधों के बीच में सँभलकर चलना क्या आसान है ?"

विप्रदास कोई उत्तर न देकर चुपचाप सोचने लगा।

कुमुदिनी बार्ली लेकर आई। विप्रदास के मुँह की ओर प्याला बढ़ाती हुई बोली, "भैया, लो खा लो !"

विप्रदास की विचार-मग्नता भंग हुई और वह चौंक-सा उठा। कुमुदिनी समझ गई कि वह अभी तक किसी गंभीर चिंता में डूबा हुआ है।

कालू जब कमरे से बाहर चला गया तब कुमुदिनी उसके पीछे-पीछे चलती हुई, बरामदे में उसे घेरकर बोली, "कालू भैया, मुझे सारी बाते बतानी होंगी।"

"क्या बात बतानी होगी, दीदी रानी ?"

"तुम लोग किसी एक बात को लेकर चिंतित दिखाई देते हो।"

"विषय-संपत्ति हो और चिंता न हो, संसार में यह भी क्या कभी संभव हो सकता है ? वह तो कँटीले पेड़ का फल है, भूख की चोट से उसे तोड़कर खाना भी पड़ता है, और तोड़ते हुए काँटों से शरीर छिद भी जाता है।"

"ये सब बातें बाद मे होंगी। पहले मुझे यह बताओ कि हुआ क्या है ?"

"विषय-संपत्ति की बातें स्त्रियों को बताना मना है।"

"मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि तुम लोगों की क्या बातें चल रही थी। बताऊँ ?"

"अच्छा बताओ !"

"मेरे पति से भैया ने जो रुपया उधार लिया है, उसी संबंध में।"

कोई उत्तर न देकर कालू अपनी दो बडी-बड़ी आँखों से विस्मय और कौतुक-भरी मुसकान मुख पर झलकाता हुआ कुमुदिनी की ओर देखता रहा।

"तुम्हे मुझे बताना ही होगा कि मैंने ठीक बात बताई है या नहीं।"

"भैया की ही बहन हो न, बात बिना बताए ही समझ लेती हो।"

ब्याह के बाद पहले ही दिन जब मधुसूदन ने भैया के महाजन की हैसियत से डाट-फटकारकर बातें की थीं, उसी दिन कुमुदिनी भैया के साथ पति के संबंध की गौरवहीनता की बात समझ गई। तब से प्रतिदिन वह एकांत मन से यह इच्छा करती आई थी कि वह संबंध समाप्त हो जाय। विप्रदास के मन में वह असम्मान गड़ा हुआ था, कुमुदिनी को इस बारे में तनिक भी सन्देह नही था। उस दिन नवीन ने जब विप्रदास के पत्र की व्याख्या की थी, तभी कुमुदिनी समझ गई थी कि इस सबके मूल मे वही लेन-देन का संबंध है। भैया का शरीर क्यों इतना थका हुआ है, किस विशेष काम की ताड़ना से वह कलकत्ता चले आए हैं, यह बात स्पष्ट समझने में कुमुदिनी को देर न लगी।

वह बोली, "कालू भैया, मुझसे मत छिपाओ, भैया निश्चय ही रुपया क़र्ज लेने आए है।"

"कर्ज़ करके ही तो क़र्ज़ चुकाना होता है। रुपया आकाश से तो नहीं गिरता। नाते-रिश्तेदारों का ऋणी बने रहना तो अच्छा नहीं है।"

"यह तो ठीक ही है। तो रुपयों का प्रबंध हो गया है ?"

"चक्कर काट रहा हूँ, हो ही जायगा, चिता की कोई बात नही है।"

"मैं जानती हूँ, कही प्रबन्ध नही हो सकता।"

"अच्छा, छोटी रानी, तुम जब सभी-कुछ जानती हो तब मुझसे पूछती क्यों हो ? बचपन में एक दिन मेरी मूँछें खींचते हुए तुमने पूछा था, मूँछें कैसे उगती है ? तब उत्तर में मैंने कहा था कि समय पर मैंने मूँछों के बीज बो दिए थे। बस इतने ही से तब प्रश्न का समाधान हो गया था। इस समय यदि वह प्रश्न किया जाता तब उत्तर देने के लिए डॉक्टर को बुलाना पडता। सभी बातें तुम्हे स्पष्ट रूप से बतानी ही होंगी, ऐसा नियम संसार का नहीं है।"

"मै तुमसे कहे देती हूँ, कालू भैया, भैया से सम्बन्धित सभी बाते तुम्हे मुझे बतानी होगी।"

"भैया की मूँछें कैसे उग आई, यह भी ?"

"देखो, इस तरह से तुम असलियत छिपा नही पाओगे। भैया का मुँह देखते ही मैं समझ गई थी कि रुपयों का कोई प्रबन्ध नही हो सका है।"

"यदि प्रबन्ध नहीं भी कर पाया तो यह जानकर तुम्हे क्या लाभ होगा ?"

"यह मै नहीं बता सकती, पर मुझे जानना ही होगा। रुपया तुम्हें उधार नहीं मिला क्या ?"

"नही, नहीं मिला।"

"क्या आसानी से मिल न सकेगा ?"

"मिलेगा अवश्य, पर आसानी से नही। इसलिए, दीदी रानी, तुम्हारी बातो का उत्तर देने की चेष्टा छोड़कर यदि मै रुपया प्राप्त करने के प्रयत्नों मे जुट जाऊँ तो काम कुछ आगे बढ सकता है। मैं चला।"

कुछ दूर तक चलकर कालू फिर लौट आया और बोला, "छोटी रानी, जो तुम आज यहाँ चली आई हो, उसमे कोई गड़बड़ तो नही है ? ठीक बताना !"

"है कि नही, यह मैं ठीक से नही जानती।"

"पति की अनुमति से तो आई हो न ?"

"उन्होने अनचाहे ही अनुमति दे दी।"

"नाराज होकर ?"

"यह भी मै ठीक नहीं जानती। उन्होंने कहा है कि जब तक बुलाया नही जाय तब तक मेरे लौटने की कोई आवश्यकता नही है।"

"यह कोई बात नही है। तुम्हे स्वयं अपने ही से उसके पहले ही चले जाना होगा।"

"जाने से आदेश-पालन नहीं होगा।"

"अच्छा, वह मैं देख लूँगा।"

भैया आज जो इस विकट संकट मे पडे हुए है उसमें सारा अपराध उसीका है, कुमुदिनी यह बात बिना माने हुए रह न सकी। उसका जी चाहता था कि स्वयं अपने को खूब मारे। उसने सुना था कि कुछ संन्यासी ऐसे भी होते है जो काँटों की शय्या पर सोते है। वह उसी तरह सोने को राज़ी थी, यदि ऐसा करने से कोई फल प्राप्त होने की सम्भावना होती। यदि कोई योगी या सिद्ध पुरुष उसे सही रास्ता दिखा सकता तो वह चिरकाल के लिए उसके हाथ बिक जाने को तैयार थी। ऐसा व्यक्ति निश्चय ही कहा-न-कहीं होगा, पर कहाँ ढूँढ़ा जाय

उसे। यदि वह नारी न होती तो कोई-न-कोई उपाय वह खोज ही निकालती। पर मँझले भैया क्या कर रहे हैं? अकेले भैया के कन्धों पर सारा बोझ डालकर कैसे वह अभी तक इंगलैंड में निश्चित बैठे है ?

कमरे में प्रवेश करने पर कुमुदिनी ने देखा, विप्रदास कमरे की छत की ओर मुँह किये चुपचाप पलंग पर लेटा हुआ है। इस प्रकार कैसे उनका स्वास्थ्य सुधरेगा ? कुमुदिनी का जी चाहता था कि विरोधी भाग्य के दरवाज़े पर सिर पीटकर मर जाय।

भैया के सिरहाने के निकट बैठकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कुमुदिनी ने कहा, "मँझले भैया कब आयँगे ?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"उन्हें वापस आने के लिए लिखो न !"

"क्यों, बताओ।"

'परिवार का सारा दायित्व अकेले तुम्हारे ही कन्धों पर पडा है, इसे तुम कैसे सँभालोगे ?"

"किसी का होता है दावा, और कोई होता है दायी। इन दोनों को लेकर संसार चलता है। मैने दायी बनना ही स्वीकार किया है, अपना यह अधिकार मैं दूसरे किसी को क्यों सौपूँ ?"

"यदि मैं पुरुष होती तो ज़बरदस्ती तुमसे तुम्हारा यह अधिकार छीन लेती।"

"तब तो तुम निश्चय ही समझ गई हो कि दायित्व का भार सिर पर लेने में एक प्रलोभन होता है। तू स्वयं वह भार ले नहीं पा रही है इसीलिए मँझले भैया द्वारा अपनी यह साध पूरी करना चाहती है, तब मैंने ही क्या अपराध किया है ?"

"भैया, तुम क्या रुपया उधार लेने यहाँ आए हो ?"

"तुमने कैसे यह जाना ?"

"तुम्हारा चेहरा देखते ही मैं समझ गई थी। अच्छा, इसमें मैं क्या कुछ भी नही कर सकती हूँ ?"

"किस रूप में, बताओ !"

"यही मान लो कि किसी दस्तावेज में सही करके। मेरे हस्ताक्षर का क्या कोई मूल्य ही नहीं है ?"

"उसका बहुत बड़ा मूल्य है, पर केवल हम लोगों के लिए—महाजन के लिए नहीं।"

"तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ भैया, मुझे बताओ कि मैं क्या कर सकती हूँ ?"

"लक्ष्मी रानी की तरह शांत होकर बैठी रहो, धैर्य के साथ समय की प्रतीक्षा करो ! याद्र रखो, यह भी एक बहुत बड़ा काम होता है । तूफान आने पर नाव को ठीक रखना जितने महत्त्व का काम होता है, उतना ही ज़रूरी काम होता है चित्त को स्थिर रखना । मेरा इसराज ले आ और तनिक बजा !"

"भैया, मेरा बड़ा जी चाहता है कि मैं भी कुछ करूँ।"

"बजाना क्या कुछ नहीं है ?"

"मैं कोई कठिन काम चाहती हूँ।"

"दस्तावेज में सही करने की अपेक्षा इसराज बजाना अत्यन्त कठिन काम है । ले आ, जा !"

४८

मधुसूदन से सभी जिस प्रकार डरते थे, कभी श्यामासुन्दरी भी उससे उतना ही डरती थी। वह इस बात का अंदाज़ लगा चुकी थी कि भीतर-ही-भीतर मधुसूदन का मन बीच-बीच में कभी-कभी उसकी ओर आकर्षित हुआ है । पर वह यह निश्चित नहीं कर पाती थी कि किस तरफ़ से घेरा लाँघकर उसके पास वह पहुँच पायगी। बीच-बीच में टटोल-टटोलकर उसने यह जानने का प्रयत्न भी किया था, पर प्रत्येक बार उसे धक्का खाकर पीछे लौटना पड़ा है । मधुसूदन ने एकांत लगन से अपना व्यवसाय जमाया था; कांचन की साधना में उसने कामिनी को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा की थी । इसी कारण स्त्रियाँ उससे बहुत डरती थीं । पर इस भय में भी एक आकर्षण होता है। धक-धक धड़कता हुआ कलेजा और सीमित व्यवहार के साथ श्यामासुन्दरी एक आवरण की तनिक ओट में मुग्ध मन से मधुसूदन के आस-पास चक्कर काटती रही है । बीच-बीच में जब कभी असावधानी के क्षण में मधुसूदन ने उसे तनिक प्रश्रय दिया है तभी यथार्थ भय का कारण उपस्थित हुआ है । उसके कुछ ही समय बाद कुछ दिनों से मधुसूदन उलटी दिशा से यह प्रमाणित करने की चेष्टा करता रहा है कि उसके जीवन में स्त्रियाँ एकदम उपेक्षणीय हैं । इसीलिए इतने दिनों तक श्यामासुन्दरी अपने को अत्यन्त संयत रखती आई है ।

मधुसूदन के विवाह के बाद से वह बेचैन हो उठी थी। यदि मधुसूदन कुमुदिनी की वैसी ही अवज्ञा करता जैसी वह दूसरी स्त्रियों के प्रति दिखाता

था तो वह किसी तरह सहनीय होता। पर जब श्यामा ने देखा कि किसी स्त्री के लिए मधुसूदन भी बे-लगाम ढंग से मतवाला हो सकता है तब उसके लिए अधिक समय संभव न रहा। पिछले कुछ दिनों से वह थोड़ा-थोड़ा करके आगे कदम बढाती जाती थी, क्योंकि उसने देख लिया था कि इस तरह आगे कदम बढ़ाते रहने मे कही कोई बाधा नहीं है। बीच-बीच में साधारण-सी बाधा का सामना उसे अवश्य करना पड़ा है, पर उसने देखा कि उसे भी आसानी से काटा जा सकता है। मधुसूदन की दुर्बलता उसकी पकड में आ गई थी, इसीलिए श्यामा अपने भीतर अब अधिक धीरज नहीं रख पाती थी—उसका बाँध टूटने जा रहा था। कुमुदिनी के चले जाने के ठीक पहले वाली रात में मधुसूदन ने श्यामा को जितने निकट खीचा था उतना तो पहले कभी नहीं खींचा। उसके बाद ही श्यामा के मन में यह भय उत्पन्न होने लगा कि बाद में कही उलटा धक्का भी और अधिक तीव्रता से लगे। पर इतनी बात श्यामा समझ गई थी कि यदि वह स्वयं कायरता त्याग देगी तो भय का कारण अपने-आप कट जायगा।

मधुसूदन सबेरे ही घर से बाहर निकल गया था। दोपहर मे प्रायः एक बजे वह घर लौटा। उसके स्नान और भोजन के नियम में इधर कई दिनो से ऐसा व्यतिक्रम नहीं देखा गया था। आज जब वह बहुत ही थका हुआ घर आया तब पहली बात जो उसके ध्यान में आई वह यह थी कि कुमुदिनी अपने भैया के यहाँ चली गई है, और प्रसन्न होकर ही गई है। इतने दिनों तक वह स्वयं अपने ही आधार पर खड़ा था, पर न जाने कब और कैसे उसने अपने मन को ढील दे दी। शरीर और मन की आतुरता के क्षण में किसी नारी के प्यार का आश्रय पकड़ने की सुप्त इच्छा उसके मन में जग उठी थी, इसी कारण जब कुमुदिनी अनायास ही चली गई तब उसके भीतर इस प्रकार का धिक्कार उत्पन्न हुआ। आज उसके भोजन के समय श्यामासुन्दरी जान-बूझकर उसके निकट नही बैठी —कौन जाने कल रात पकड मे आने के बाद मधुसूदन कही स्वयं अपने ऊपर बिगड न बैठे। भोजन के बाद मधुसूदन सोने के सूने कमरे में आकर कुछ समय तक चुप रहा, उसके बाद स्वयं ही उसने श्यामा को बुला भेजा। श्यामा लाल रंग का एक विलायती शाल ओढ़कर तनिक संकोच के साथ कमरे मे आई और एक कोने में नीची आँखों से खड़ी रही। मधुसूदन बोला, "आओ, इधर आओ, बैठ जाओ।"

श्यामा सिरहाने के निकट बैठ गई। "आज तुम बहुत सुस्त दिखाई दे रहे

हो," इतना कहकर वह तनिक नीचे झुकी और उसके सिर को हाथ से सहलाने लगी।

मधुसूदन बोला, "आह, तुम्हारा हाथ बहुत ठंडा है।"

रात में जब मधुसूदन सोने आया तब बिना बुलाये ही श्यामा उसके कमरे मे घुस आई और बोली, "आह, तुम अकेले हो।"

श्यामासुन्दरी ने तनिक साहस बटोरकर दोनों के बीच किसी प्रकार का आवरण नही रहने दिया। जैसे वह बिना किसी संकोच के, सभी को साक्षी मानकर अपने अधिकार को पक्का कर लेना चाहती थी। वह सोच रही थी कि समय अधिक नही है, न जाने कब फिर से कुमुदिनी आ पहुँचेगी, इसलिए इसी बीच कब्जा पूरा हो जाना चाहिए। कब्जा प्रकट मे होने से उसमें बल रहता है, कही तनिक भी संकोच या लज्जा दिखाने से काम नही चलेगा। देखते-देखते नौकर-चाकर भी स्थिति को समझ गए। मधुसूदन के मन में बहुत दिनों से जो आग गहराई में दबी थी वह उतने ही वेग से बाहर निकल आई। इसलिए उसने किसी के कहने-सुनने की तनिक भी परवाह किये बिना ही स्पष्ट रूप से अपनी प्रवृत्ति को सबके आगे प्रकट कर दिया।

नवीन और मोती की माँ, दोनों ही समझ गए कि इस बाढ़ को अब रोका नही जा सकेगा।

"दीदी को क्या वापस नही बुला लाओगे? अधिक देर करना क्या उचित होगा?"

"यही बात तो मैं भी सोच रहा हूँ। भैया का आदेश न होने पर तो कोई उपाय नही हो सकता। तनिक चेष्टा करके देखता हूँ।"

जिस दिन नवीन सबेरे भैया से बात चलाने के उद्देश्य से गया, उसने देखा कि भैया बाहर निकलने की तैयारी कर रहे है। दरवाज़े के निकट गाड़ी तैयार थी।

नवीन ने पूछा, "कही जाना है क्या?"

संकोच छोड़कर मधुसूदन बोला, "उसी ज्योतिषी—वेंकट स्वामी के पास।"

वह नवीन के आगे अपनी दुर्बलता छिपाना चाहता था, पर सहसा उसके ध्यान में यह बात आई कि उसे साथ ले चलने में ही सुविधा है। इसलिए वह तत्काल बोला, "तुम भी चलो मेरे साथ।"

नवीन ने सोचा कि यह क्या मुसीबत सामने आई। बोला, "तनिक मैं पहले जाकर देख आऊँ कि वह अपने घर में है भी या नहीं। मुझे तो लगता है कि वह चला गया है, क्योंकि उसकी बातों से ऐसा ही लगता था।"

मधुसूदन बोला, "तो अच्छी बात है, जाकर देख लिया जाय।"

निश्चिन्त होकर नवीन उसके साथ हो लिया। पर मन-ही-मन वह क्षुब्ध हो उठा।

ज्योतिषी के मकान के आगे जैसे ही गाड़ी रुकी, नवीन तनिक झाँककर बोला, "लगता है, जैसे घर में कोई नही है।"

ज्यों ही उसने यह बात कही, त्यो ही दातुन चबाते हुए वेकटस्वामी दरवाज़े के पास चला आया। नवीन ने तुरंत उसके अत्यंत निकट जाकर उसे प्रणाम किया और धीरे से बोला, "तनिक सावधानी से बातें कीजियेगा !"

उसी घुटन वाले कमरे के तख्त पर तीनों बैठ गए। नवीन मधुसूदन के पीछे बैठा। मधुसूदन के कुछ कहने के पहले ही नवीन बोल उठा, "महाराज की दशा इन दिनों बहुत ख़राब चल रही है। शास्त्री जी, यह बताने की कृपा करें कि ग्रह-शांति कब होगी।"

नवीन के इस पर्दा फ़ाश करने वाले प्रश्न से चिढ़कर मधुसूदन ने उसके पाँव में चिकोटी काटी।

वेकटस्वामी ने राशि-चक्र लिखकर एकदम स्पष्ट दिखा दिया कि मधुसूदन के धनस्थान पर शनि की दृष्टि पड़ी हुई है।

ग्रह का नाम जानने से मधुसूदन को कोई लाभ नहीं था, क्योंकि उसके साथ समझौता करना कठिन था। जो-जो व्यक्ति उसके साथ शत्रुता कर रहे थे वह स्पष्ट रूप से उन्हींका नाम जानना चाहता था—फिर चाहे वे नाम वर्णमाला के किसी भी वर्ग में आते हों। नवीन की कठिनाई यह थी कि वह मधुसूदन के आफ़िस का हाल कुछ भी नही जानता था। इसलिए इशारे से भी कोई काम नही चल सकता था। वेकटस्वामी मुग्धबोध के सूत्र पढ़ता हुआ मधुसूदन के मुँह की ओर कनखियो से देख रहा था। आज नामों के संबंध में भृगु मुनि एकदम मौन थे। सहसा शास्त्री बोल उठा, "कोई स्त्री शत्रुता कर रही है।"

नवीन ने एक लंबी साँस खीची। वह स्त्री श्यामासुन्दरी है, यदि यह बात किसी प्रकार प्रमाणित की जा सके तो फिर चिंता की कोई बात न रह जाय। मधुसूदन नाम चाहता था। शास्त्री ने वर्णमाला के वर्गों को गिनना शुरू किया। कवर्ग उच्चारण करने के बाद वह जैसे अदृश्य भृगु मुनि की ओर कान लगाए रहा और कनखियों से मधुसूदन की ओर देखने लगा। कवर्ग की आवाज कानों में पड़ते ही मधुसूदन के मुँह पर एक चमक दिखाई दी। उधर पीछे से 'न' का संकेत करके नवीन दायें-बायें सिर हिलाने लगा। नवीन नही जानता था कि मद्रास की ओर इस संकेत का उलटा अर्थ लिया जाता है। वेंकटस्वामी उसे

सम्मति का लक्षण समझकर जोर देता हुआ बोल उठा, "कवर्ग।" मधुसूदन का मुँह देखकर वह साफ़ समझ गया था कि कवर्ग का प्रथम अक्षर ही महत्त्वपूर्ण है। इसलिए अपनी बात की और अधिक स्पष्ट व्याख्या करता हुआ वह बोला, इस 'क' के भीतर ही मधुसूदन का सब 'कु' छिपा है।

इसके बाद पूरा नाम जानने के लिए कोई आग्रह किये बिना ही मधुसूदन ने अधीर होकर पूछा, "इसका प्रतिकार क्या हो सकता है?"

वेंकटस्वामी ने गंभीर भाव से उत्तर दिया, "कंटकेनैव कंटकम्—अर्थात् उद्धार होगा किसी दूसरी स्त्री द्वारा।"

मधुसूदन चकित रह गया। वेंकटस्वामी ने मानव-चरित्र-संबंधी विद्या की चर्चा जो की थी।

नवीन रह न सका। सहसा वह बोल उठा, "स्वामी जी, घुड़दौड़ में महाराजा का घोड़ा क्या जीता है?"

वेंकटस्वामी जानता था कि अधिकांश घोड़े नही जीतते। तनिक गणना का बहाना बनाने के बाद उसने उत्तर दिया, "इसमें मुझे नुकसान दिखाई दे रहा है।"

कुछ ही समय पूर्व मधुसूदन का घोड़ा बहुत बड़ी बाजी मे जीत चुका था। मधुसूदन को कुछ भी बोलने का अवसर न देकर अत्यंत उदास भाव से नवीन ने पूछा, "स्वामी जी, मेरी लड़की की क्या गति होगी?" कहना न होगा कि नवीन की कोई लड़की नहीं थी।

वेंकटस्वामी निश्चित रूप से यह समझा कि नवीन अपनी लड़की के लिए पात्र खोज रहा है। नवीन का चेहरा देखकर वह यह समझ चुका था कि लड़की अप्सरा नही हो सकती। बोला, "पात्र जल्दी नही मिल पायगा। बहुत रुपया खर्च करना होगा।"

मधुसूदन को बोलने का तनिक भी अवसर न देकर, और लगातार एक के बाद एक असंगत प्रश्नों के अद्भुत उत्तर स्वामीजी के मुँह से निकालकर नवीन बोला, "भैया, अब और क्या शेष रह गया है? चलिए!"

गाड़ी पर बैठते ही नवीन बोल उठा, "भैया, यह बड़ा धूर्त स्वामी है।"

"पर उस दिन तो..."

"उस दिन वह पहले ही से आपके संबंध में कई बातें मालूम कर चुका था।"

"उसे कैसे मालूम हुआ था कि मैं आने वाला हूँ?"

"यह मेरी ही मूर्खता थी, अब बहुत हुआ, मैं ही तुम्हें ले गया था, पर अब नहीं।"

ज्योतिषी की धूर्तता के प्रमाण मिलने पर भी मधुसूदन के मन में 'कवर्ग' का 'कु' गड़ गया। उसने सोचकर देखा कि नक्षत्र भले ही उपेक्षा से फुटकर प्रश्नों के मनमाने उत्तर दे, पर असली प्रश्न के उत्तर में भूल नही हो सकती। मधुसूदन ने जिसकी प्रत्याशा ही कभी नहीं की थी वह दुःसमय विवाह के साथ-ही-साथ आया। इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है?

नवीन ने धीरे-धीरे बात चलाई, "भैया, दो सप्ताह बीत चुके है, अब भाभी को ले आऊँ !"

"क्यो, जल्दी किस बात की है ? देखो नवीन, तुमसे मै कहे देता हूँ, अब आगे कभी इस बात की चर्चा मेरे आगे न चलाना। जिस दिन मेरी तबियत होगी, बुला लूँगा !"

नवीन अपने भैया को जानता था। वह समझ गया कि बात समाप्त हो गई।

फिर भी साहस के साथ उसने पूछा, "यदि मँझली बहू भाभी से मिलने जायँ तो क्या उसमें कोई दोष होगा ?"

मधुसूदन ने अवज्ञा के साथ संक्षेप में कहा, "वह जाय।"

४९

हड़बड़ाकर एक आराम-कुर्सी दिखाते हुए विप्रदास बोला, "आइए नवीन बाबू, यहाँ बैठिए !"

नवीन बोला, "मालूम होता है आपको अभी तक मेरे संबंध में परिचित नही कराया गया है। आप सोचते है कि मैं राजघराने का कोई लाड़ला बेटा हूँ। आपकी जो छोटी बहन है, मै उन्हीका अधम सेवक हूँ। मुझे सम्मानित करके मुझे आशीर्वाद से वंचित न कीजिएगा। पर यह क्या हुलिया आपने अपना बना रखा है ? आपके इतने सुन्दर शरीर की केवल छाया शेष रह गई है।"

"शरीर सत्य नहीं, केवल छाया है—यह सूचना बीच-बीच में पाना अच्छा है। उससे अंतिम पाठ की पढ़ाई में सुविधा रहती है।"

कुमुदिनी ने कमरे में आतेही कहा, "लाला, चलो, कुछ खा लो !"

"खाऊँगा, पर एक शर्त है। जब तक वह शर्त पूरी नहीं होगी तब तक ब्राह्मण-अतिथि तुम्हारे दरवाज़े पर भूखा पड़ा रहेगा।"

"वह शर्त क्या है, सुनूँ ?"

"जब तुम घर में थी तभी मैंने निवेदन किया था, पर वहाँ अधिक जोर मै न डाल सका। अब तुम्हे भक्त को अपना एक चित्र देना ही होगा। उस दिन तो तुमने कहा था कि तुम्हारे पास नहीं है, पर आज तो ऐसा नही कह सकोगी। तुम्हारे भैया के कमरे की दीवार पर वह सामने ही झूल रहा है।"

अच्छा फोटो संयोग से ही उतर पाता है। कुमुदिनी का वह फोटो भी जैसे दैव की रचना थी। कपाल में जिस तरह का प्रकाश पड़ने पर कुमुदिनी के मन की अभिव्यक्ति मुख पर होती है, वही प्रकाश उस फोटो पर पडा था। माथे पर निर्मल बुद्धि की दीप्ति और आँखो मे सरल-गंभीर सकरुणता। फोटो में वह खडी थी। उसका सुन्दर दायाँ हाथ एक खाली कुर्सी के हत्थे पर रखा था। लगता था जैसे वह अपनी ही कोई बहुत दिन पहले की छाया देखकर सहसा ठिठककर खड़ी हो गई हो।

अपने उस फोटो की ओर कुमुदिनी का ध्यान नही गया था। उसके भैया ने विवाह से कुछ समय पहले कलकत्ता से फोटोग्राफर को बुलाकर उसे खिचवाया था। उसके बाद उसने उस फोटो को अपने ही कमरे में टँगवाया था। इस बात की याद आने से कुमुदिनी का हृदय भर आया। फोटो की कापियाँ और रखी है या नहीं, यह जानने के लिए उसने भैया की ओर देखा।

नवीन बोला, "समझ रहे हैं न, विप्रदास बाबू, भाभी को मेरे ऊपर दया हो आई है। उनकी आँखों की ओर तनिक देखिए। अयोग्य समझकर ही मुझ पर वह विशेष कृपा रखती है।"

विप्रदास मुस्कराता हुआ बोला, "कुमू, मेरे इस चमडे वाले बक्स मे और भी कुछ फोटो रखे है। यदि तू अपने भक्त को वरदान देना चाहती है तो अभाव नही होगा।"

कुमुदिनी जब नवीन को खाना खिलाने ले गई तब कालू आ पहुँचा। बोला, "मैंने मँझले बाबू को जल्दी चले आने के लिए तार करे दिया है।"

"मेरे नाम से ?"

"हाँ, भैया, तुम्हारे ही नाम से। मैं जानता हूँ, तुम अंत तक हाँ-ना करते रह जाओगे, इधर दिन-पर-दिन स्थिति कठिन होती चली जा रही है। डाक्टर ने जो कुछ बताया, उससे तो यही लगता है कि तुम इतना भार सह नही पाओगे।"

डाक्टर ने बताया था कि हृद्-यंत्र में विकार के लक्षण दिखाई देने लगे हैं, इसलिए शरीर पर जोर नहीं पड़ना चाहिए और मन शांत रहना चाहिए। कभी विप्रदास पर आवश्यकता से अधिक कुश्ती का शौक भूत की तरह सवार था,

यह उसीका फल था। उस पर जुड़ गई थीं मानसिक चिंताएँ।

सुबोध को इस तरह जबरदस्ती पकड़ बुलवाना अच्छा होगा या नही, यह बात विप्रदास की समझ मे ठीक से नही आ पा रही थी। वह चुपचाप सोचने लगा। कालू बोला, "बडे बाबू, आप व्यर्थ की चिन्ता में पड़े हैं। विषय-संपत्ति की एक अंतिम व्यवस्था अभी करना आवश्यक है, और उनके न रहने से चलेगा नही। बारह प्रतिशत ब्याज की दर पर हम मारवाड़ी के हाथ अपना सर्वस्व नहीं लुटा सकते। वे लोग दो लाख रुपया अग्रिम ब्याज के रूप में पहले ही काट लेगे। उसके अलावा, दलाली अलग है।"

विप्रदास बोला, "अच्छी बात है, आने दो सुबोध को। पर क्या वह आयगा ?"

"चाहे वह कितना ही बड़ा साहब क्यो न बन गया हो, तुम्हारा तार पाने पर वह आए बिना रह न सकेगा। इसलिए इस संबंध में तुम निश्चिन्त रहो ! पर भैया, अब अधिक देर न करो, बच्ची को ससुराल भेज दो !"

विप्रदास तनिक चुप रहा। फिर बोला, "मधुसूदन जब तक स्वयं नहीं बुलाता तब तक जाने में बाधा है।"

"क्यों, बच्ची क्या मधुसूदन के कारखाने की मजदूर है? अपने घर जायगी, इसमें हुक्म की क्या आवश्यकता है ?"

भोजन समाप्त करके नवीन विप्रदास के कमरे मे लौट आया। विप्रदास बोला, "कुमू तुमसे स्नेह करती है ?"

नवीन बोला, "शायद मै अयोग्य हूँ, इसीलिए उनका स्नेह मेरे प्रति इतना अधिक है।"

"उसके संबंध में दो-एक बातें तुमसे करना चाहता हूँ। तुम मुझसे कोई भी बात मत छिपाना !"

"मेरी अपनी कोई बात ऐसी नहीं है जिसे आपसे बताने में मुझे झिझक हो।"

"कुमू जो यहाँ आई है, मुझे लगता है कि उसके भीतर कुछ टेढ़ा रहस्य है।"

"आपने ठीक ही समझा है। जिनके निरादर की कल्पना भी नहीं की जा सकती, संसार में कभी-कभी उनका भी निरादर होता है।"

"तब क्या निरादर हुआ है ?"

"उसी लज्जा के कारण यहाँ आया हूँ। और तो मैं कुछ भी नहीं कह सकता, केवल उनके पाँवों की धूलि सिर पर लेकर मन-ही-मन क्षमा चाहता हूँ।"

"कुमू यदि आज ही अपनी ससुराल लौट जाय, तो क्या इसमे कोई हानि है ?"

"सच बात तो यह है कि उन्हें कभी चलने के लिए कहने का साहस नही होता।"

ठीक क्या घटना घटी है, विप्रदास ने यह बात नवीन से नही पूछी। उसने सोचा कि पूछना अन्याय होगा। कुमुदिनी से भी पूछकर उसके भीतर से कोई बात निकालने की इच्छा भी विप्रदास को नहीं होती थी। वह मन-ही-मन छटपटाने लगा। कालू को बुलाकर उसने पूछा, "तुम तो उन लोगों के यहाँ जाते-आते रहते हो, मधुसूदन के बारे में तुम निश्चय ही जानते होगे।"

"कुछ आभास तो मुझे अवश्य मिला है, पर जब तक पूरी बातों का पता नहीं लग पाता तब तक तुम्हे कोई बात बताना नहीं चाहता। और दो दिन रुक जाओ, मैं पूरी खबर तुम्हें दे दूँगा।"

आशंका से विप्रदास का मन खिन्न हो उठा। प्रतिकार का कोई उपाय उसके हाथ में नहीं था, इसलिए दुश्चिन्ता रह-रहकर उसके हृदय को कचोटने लगी।

५०

कुमुदिनी बहुत दिनों से जिस बात की एकांत इच्छा कर रही थी वह पूरी हो गई। वह उस परिचित घर में अपने भैया के स्नेह के परिवेश के बीच मे आ गई थी। पर उसने देखा कि वहाँ अब उसका पिछला सहज स्थान नहीं रहा। बीच-बीच में मान-वश उसकी इच्छा होती थी कि लौट चले। वह स्पष्ट देख रही थी कि सबके भीतर प्रतिदिन यही एक प्रश्न उठता रहता है कि "वह लौट क्यों नहीं जाती ? बात क्या हुई है ?"

अपने भैया के अगाध स्नेह के बीच में रह-रहकर वही एक उत्कंठा उसे दिखाई देती थी। उसे लेकर उन दोनों के बीच स्पष्ट रूप से किसी प्रकार की आलोचना नहीं चलती थी। आलोचना का विषय वह स्वयं थी, और उसीसे वह बात छिपी रह जाती थी।

साँझ होने को है। धूप ढल रही है। कुमुदिनी सोने के कमरे वाली खिड़की पर बैठी है। कौवों ने काँव-काँव मचा रखी है। बाहर रास्ते पर से गाड़ियों के

चलने का शब्द और जनता का कोलाहल सुनाई दे रहा था। वसंत की नई हवा शहर के ईंट और काठ के स्तूपों पर अपना कोई रंग चढ़ाने में समर्थ न हो सकी। सामने वाला मकान एक पातबादाम के पेड़ की ओट में छिपा था। चंचल हवा उसी पेड के सघन और हरे पत्तों को डुलाती हुई अपराह्न की धूप को खंड-खंड करके बिखेर रही थी। ऐसे ही समय पालतू हरिणी अपने अजाने वन की ओर भाग जाना चाहती है—जिस दिन हवा में वसंत का स्पर्श रहता है और लगता है जैसे पृथ्वी उत्सुक होकर नीले आकाश के दूर वाले पथ की ओर टकटकी लगाये हुए है। जो कुछ चारों ओर से घेरे हुए है, लगता है जैसे वह सब मिथ्या है, और जिसका ठीक पता नहीं लग पाता, जिसका चित्र आँकने का प्रयत्न करने पर रंग आकाश में बिखर जाता है, जिसकी मूर्ति जल और थल के नाना संकेतों के बीच में झाँकती हुई गायब हो जाती है, मन उसीको सबसे अधिक सत्य मानने लगता है। कुमुदिनी का मन आज हाँफता हुआ सारे वातावरण से स्वयं अपने से भागने के लिए उत्सुक हो उठा था। पर यह चारों ओर कैसा घेरा पड़ा हुआ है! आज इस घर मे भी उसे मुक्ति नही मिल पाती। उसने कल्पना में मृत्यु को भी मधुर बना लिया। वह मन-ही-मन कहने लगी, "काली यमुना के पार वह साँवला रहता है। उसीके अभिसार में मुझे दिन-पर-दिन चले चलना है—पथ न जाने कितना लम्बा है और कितने कष्टों से भरा है!" उसे याद आया कि भैया का स्वास्थ्य पहले से अधिक ख़राब हो गया है। वह सेवा करने आई थी, पर उसीके कारण भैया की बीमारी बढ़ उठी है और अब वह जो कुछ भी करने जायगी उसका फल उलटा होगा। दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर वह कुछ देर तक खूब रोई। जब रोने का वेग थमा तब उसने निश्चय कर लिया कि वह ससुराल वापस चली जायगी, फिर जो होना होगा, होता रहेगा। वह सभी कुछ सहती जायगी। अंत में तो उसे मुक्ति मिलेगी ही—शान्त गम्भीर और मधुर मुक्ति। मृत्यु की कल्पना वह मन मे जितने ही स्पष्ट रूप से करती जाती थी उतना ही उसे यह बोध होता था कि जीवन का भार एकदम असहनीय नहीं होगा। वह गुनगुनाने लगी।

पथ पर रैन अँधेरी
कुंज पर दीप उजियारा।

दोपहर के समय कुमुदिनी भैया को सुलाकर चली आई थी। अब दवा और पथ्य का समय हो गया था। कमरे में जाकर उसने देखा, विप्रदास उठ बैठा है और एक पोर्टफोलियो लेकर सुबोध को अँगरेज़ी में एक लम्बा पत्र

लिख रहा है। कुमुदिनी ने डाँटने के स्वर में कहा, "भैया, आज तुम अच्छी तरह से सोये भी नही।"

विप्रदास बोला, "तू समझती है कि सोने से ही विश्राम होता है। मन में जब पत्र लिखने की इच्छा जगती है तब पत्र लिखने से ही विश्राम होता है।"

कुमुदिनी समझ गई, उसीके कारण वह पत्र लिखने की आवश्यकता आ पड़ी है। समुद्र के इस पार वह एक भाई को तग किये हुए है और समुद्र के उस पार वह दूसरे भाई को परेशानी मे डालेगी—क्या भाग्य लेकर जन्मी थी उन भाइयों की यह बहन ! भैया को चाय पिला चुकने पर वह धीरे से बोली, "बहुत दिन हो गए मुझे यहाँ अब ससुराल लौट जाने का निश्चय किया है मैने।"

विप्रदास ने कुमुदिनी के मुँह की ओर देखकर यह समझने की चेष्टा की कि किस भाव से उसने वह बात कही। इतने दिनो तक दोनों भाई-बहनों के बीच स्पष्ट व्यवहार की जो पूरी छूट थी, आज वह नही रह गई थी। अब दूसरे के मन की बात जानने के लिए टटोलना पड़ता था। विप्रदास ने लिखना बन्द कर दिया। कुमुदिनी को निकट बिठाकर कुछ कहे बिना ही वह उसके हाथो पर धीरे-धीरे अपने हाथ फेरने लगा। कुमुदिनी उसकी यह भाषा समझ गई। सासारिक गाँठ कठिन हो चली थी, पर प्रेम में अभी तक किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। उसकी आँखो से आँसू टपकने ही को थे, पर उसने उन्हे बरबस रोक दिया। कुमुदिनी ने मन-ही-मन कहा, 'मैं इस प्रेम पर किसी प्रकार का भार नहीं डालूँगी।' इसलिए फिर बोली, "भैया, मैंने जाने का निश्चय कर लिया है।"

विप्रदास सोच नही पाता था कि वह क्या उत्तर दे। वह सोच रहा था कि कुमुदिनी का जाना शायद कल्याणकारी है, क्योकि अततः यही तो कर्तव्य है। वह चुप हो गया। इतने में कुत्ता नींद से जगकर कुमुदिनी की गोद पर अपने दोनो पाँव रखकर, विप्रदास के हिस्से की रोटी के प्रसाद के लिए अपना निवेदन जताने लगा।

रामस्वरूप बैरे ने आकर खबर दी कि मुखर्जी महाशय आये है। चिंतित होकर कुमुदिनी बोली, "आज दिन में तुम सो नही पाये, उस पर कालू भैया से तर्क-वितर्क करके तुम बहुत थक जाओगे। मैं स्वयं उनसे मिल लेती हूँ, यदि कोई ख़ास बात हुई तो सुनने के बाद तुम्हें फ़ुर्सत से बता दूँगी।"

"बहुत बड़ी डाक्टर बन गई है तू ! एक आदमी की बात दूसरा आदमी सुन ले तो रोगी का मन बहुत शांत रहेगा, यही न तुम सोचती हो ?"

"अच्छा, मैं नहीं सुनूँगी, पर आज यह सब रहने दो !"

"कुमू, अँगरेज़ कवि ने कहा है कि श्रुत संगीत मधुर होता है, पर अश्रुत

संगीत होता है मधुरतर। उसी प्रकार श्रुत संवाद क्लांतिकर हो सकता है, पर अश्रुत संवाद कई गुना अधिक क्लांति पहुँचाने वाला होता है। इसलिए उसे बिना विलम्ब के सुन लेना अच्छा है।"

"पर पन्द्रह मिनट बाद मैं लौट जाऊँगी, और यदि तब भी तुम लोगो की बातें चलती रही तब मैं बीच मे बैठकर इसराज में भीमपलासी बजाऊँगी।"

"अच्छी बात है, इस शर्त पर मैं राज़ी हूँ।"

आध घण्टे बाद कुमुदिनी सचमुच इसराज हाथ में लिये वापस चली आई, पर विप्रदास के मुख का भाव देखकर, उसी क्षण इसराज को दीवार के कोने के सहारे रखकर भैया के पास बैठ गई। उसका हाथ दबाती हुई बोली, "क्या हुआ है, भैया ?"

इतने दिनों तक कुमुदिनी विप्रदास के मुख पर अस्थिरता का जो भाव देखती चली आ रही थी उसमें गम्भीर विषाद की छाया वर्तमान रहती थी। विप्रदास के जीवन में अनेक संकट आये और गये, पर कभी किसी ने उसे विचलित होते नही देखा। पुस्तक-पाठ, गाना-बजाना, दूरबीन से आकाश के तारे देखना, घोड़े पर चढ़ना, नाना स्थानों से विचित्र पेड़-पौधे लाकर बाग़ लगाना आदि विविध विषयों में उसकी रुचि होने से उसने अपने से संबंधित दुःख और कष्ट को अपने भीतर कभी जमने नहीं दिया। पर इस बार रोग-जनित दुर्बलता ने उसे अपने तंग दायरे में कसकर बाँध लिया था, अब वह बाहर से सेवा तथा संग पाने के लिए उत्सुक रहा करता था, चिट्ठी-पत्री ठीक समय पर न पाने से चिंतित हो उठता था और देखते-देखते उसकी चिंताएँ काला रूप धारण कर लेती थी। इसीलिए भैया के प्रति कुमुदिनी के स्नेह ने आज मातृ-स्नेह का स्थान ग्रहण कर लिया था। उसके धीर-गम्भीर भैया के स्वभाव मे न जाने कहाँ से बच्चों की-सी चंचलता आ गई थी, और वैसा ही हठ भी। साथ ही इस गहन विषाद और उत्कंठा ने भी उनके मन के भीतर घर कर लिया था।

पर कुमुदिनी ने आकर देखा कि भैया का वह आवेश जाता रहा। उसकी आँखों में जो आग जल रही थी वह महादेव के तीसरे नेत्र की आग की तरह थी। वे आँखें उसकी अपनी पीडा के कारण नही जल रही थीं—वे जैसे अपने आगे विश्व के किसी पाप को देख रही थीं। उसके भस्म करने के लिए वे विकल हो रही थीं। कुमुदिनी की बात का कोई उत्तर दिए बिना, सामने की दीवार की ओर अपलक दृष्टि से देखता हुआ विप्रदास चुप बैठा रहा।

कुछ देर बाद कुमुदिनी ने फिर पूछा, "भैया, क्या हुआ है, बताओ न !"

विप्रदास जैसे दूर-स्थित लक्ष्य की ओर दृष्टि रखता हुआ बोला, "दुःख से

कतराने की चेष्टा करने पर वह घर बैठता है। उसे पूरी ताक़त से मानना चाहिए।"

"तुम मुझे उपदेश दो, मैं मान सकूँगी भैया!"

"मै देख रहा हूँ, स्त्रियों का जो अपमान देखा जाता है वह सारे समाज के भीतर छाया हुआ है, वह किसी एक नारी का अपमान नही है।"

कुमुदिनी अपने भैया की बात ठीक से समझ नही पा रही थी।

विप्रदास बोला, "इतने दिनों तक हमी लोग पीड़ा को अपमान समझकर कष्ट पा रहे थे, इसके साथ लड़ना होगा—सबकी ओर से।"

विप्रदास के मुरझाए हुए गोरे रंग के ऊपर लाल आभा खिल गई। इसकी गोद में रेशम का काम किया हुआ एक चौकोर तकिया था, उसे सहसा उसने हटाकर दूर फेंक दिया। पलंग से उठकर पास ही वह एक पाए वाली चौकी पर बैठने जा रहा था, कुमुदिनी ने उसका हाथ दबाकर पकड़ते हुए कहा, "शांत हो जाओ भैया, उठो मत, तबीयत ज़्यादा ख़राब हो जायगी।" कहकर तनिक जबरदस्ती करके उसने पीठ की ओर वाले ऊँचे तकिए पर विप्रदास को लिटा दिया।

विप्रदास ने अपनी चादर को मुट्ठी से पकड़कर दबाया और कहा, "सहन करने के सिवा स्त्रियों के लिए कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं, इसीलिए उन पर केवल मार-पर-मार पड़ती जाती है। यह कहने का समय आ गया है कि इसे अब सहन नहीं किया जायगा। कुमुदिनी यहीं अपना घर समझकर तू क्या रह सकेगी? उस घर में अब तुम्हारा जाना नहीं होगा।"

कालू से आज विप्रदास ने बहुत-सी बातें सुनी थीं।

श्यामासुन्दरी के साथ मधुसूदन का जो संबंध स्थापित हो गया था, उसमें अब कुछ भी गुप्त नहीं रह गया था। दोनों ही ओर अब किसी प्रकार की ग्लानि या कुंठा शेष नहीं रह गई थी। लोग उन्हें अपराधी समझ रहे थे, इसी कारण वे और अधिक ढीठ होते चले जाते थे। इस संबंध के भीतर बारीक कारीगरी कुछ भी नही थी, इसलिए अपने को और लोक-मत की रक्षा करते हुए चलना उनके लिए अनावश्यक हो उठा था। सुना जाता था कि श्यामासुन्दरी को मधुसूदन कभी-कभी मारता भी था; एक बार श्यामा जब चिल्लाकर झगड़ी थी, तब मधुसूदन ने सबके सामने कहा था, "दूर हट जा बदजात! मेरे घर से निकल जा!" पर इससे भी उनके संबंध में कोई अन्तर नहीं आया। श्यामा के संबंध में मधुसूदन ने अपना कर्तृत्व सुरक्षित रखा है। स्वयं अपनी इच्छा से उसने जितना-कुछ भी उसे दिया है उससे अधिक की ओर जब भी श्यामा ने हाथ बढ़ाया है तभी उस पर डाँट पड़ी है। श्यामा की इच्छा थी कि घर-गिरस्ती के

कामों में मोती की माँ की जगह उसीको मिले, पर उसमें भी उसने बाधा पाई। मधुसूदन को मोती की माँ पर पूरा विश्वास था, पर श्यामासुन्दरी पर उसे भरोसा नही था। श्यामा के संबंध में उसकी कल्पना में रंग नही लग पाया था, पर एक मोटे क़िस्म की आसक्ति उसके प्रति जग उठी थी। वह जाडे के दिनो की अनेक बार व्यवहार में आई हुई पुरानी रजाई की तरह थी, जिसमें बारीक काम का नितान्त अभाव रहता है। वह विशेष जतन से रखने की चीज नहीं है। उसके खाट से नीचे फर्श की धूल पर गिर जाने पर भी कुछ नही बिगड़ता, पर उसमें आराम बहुत है। श्यामा को सँभलकर चलने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसके अतिरिक्त वह अपने मन और प्राणों से मधुसूदन को बडा मानती थी और उसके लिए सब-कुछ करने को राजी रहती थी, यह बात मधुसूदन निश्चित रूप से जानता था। इसीलिए उसकी आत्म-मर्यादा की भावना संतुष्ट थी। कुमुदिनी के रहते उसकी इस भावना को प्रतिदिन जैसे कोई झकझोरता रहता था।

मधुसूदन के इस नवीनतम इतिहास से परिचित होने से लिए कालू को विशेष खोज नही करनी पड़ी। उनके घर के लोगों के बीच इस सबंध मे बातें होती रहती थीं। अन्त में अभ्यास हो जाने से इस विषय की चर्चा भी अब प्रायः समाप्त हो चुकी है।

खबर सुनते ही जैसे विप्रदास को किसी ने तीर मार दिया। मधुसूदन ने कुछ ढकने की चेष्टा भी नही की। अपनी पत्नी को अपमानित करना इतना आसान है। स्त्री के प्रति अत्याचार करने में बाहर की बाधा कितनी कम है! नारी को निरुपाय रूप से पति की बाध्यता स्वीकार कराने के उद्देश्य से समाज में हजारों प्रकार के यंत्रो तथा यंत्रणाओं की सृष्टि हुई है, तथापि उस शक्तिहीन नारी को पति के उपद्रव से बचाने के लिए कोई भी उचित पथ नही रखा गया है। इसीका निदारुण दुःख और अपमान युग-युग से घर-घर में किस प्रकार व्याप्त है, यह विप्रदास के आगे एक क्षण में स्पष्ट हो गया। सतीत्व की गरिमा के गाढ़े लेप से इस पीड़ा को दबाने की चेष्टा की गई है, पर इस पीड़ा को दूर करने का तनिक भी प्रयत्न नही किया जाता। नारी-जाति इस क़दर सस्ती और हेय है!

विप्रदास बोला, "कुमू अपमान सहन करते चले जाना कठिन नही है, पर उसे सहना अन्याय है। तुम्हें सभी नारियों की ओर से अपना सम्मान का अधिकार प्राप्त करना होगा। इसके लिए समाज तुम्हें जितना भी दुःख देना चाहे दे।"

कुमुदिनी बोली, "भैया, तुम किस अपमान की बात कह रहे हो, मै समझ नहीं पा रही हूँ।"

विप्रदास ने कहा, "तब क्या तू सब बातें नही जानती ?"

कुमुदिनी बोली, "नहीं।"

विप्रदास चुप हो गया। कुछ देर बाद बोला, "स्त्रियों के अपमान का दुःख मेरे भीतर जमा हो गया है। क्यों, जानती है ?"

कुमुदिनी कुछ न कहकर भैया की ओर ताकती रह गई। कुछ देर बाद बोली, "माँ ने जीवन-भर जो दुःख पाया था उसे मैं किसी तरह भी भूल नही पाती हूँ। इसके लिए हमारा धर्मबुद्धिहीन समाज उत्तरदायी है।"

यही पर भाई-बहन के बीच अंतर था। कुमुदिनी अपने पिता को बहुत चाहती थी। वह जानती थी कि उनका हृदय कितना कोमल है। सभी दोषों के बावजूद उसके पिता बहुत बड़े आदमी थे, यह बात सोचे बिना वह रह नहीं पाती थी। यहाँ तक कि उसके पिता के जीवन मे जो शोचनीय परिणाम घटा था उसके लिए भी वह मन-ही-मन अपनी माँ को ही दोष दिया करती थी।

विप्रदास भी अपने पिता को बड़ा मानता था और उनके प्रति उसके मन में भक्ति भी थी। पर इस बात के लिए वह उन्हे कभी क्षमा नही कर सका कि उन्होने उसकी माँ को सबकी आँखो के सामने अपमानित किया। उसकी माँ ने भी क्षमा नहीं किया, इस बात से वह मन-ही-मन गौरव का अनुभव करता था।

विप्रदास बोला, "मेरी माँ ने जो अपमान पाया था वह समस्त स्त्री-जाति का अपमान था। कुमू, तुझे व्यक्तिगत रूप से अपनी बात भूलकर उस अपमान के विरोध में खड़ा होना होगा, इसमे किसी भी हालत में तुझे हार नही माननी होगी।"

कुमुदिनी ने सिर नीचे की ओर करके धीरे-से कहा, "पर यह बात न भूलो भैया, कि पिताजी अम्मा को बहुत चाहते थे। उस प्रेम के कारण अनेक पापों का निराकरण हो सकता है।"

विप्रदास बोला, "यह मैं मानता हूँ, पर इतने प्रेम के बावजूद वह जिस आसानी से माँ को अपमानित कर सकते थे, इस पाप के लिए समाज उत्तरदायी है। इसलिए मैं समाज को क्षमा नही कर पाऊँगा। समाज के पास प्रेम नहीं है। उसके पास है केवल विधान।"

"भैया, तुमने क्या कुछ सुना है ?"

"हाँ सुना है, वे सब बातें तुझे बाद में धीरे-धीरे बताऊँगा।"

"यही ठीक रहेगा। मुझे भय है कि आज की बातों से कही तुम्हारा शरीर अधिक दुर्बल न हो जाय।"

"नहीं कुमू, ठीक इससे उलटी बात होगी। इतने दिनों तक दुःख की थकान से शरीर ढीला पड गया था। आज जब मन कह रहा है कि जीवन के अंतिम दिन तक लड़ना होगा, तब मेरे भीतर शक्ति का संचार हो रहा है।"

"किससे और क्यों लड़ना होगा, भैया ?"

"जिस समाज ने नारी को उसका मूल्य चुकाने में इतनी अधिक धोखा-धड़ी की है उससे लड़ना होगा।"

"तुम उसका क्या कर लोगे, भैया ?"

"मै उसे मानूँगा ही नहीं। इसके अतिरिक्त और भी क्या-क्या मै कर सकूँगा, यह मुझे सोचना होगा। आज ही से मैंने यह काम आरंभ कर दिया। इस घर में तेरे लिए जो जगह है वह पूरी तरह से तेरी अपनी है, किसी से समझौता करके उसे तूने नहीं पाया है। तू यहाँ स्वयं अपने ही ज़ोर से रहेगी।"

"अच्छा भैया, ठीक है, पर तुम अधिक न बोलो !"

इतने में सुना गया, मोती की माँ आई हुई है।

५१

कुमुदिनी अपने सोने के कमरे में मोती की माँ को ले गई। वहीं दोनों बैठ गए। बातें करते-करते अँधेरा हो गया। बैरा बत्ती जलाने आया, पर कुमुदिनी ने मना कर दिया।

कुमुदिनी ने सभी बातें सुनी, समझी। पर चुप हो गई।

मोती की माँ बोली, "घर पर जैसे भूत चढ बैठा है, दीदी। वहाँ रहना कठिन हो गया है। तुम क्या वहाँ जाओगी नहीं ?"

"क्या मुझे बुलाया गया है ?"

"नहीं, बुलाने की बात की शायद याद ही किसी को नही है। पर तुम्हारे चले बिना काम नहीं बनेगा।"

"मुझे क्या करना है ? मैं तो उन्हें तृप्त नहीं कर पाऊँगी। यदि सोचा जाय तो मेरे ही कारण यह सब हुआ है, पर मेरे पास उपाय भी क्या था ! मैं जो-

कुछ दे सकती थी उसे वह नहीं ले पाए। आज मैं खाली हाथ जाकर क्या करूँगी ?"

"कहती क्या हो, दीदी ? परिवार तो तुम्हारा ही है। वह यदि तुम्हारे हाथों से चला जाय तो कैसे चलेगा ?"

"परिवार से तुम्हारा आशय क्या है ? घर-द्वार, विषय-संपत्ति और नौकर-चाकर ? यह बात कहते हुए भी लज्जा मालूम होती है कि इन सब पर मेरा अधिकार है। महल में अधिकार खो चुकी हूँ, अब इन सब बाहरी चीज़ों पर क्या लोभ किया जा सकता है ?"

"क्या कहती हो, दीदी ? तब क्या तुम घर वापस चलोगी ही नहीं ?"

"सभी बाते अब ठीक से समझ नही पा रही हूँ। कुछ दिन पहले यदि यह स्थिति होती तो देवता से मै संकेत पाना चाहती और सभी से पूछती। पर मेरा यह सब विश्वास धुल-पुँछ चुका है। आरंभ में कई लक्षण तो अच्छे थे। अंत मे एक भी काम न आया। आज कितनी ही बार सोच चुकी हूँ कि यदि देवता की अपेक्षा भैया के विचारो पर भरोसा रखती तो यह संकट न आता। फिर भी मन के भीतर जिस देवता के संबंध मे मेरे मन मे दुविधा जगी है उनकी मैं अपने हृदय के भीतर अवज्ञा नही कर पाती। लौट-लौटकर उन्हींके चरणों में गिर-गिर पड़ती हूँ।"

"तुम्हारी बाते सुनकर भय मालूम होता है। तुम क्या सचमुच घर लौटोगी ही नहीं ?"

"कभी जाऊँगी ही नहीं, यह सोचना कठिन है। आसानी से मैं यह भी नही कह सकती कि मैं जाऊँगी ही।"

"अच्छा, एक बार तुम्हारे भैया से बातें करके देखूँगी कि वह क्या कहते हैं। उनके दर्शन तो हो सकेंगे न ?"

"चलो न, अभी तुम्हे ले चलती हूँ।"

विप्रदास के कमरे में प्रवेश करते ही उसका चेहरा देखकर मोती की मा ठिठककर खड़ी रह गई। लगा, जैसे वह भूकंप के बाद का भग्न मदिर हो, जिसका प्रकाश भी बुझ गया हो। उसके भीतर है केवल अंधकार और निस्तब्धता। प्रणाम करके, विप्रदास के पाँवों की धूल लेकर वह फ़र्श पर बैठ गई।

हड़बड़ाकर विप्रदास बोला, "यहाँ चौकी पड़ी हुई है।"

सिर हिलाकर मोती की माँ ने कहा, "नहीं, यहीं ठीक हूँ।"

घूँघट के भीतर उसकी आँखें छलछला उठीं। वह समझ गई कि भैया की

इस स्थिति में कुमुदिनी केवल पीड़ा ही पा रही है। प्रसंग को सहज करने के उद्देश्य से कुमुदिनी बोली, "भैया, ये विशेष रूप से आई है—तुम्हारा मत जानने के लिए।"

मोती की माँ बोल उठी, "नहीं, नहीं, मत जानना बाद की बात है। मैं आई हूँ उनके चरण छूने।"

कुमुदिनी ने कहा, "यह जानना चाहती है कि उनके घर मुझे जाना होगा या नहीं।"

विप्रदास उठ बैठा। बोला, "वह तो दूसरों का घर है, वहाँ कुमू रह कैसे सकेगी?" यदि वह क्रोध के स्वर में यह बात कहता तो बात के भीतर की आग इस तरह जल न उठती? उसका स्वर शांत था। उसके मुख पर उत्तेजना का तनिक भी लक्षण नहीं दिखाई देता था।

मोती की माँ ने फुसफुसाते हुए कुछ कहा। उसका अभिप्राय यह था कि पास ही बैठी हुई कुमुदिनी उसकी बात विप्रदास के कानों तक पहुँचा दे। पर कुमुदिनी इस बात पर राज़ी न हुई। बोली, "तुम स्वयं ही गला खोलकर बोलो!"

मोती की माँ अपने स्वर को तनिक और स्पष्ट करती हुई बोली, "जो उनका अपना ही है उसे कोई दूसरे का नहीं बना सकता—फिर वह चाहे कोई भी क्यों न हो।"

"यह बात ठीक नहीं है। वह आश्रित मात्र है। उसके पास अपने अधिकार का जोर नहीं है। उसे घर से निकालने पर लोग निन्दा कर सकते है। बाधा नहीं दे सकते। सारी सजा केवल उसीके लिए है। अनुग्रह का आश्रय फिर भी सहन किया जाता, यदि वह महत् आश्रय होता।"

मोती की माँ कुछ सोच न पाई कि इस प्रकार की बात का क्या उत्तर दे। पति के आश्रय में विघ्न घटने से कन्यापक्षीय लोग ही तो पाँवों में पड़कर गिड़गिड़ाते हैं। पर यहाँ तो उलटी बात देखी जा रही है।

कुछ देर चुप रहकर बोली, "पर अपना परिवार न रहने पर स्त्रियाँ तो जी नहीं सकतीं। पुरुष तो जीवन के बहाव में जहाँ चाहें बह सकते है, पर स्त्रियों को तो कहीं-न-कहीं कोई स्थिति चाहिए ही।"

"स्थिति कहाँ है? असम्मान के बीच में? मैं तुम्हें बताए देता हूँ, कुमू का निर्माण जिन्होंने किया है उन्होंने पूरी श्रद्धा से उसे गढ़ा है। उसकी अवज्ञा करने की योग्यता किसी में भी नहीं है—चक्रवर्ती सम्राट् में भी नहीं।"

कुमुदिनी को मोती की माँ बहुत चाहती थी, उसके प्रति श्रद्धा रखती थी,

पर फिर भी किसी स्त्री का इतना अधिक मूल्य हो सकता है कि उसका गौरव पति पर भी छा जाय, यह बात उसके कानों को कुछ ठीक नही लगी। परिवार में पति के साथ लड़ाई-झगडा चलता रहता है, स्त्री के भाग्य में यथेष्ट अनादर और अपमान भी बदा हो सकता है, यहाँ तक कि उससे मुक्ति पाने के लिए स्त्री अफीम खाकर, गले में फाँसी लगाकर मर सकती है। यह बात भी समझ मे आती है; पर यह होने पर भी स्त्री पति से अलग केवल अपने ही ज़ोर पर रहेगी, इसे मोती की माँ केवल दुःसाहस मानती थी। उसके मन से स्त्रियों मे इतना दंभ क्यों हो? मधुसूदन चाहे कैसा ही अयोग्य हो, चाहे कितना ही अन्याय करे, फिर भी वह पुरुष है; एक स्थान पर वह अपनी स्त्री से सहज ही बड़ा है—वहाँ किसी विचार की आवश्यकता नहीं है। विधाता से मामला चलने पर कौन जीत सकता है?

मोती की माँ ने कहा, "एक-न-एक दिन वहाँ जाना तो पड़ेगा ही, दूसरा कोई रास्ता ही नही है।"

"जाना पड़ेगा ही, यह बात ख़रीदे हुए दास को छोड़कर और किसी पर लागू नही होती।"

"मंत्र पढ़े जाने के बाद स्त्री का ख़रीदा जाना अपने-आप हो जाता है। जिस दिन सात भाँवरें पड़ गईं उसी दिन वह शरीर से और मन से बँध जाती है, फिर भागने का कोई उपाय नहीं रह जाता। यह बंधन तो मृत्यु से भी बड़ा है। जब हमने स्त्री होकर जन्म ले लिया है तब फिर इस जन्म के लिए स्त्री के भाग्य को लौटाया नहीं जा सकता।"

विप्रदास समझ गया कि स्त्रियों का सम्मान स्त्रियों के निकट ही सबसे कम है। वे नहीं जानती कि इसी कारण घर-घर में उनका अपमानित होना इतना आसान है। वे अपने प्रकाश को स्वयं बुझाए बैठी हैं। उसके बाद केवल भय से और चिंता से मरी जा रही है, अयोग्य लोगों के हाथ केवल मार खाती चली जा रही हैं, और सोचती है कि चुपचाप सब-कुछ सहते चले जाना ही स्त्री-जन्म की चरम सार्थकता है। नहीं, मनुष्य के इतने बड़े अपमान को प्रश्रय देने से नहीं चलेगा। समाज ने जिसे इस हद तक नीचे उतार दिया वही समाज को प्रतिदिन नीचे गिराता जा रहा है।

विप्रदास के पलंग के पास ही कुमुदिनी मुँह नीचे की ओर किये फ़र्श पर बैठी थी। मोती की माँ से कुछ न कहकर विप्रदास कुमुदिनी के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला, "एक बात तुझसे कहना चाहता हूँ कुमू, समझने की चेष्टा करना! जहाँ क्षमता ज़मीन पर पड़ी पाई गई चीज़ है, जिसकी कोई परख

नहीं हुई, अधिकार कायम रखने के लिए जिसे योग्यता का कोई प्रमाण नहीं देना होता, वहाँ वह केवल हीनता की ही सृष्टि करती है। यह बात तुझसे मैने कई बार कही है। पर तू अपना संस्कार नही छोड पाई और इसी कारण कष्ट पाती रही है। तू जब विशेष रूप से ब्राह्मण-भोजन का आयोजन किया करती थी तब मैने कभी बाधा नही डाली। केवल बार-बार यही समझाने का प्रयत्न करता रहा हूँ कि बिना विचार के किसी मनुष्य की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने से केवल उसीका अनिष्ट नही होता, उससे समाज की श्रेष्ठता का आदर्श भी छोटा हो जाता है। इस प्रकार की अंध श्रद्धा से हम अपने ही मनुष्यत्व के प्रति अश्रद्धा प्रकट करते है, यह लोग क्यो नही सोचते? तूने तो अँगरेज़ी-साहित्य कुछ-कुछ पढ़ा है। तब तू यह समझ क्यो नही पा रही है कि इस प्रकार की समाज-निर्मित, शास्त्र-सम्मत निर्विकार क्षमता के विरुद्ध आज सारे संसार मे लड़ाई का हवा फैली हुई है। जिस स्वेच्छाकृत अध-दासता को बड़ा नाम देकर मनुष्य लंबे अर्से से मन मे पालता चला आ रहा है उसे ध्वस्त करने का समय आ गया।"

सिर नीचा किये हुए कुमुदिनी बोली, "भैया, तुम क्या यह कहना चाहते हो कि पत्नी को पति का अतिक्रमण करना होगा?"

"मैं केवल अन्याय से किये गए अतिक्रमण को दोष दे रहा हूँ। पति भी पत्नी को उल्लंघित नहीं कर सकता—यही मेरा मत है।"

"यदि करे, तो भी क्या स्त्री···"

कुमुदिनी की बात समाप्त होने के पहले ही विप्रदास बोल उठा, "स्त्री यदि उस अन्याय को स्वीकार कर ले तो उससे सभी स्त्रियों का अपमान होगा। इसी प्रकार प्रत्येक के द्वारा सभी का दुःख इकट्ठा होता चला जा रहा है। अत्याचार का रास्ता और भी पक्का होता जाता है।"

मोती की माँ तनिक अधीर होकर बोली, "हमारी दीदी सती-साध्वी हैं। उनका यदि कोई अपमान करे तो वह अपमान उन्हें छू भी नही सकेगा।"

इस बार विप्रदास का स्वर उत्तेजित हो उठा। बोला, "तुम लोग केवल सती-साध्वियों की ही बात सोचती हो। जो कायर उसे बेरोक-टोक अपमानित करने का अधिकार पाकर उस अधिकार का प्रयोग करता है, उसकी दुर्गति की बात क्यों नहीं सोचती हो?"

कुमुदिनी तभी उठ खड़ी हुई और विप्रदास के बालों को सहलाती हुई बोली, "भैया, तुम अब अधिक न बोलो। तुम जिसे मुक्ति कहते हो, जो ज्ञान द्वारा प्राप्त होती है, हमारे रक्त में ही उसका विरोध पाया जाता है। हम मनुष्य को जकड़े

रहती है—और विश्वास को भी; उसकी जटा को किसी तरह भी छोड़ नही पाती। चाहे कितनी ही मार हम पर क्यों न पडे, घूम-फिरकर अटककर रह जाती है। तुम लोग बहुत जानते हो, इसीलिए तुम लोगों का मन मुक्त हो पाता है, हम बहुत मानती है, इसीलिए हम लोगों के जीवन का शून्य भरा रहता है। तुम जब समझते हो, तब लगता है कि शायद कहीं पर मैं भटक गई हूँ। पर भूल को समझ पाना और उसे छोड़ पाना क्या एक ही बात है ? हम लोगों की ममता लता की तरह सभी कुछ जकड़े रहना चाहती है। चाहे वह अच्छा हो या बुरा उसे हम छोड़ नहीं पाती।"

विप्रदास बोला, "इसीलिए तो संसार में कापुरुषों की पुजारिनों का अभाव नही दिखाई देता। वे लोग जानते तो अपवित्र को अपवित्र ही है, पर मानते समय उसे पवित्र मानते है।"

कुमुदिनी बोली, "क्या करें भैया, संसार को दोनों हाथों से जकडे रहने के लिए ही तो हम लोगों की सृष्टि हुई है। इसीलिए हम पेड़ को भी जकड़े रहती है, और सूखी पुआल को भी। गुरु को मानने में हमे जितना समय लगता है, पाखंडी को मानने में भी उतना ही समय लगता है। जाल तो हम लोगों के अपने ही भीतर है। दुःख से हमें बचा कौन सकता है ? इसीलिए सोचती हूँ कि यदि दुःख पाना ही है, उसे मान लेने पर उससे मुक्त होकर उससे ऊपर उठने का उपाय करते रहना होगा। इसी कारण स्त्रियाँ इस हद तक धर्म का आश्रय लिये रहती हैं।"

विप्रदास कुछ नही बोला, चुप बैठा रहा।

उसका चुप बैठे रहना भी कुमुदिनी को कष्ट देने लगा। वह जानती थी कि बोलने की अपेक्षा चुप रहने का भार बहुत अधिक होता है।

कमरे से बाहर निकलकर मोती की माँ ने कुमुदिनी से पूछा, "तब तुमने क्या तय किया, दीदी ?"

कुमुदिनी बोली, "मैं जा नहीं सकूँगी। इसके अलावा, मुझे तो लौटने की अनुमति नहीं दी गई है।"

मोती की माँ मन-ही-मन कुछ अप्रसन्न हुई। ससुराल के प्रति उसकी बड़ी श्रद्धा रही हो, ऐसी बात नही थी। फिर भी ससुराल के संबंध में दीर्घ अभ्यास से एक प्रकार का ममता-बोध उसके हृदय में घर किये हुए था। वहाँ की कोई बहू उस संबंध का उल्लंघन करे, यह बात उसे किसी भी हालत में अच्छी नहीं लगी। कुमुदिनी से उसने जो-कुछ कहा उसका आशय इस प्रकार है—पुरुष की प्रकृति में दर्द की बहुत कमी रहती है और असंयम अधिक, यह बात तो आदिम

युग से ही सबके आगे स्पष्ट है। सृष्टि की व्यवस्था तो हम लोगों के हाथ में नहीं है, इसलिए जो हमने सहज में पाया है उसीको लेकर चलना चाहिए। 'ये लोग तो इसी तरह के होते हैं', यह सोचकर, मन को तैयार करके जैसे भी हो सांसारिक धंधों को चलाते रहना चाहिए। क्योंकि परिवार चलता ही स्त्रियों से है। पति चाहे अच्छा हो या बुरा, पारिवारिक संबंधों को स्वीकार करना ही होगा। यदि ऐसा किसी तरह भी न हो सके तो मृत्यु के सिवा और कोई गति नहीं रह जाती।

कुमुदिनी ने हँसकर कहा, "तो अच्छा ही तो है। मृत्यु का क्या अपराध है ?"

मोती की माँ तुरंत चिंता के स्वर में बोल उठी, "ऐसी बात मुँह से मत निकालो !"

कुमुदिनी को पता नही था कि कुछ दिन पहले उन्हींके मुहल्ले में एक सत्रह साल की बहू ने कार्बोलिक एसिड खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। उसका एम० ए० पास पति किसी सरकारी आफ़िस में एक बडे पद पर काम करता था। पत्नी ने जूड़े में खोंसने की चाँदी की एक कंघी खो डाली है, माँ से यह सुनकर उस आदमी ने उसे लात मारी थी। वह बात याद करके मोती की माँ के शरीर में काँटे खड़े हो गए।

तभी नवीन भीतर आ पहुँचा। कुमुदिनी प्रसन्न हो उठी। बोली, "मैं जानती थी कि लाला के आने में अब कुछ देर न होगी।"

नवीन हँसकर बोला, "न्याय-शास्त्र में भाभी दखल रखती है, ऐसा लगता है। पहले देखा धुएं को, उसके बाद आग की कल्पना आसान है।"

मोती की माँ बोली, "दीदी, तुम्हीने इन्हें प्रश्रय देकर बिगाड़ डाला है। वह समझ गए है कि उन्हें देखकर तुम प्रसन्न होती हो, इसी घमंड से—"

"जो मुझ-जैसे आदमी को देखकर प्रसन्न हो सकती है उनकी क्षमता क्या साधारण है ? जिन्होने मेरी सृष्टि की है, वह भी अपनी कारीगरी पर पश्चात्ताप करते हैं और जिन्होंने मेरा पाणि-ग्रहण किया है उनके मन का भाव तो 'देवो न जानाति कुतो मनुष्यः'।"

"लाला, तुम दोनों जने आपस में तर्क-वितर्क करो ! तीसरा व्यक्ति छंदोभंग नहीं करना चाहता। इसलिए मैं चली।"

मोती की माँ बोली, "यह भी कोई बात है, दीदी ! यहाँ तीसरा व्यक्ति कौन है ? तुम या मैं ? क्या तुम यह सोचती हो कि वह गाड़ी-भाड़ा करके मुझसे मिलने आए हैं ?"

"नही, उनके खाने के लिए कह आती हूँ।" कहकर कुमुदिनी चली गई।

५२

मोती की माँ ने पूछा, "कोई समाचार है शायद ?"

"है। मै देर न कर सका। तुमसे परामर्श करने आया हूँ। तुम तो चली गईं। उसके बाद भैया सहसा मेरे कमरे में आ खड़े हुए। उनका मिजाज़ बहुत ही बिगड़ा हुआ था। साधारण मूल्य की एक गिलट के काम वाली राखदानी ग़ायब हो गई है। जिनके कब्ज़े में इस समय वह है उन्होने निश्चय ही उसे सोने का समझ रखा है, नही तो उतने से अपना परकाल नष्ट करना कौन चाहेगा ? तुम तो जानती ही हो कि एक तुच्छ वस्तु भी यदि इधर-उधर हो जाय तो भैया की विपुल सम्पत्ति की भीत हिल उठती है। यह उन्हे तनिक भी सह्य नहीं होता। आज सुबह आफिस जाने के समय वह मुझसे कह गए कि श्यामा को देहात पहुँचा आना होगा। मैं बडे ही उत्साह के साथ उस पवित्र काम में जुट गया था। निश्चय किया था कि उनके आफ़िस से लौटने तक काम पूरा हो जायगा। पर भैया डेढ ही बजे सहसा सीधे मेरे कमरे में आ धमके और बोले, "अभी रहने दो !" ज्यों ही वह कमरे से बाहर निकलने जा रहे थे त्यों ही उनकी दृष्टि भाभी के चित्र पर पड़ी, जो मेरे डैस्क के ऊपर रखा हुआ था। ठिठककर खड़े रह गए। मैं समझ गया कि अपनी तिरछी दृष्टि को सीधा करके चित्र देखने मे भैया को लाज आ रही है। बोला, "भैया, तनिक बैठो, ढाका की एक साड़ी तुम्हें दिखाना चाहता हूँ। मोती की माँ की छोटी भावज की इच्छा है, उसके पाँव भारी है, उसे देनी है। पर गणेशराय मुझे दाम के संबंध में ठगना चाहता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि एक बार तुम देख लो ! मुझे तो ऐसा नही लगता कि तेरह रुपए उसका दाम हो सकता है। मैं तो समझता हूँ कि नौ-साढ़े-नौ रुपये से अधिक की चीज वह नहीं है।"

मोती की माँ आश्चर्य से बोली, "यह बात तुम्हारे दिमाग में कहाँ से घुस गई ? मेरी छोटी भावज के पाँव भारी कैसे हो सकते हैं, क्योंकि अभी उसका बच्चा डेढ़ महीने का है। देख रही हूँ कि आजकल कोई बात बनाकर कहने में तुम्हें कुछ भी झिझक नही मालूम होती। अपनी यह नई विद्या तुमने कहाँ से सीखी ?"

"जहाँ से कालिदास ने कवित्व पाया था—वाणी वीणापाणि से।"

"जब तक तुम्हे वीणापाणि नहीं छोड़ती तब तक तुम्हारे साथ गिरस्ती चलाना संभव कैसे होगा ?"

"मैने प्रतिज्ञा की है कि स्वर्गारोहण के समय नरक-दर्शन कर जाऊँगा। भाभी के चरणों में यही मेरा दान होगा।"

"पर साढ़े नौ रुपये की ढाकाई साड़ी उसी क्षण तुमने कहाँ से जुटा ली?"

"कही से भी नहीं। बीस मिनट बाद लौटकर मैने कहा, 'गणेशराय वह साड़ी मुझसे कहे बिना ही लौटा ले गया है।' भैया का मुँह देखकर मैं समझ गया कि इस बीच वह चित्र उनके चित्त के भीतर घुसकर स्वप्न का रूप धारण कर चुका है। न जाने क्यों, केवल मुझीसे भैया ऐसे अवसरों पर संकोच करते है। और कोई होता तो उसके सामने ही उस चित्र को चट से उठा लेने में उन्हें तनिक भी झिझक न होती।"

"तुम भी तो कुछ कम लोभी नहीं हो। तुमने वह चित्र भैया को दे ही क्यों न डाला?"

"वह तो मैने दे ही दिया है, पर सहज मन से नही। मैंने कहा, 'भैया, इस चित्र से एक ग्रायल-पेंटिंग तैयार कराके तुम्हारे सोने के कमरे में उसे टाँग दिया जाय तो कैसा रहे?' भैया उदासीन भाव से, 'अच्छा, देखी जायगी।' कहकर वह चित्र लेकर ऊपर के कमरे में चले गए। उसके बाद क्या हुआ, यह मैं ठीक नहीं जानता। शायद फिर ग्राफ़िस में उनका जाना न हो सका, और उस चित्र के वापस मिल सकने की आशा भी जाती रही।"

"अपनी भाभी के लिए जब तुम स्वर्ग तक से हाथ धोने को राज़ी हो तब समझ लो कि केवल एक चित्र ही गँवाया।"

"स्वर्ग के संबध में संदेह है, पर चित्र के संबंध में तनिक भी संदेह नहीं था। ऐसा चित्र कभी-कभाक ही उतर पाता है। जिस दुर्लभ लग्न में उनके मुख पर लक्ष्मी का प्रसाद पूर्ण रूप से उतर आया था ठीक उसी शुभ योग में वह चित्र लिया गया था। कभी-कभी रात में नींद से जगकर, बत्ती जलाकर मैं उस चित्र को देखता रह जाता था। बत्ती के प्रकाश में उसके भीतर का रूप और अधिक निखर उठता था।"

"देखो, मेरे मुँह के सामने इस तरह की बातें करके जो ज्यादती तुम कर रहे हो उससे तुम्हारे मन में क्या तनिक भी भय पैदा नहीं होता?"

"यदि भय होता तो तुम्हारे चिंतित होने की बात होती। उन्हें देखकर मेरा आश्चर्य बढ़ता ही जाता है, कम नही होता। मैं सोचता हूँ कि हम लोगों के भाग्य में ऐसे कैसे संभव हो गया? मैं उन्हें भाभी कह पाता हूँ, यह सोचकर रोमांच हो आता है। और वह नवीन के समान साधारण मनुष्य को भी हँसते हुए अपने निकट बिठाकर खिला सकती है, यह बात भी इस विराट् विश्व में

कैसे संभव हो गई ? हमारे परिवार में सबसे अभागे हैं भैया। जिसे उन्होंने सहज ही पाया था; उसे कसकर बाँधने के प्रयत्न में उन्होंने खो दिया।"

"भाभी की चर्चा चलने पर जब तुम्हारा मुँह एक बार खुल जाता है तब फिर बंद ही नहीं होना चाहता।"

"मँझली बहू, जानता हूँ यह बात तुम्हें कुछ लगती है।"

"नहीं, कभी नही।"

"हाँ, तनिक लगती है। पर इस सिलसिले में तुम्हें एक बात की याद दिला दूँ। नूरनगर में जब स्टेशन पर भाभी के भैया को देखकर जो सब बातें तुमने कही थी उन्हें भी चलतू भाषा में ज्यादती ही कहा जायगा।"

"अच्छा, अच्छा, वे सब तर्क रहने दो। तुम क्या कहना चाहते थे, वही कहो !"

"मुझे विश्वास है कि भैया आज-कल में ही भाभी को बुला लेंगे। भाभी इतने आग्रह से मायके चली आई और तब से अब तक लौटने का नाम नहीं ले रही हैं, इस बात से भैया के मन में प्रचंड अभिमान जगा है, यह मैं जानता हूँ। भैया किसी तरह भी यह बात समझना नही चाहते कि सोने के पिंजरे के प्रति पंछी को लोभ क्यों नही है। वह उसे निर्बोध और अकृतज्ञ पंछी मानते है।"

"तब यह तो अच्छी ही बात है। जेठजी बुला लें न ! यही बात तो तय थी।"

"मैं तो सोचता हूँ कि यदि भाभी बुलाने के पहले ही चली जायँ तो अच्छा हो। भैया के अभिमान की इतनी जीत रह जाय तो क्या हानि है। इसके अलावा, विप्रदास बाबू तो यह चाहते है कि भाभी अपने परिवार के बीच लौट जायँ। मैंने ही मना किया था।"

विप्रदास के साथ इसी प्रसग को लेकर आज क्या-क्या बातें हो गई थी, इसका तनिक भी आभास मोती की माँ ने नहीं दिया। उसने कहा, "तब विप्रदास बाबू के पास जाकर उनसे यह बात कहते क्यों नहीं।"

"मै जाता हूँ, सुनकर वह प्रसन्न ही होंगे।"

"तभी कुमुदिनी दरवाज़े के बाहर से बोली, "भीतर आ सकती हूँ ?"

मोती की माँ बोली, "तुम्हारे देवर तुम्हारा रास्ता देख रहे है।"

"जन्म-जन्मान्तर से रास्ता देखता चला आ रहा था, इस बार दर्शन पा लिए।"

"आः लाला, तुम इतनी बातें बनाकर कैसे कह पाते हो !"

"मुझे स्वयं आश्चर्य होने लगता है । मै समझ ही नही पाता ।"

"अच्छा, चलो अब खाना खाने चलना होगा ।"

"खाने के पहले एक बार तुम्हारे भैया के साथ कुछ बाते कर आऊँ ।"

"नही, ऐसा नही हो सकता ।"

"क्यों ?"

"आज भैया बहुत बोल चुके है, अब अधिक नही ।"

"अच्छी खबर है ।"

"होगी । तुम चाहे कल आ जाना, पर आज और कोई बात नही होनी चाहिए ।"

"कल हो सकता है कि मुझे छुट्टी ही न मिले, हो सकता है कोई बाधा ही हो जाय । आज केवल पाँच मिनट के लिए अनुमति दीजिए, यह मेरा अनुरोध है । तुम्हारे भैया प्रसन्न ही होंगे, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचेगा ।"

"अच्छा पहले तुम खा लो, उसके बाद देखा जायगा ।"

भोजन के बाद कुमुदिनी नवीन को विप्रदास के कमरे में ले गई । उसने देखा कि वह अभी तक सोया नही है । कमरे में प्रायः अँधेरा था, प्रकाश की लौ मद्धिम पड़ गई थी । खुली खिड़की से तारे दिखाई देते थे । रह-रहकर दखिनी हवा सायँ-सायँ करके बह रही थी । कमरे के पर्दे, पलंग की झालर, अलगनी में लटकते हुए कपड़े विविध प्रकार की छायाएँ फैलाए काँप-काँप-से उठते थे । फ़र्श पर किसी संवाद-पत्र का एक पन्ना बीच-बीच में टेढ़े-मेढ़े ढंग से उड़ता फिर रहा था । विप्रदास ऊँघता हुआ-सा स्थिर बैठा था । आगे पग बढ़ाने का साहस नवीन को नहीं होता था । साँझ की छाया और रोग-जनित दुर्बलता ने विप्रदास को एक प्रकार की ओट दे दी थी । लगता था, जैसे वह संसार से बहुत दूर किसी दूसरे ही लोक में पहुँचा हुआ है । लगता था, जैसे उसके समान अकेला मनुष्य इस संसार में दूसरा नहीं है ।

नवीन ने आगे बढ़कर, विप्रदास के चरणों की धूल सिर पर लेकर कहा, "आपके आराम में बाधा नही पहुँचाना चाहता । केवल एक बात मुझे कहनी है । बहुत दिन हो गए है, हम लोग इस प्रतीक्षा में हैं कि भाभी घर लौट जायँ ।"

विप्रदास ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह स्थिर बैठा रहा ।

कुछ देर बाद नवीन बोला, "आपकी अनुमति पाने पर ही उन्हें ले जाने का प्रबंध करूँगा ।"

इस बीच कुमुदिनी धीरे-से भैया के पाँवों के नीचे आकर बैठ गई थी ।

उसके मुँह की ओर देखते हुए विप्रदास ने कहा, "यदि तू यह समझती है कि तेरे जाने का समय हो गया है तो तू चली जा कुमू !"

कुमुदिनी बोली, "नहीं भैया, मैं नही जाऊँगी।" कहकर वह विप्रदास के घुटने के सहारे औंधी हो गई।

कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल रह-रहकर हवा के झोंके से किसी खिड़की का ढीला किवाड़ खड़खड़ा रहा था, और बाहर बाग में पेड़ो के पत्तों की सनसनाहट सुनाई देती थी।

कुमुदिनी कुछ ही देर बाद पलँग से उठकर नवीन से बोली, "चलो अब हो गया, भैया, तुम सोओ !"

घर लौटने पर मोती की माँ बोली, "इस सीमा तक जाना अच्छा नही है।"

"अर्थात् आँखों को चाहे कितना ही क्यों न कोंचा जाय, आँखो का लाल हो उठना अच्छा नहीं है?"

"नहीं जी नहीं, यह उन लोगों का घमंड है। इस ससार मे उन्हें अपने योग्य कोई नहीं मिलता, वे अपने को सबके ऊपर समझते है।"

"मँझली बहू, इतनी बड़ी अहम्मन्यता सभी को नहीं सुहाती, पर उन लोगों की बात ही दूसरी है।"

"तब क्या इस कारण अपने सगे-सम्बन्धियों से संबंध तोड लेना चाहिए ?"

"सगे-संबधी कहने ही से कोई आत्मीय नहीं हो जाते। वे लोग हम लोगों से बिलकुल ही भिन्न श्रेणी के मनुष्य है। संबंध जोडकर उनसे व्यवहार करने में मुझे बड़ा संकोच होता है।"

"कोई कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, संबंध का अपना अलग महत्त्व होता है, यह बात न भूलो !"

नवीन समझ गया कि उस आलोचना में कुमुदिनी के प्रति मोती की माँ के भीतर की ईर्ष्या भी बोल रही है। इसके अतिरिक्त, यह भी सच है कि पारिवारिक बंधन का मूल्य स्त्रियों के लिए बहुत अधिक होता है। इसलिए नवीन ने इस संबंध में व्यर्थ विवाद मे न पडते हुए कहा, "और कुछ दिन देख लिया जाय। भैया का आग्रह भी तब तक कुछ बढ जायगा। उससे कोई हानि नहीं होगी।"

५३

मधुसूदन के परिवार में उसका स्थान पक्का हो गया है, इस बात की आशा श्यामासुन्दरी कर सकती थी पर वह कर नहीं पाती थी। आरंभ में उसे लगा था कि घर के नौकर-चाकरों पर उसका अधिकार जम चुका है, पर बाद में धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि वे लोग मन-ही-मन उसे मालकिन के पद पर बिठाने के लिए राज़ी नहीं हैं। यदि साहस करके वे लोग उसके आदेश की प्रकट रूप से अवज्ञा कर पाते तो उन्हें आंतरिक प्रसन्नता होती। इसी कारण श्यामा उन लोगों को अकारण डाँटती रहती थी और अकारण ही किसी काम के लिए आदेश देती थी, और इस प्रकार उन लोगों की चुटिया पकड़ती रहती थी। सब समय झक-झक करती रहती थी। माँ-बाप की गालियाँ तक देती थी। कुछ दिन पहले तक इसी घर में श्यामा नगण्य थी, उसे कोई नहीं पूछता था। उस स्मृति को मिटाने के लिए बड़े उत्साह से वह सफ़ाई के काम में जुट गई, पर बाद में देखा कि वह उसके बूते का नहीं है। घर के एक पुराने नौकर ने श्यामा की डाँट-फटकार न सह सकने के कारण काम से इस्तीफ़ा दे दिया। उस बात को लेकर श्यामा को अपना सिर नीचा करना पड़ा। उसका कारण यह था कि अपने धन-भाग्य के संबंध में मधुसूदन कुछ अंध-संस्कारों से परिचालित होता था। जो सब नौकर उसकी आर्थिक उन्नति के समकालवर्ती थे उनकी मृत्यु या पद-त्याग को वह अशुभ लक्षण मानता था। इसी कारण उस समय का एक बहुत पुराना डैस्क, जिसमें स्याही के दाग़ थे, आफ़िस वाले कमरे में दामी सामान के बीच असंगत रूप से निःसंकोच पड़ा हुआ था। उस डैस्क के ऊपर एक पुरानी दवात और सस्ते क़िस्म की लकड़ी की एक पुराने ढंग की विलायती क़लम थी। इस क़लम से उसने व्यावसायिक जीवन के आरंभ में पहले महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किये थे। उस समय के पुराने उड़िया नौकर दधि ने जब इस्तीफ़ा दिया था तब मधुसूदन ने उसकी बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, बल्कि उलटे उसके भाग्य में बख्शीश जुट गई। इस बात को लेकर श्यामासुन्दरी ने जब मान जताया तब देखा कि उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसे दधि का हँसता हुआ चेहरा देखना पड़ा। श्यामा की कठिनाई यह थी कि वह मधुसूदन को वास्तव में चाहती थी। इसलिए मधुसूदन के मिजाज़ पर अधिक दबाव डालने का साहस उसे नहीं होता था। किस सीमा पर आकर उसका सुहाग ढिठाई में बदल सकता है, मन-ही-मन वह इसी बात का अंदाज़ लगाती

रहती थी। मधुसूदन भी निश्चित रूप से जानता था कि श्यामा के लिए समय या भावना की बरबादी की कोई आवश्यकता नहीं है। लाड़-दुलार के अपव्यय के परिमाण में कमी करने पर भी दुर्घटना की संभावना बहुत नहीं थी। फिर भी श्यामा के प्रति उसके मन में एक स्थूल मोह था। उस मोह को सोलहों आना भोग मे लगाने पर भी वह उसे आसानी से सँभालकर चल सकता है, इस प्रिय अनुभूति से उसे बड़ा उत्साह मिलता था। इसमें व्यतिक्रम होने पर बधन टूट जाता। मधुसूदन के निकट कर्म से अधिक और कुछ नहीं था। उस कर्म के लिए उसे सबसे अधिक आवश्यकता अपने प्रभुत्व की थी। उसकी सीमा के भीतर श्यामा का प्रभुत्व पंगु हो जाता था, तनिक आगे पाँव बढाते ही ठोकर खाकर लौट आता था। इसलिए श्यामा केवल अपने को दान किये जाती थी, किसी बात का दावा नहीं कर पाती थी। रुपये-पैसे और साज-सरंजाम से वह सदा वंचित रही—इसलिए इन दो के प्रति उसके लोभ का अन्त नहीं था। पर इसमें भी उसे परिमाण की रक्षा करनी होती थी। इतने बड़े धनी से जिसकी प्रत्याशा उसे सहज ही करनी चाहिए थी वह उसके लिए दुराशा बन गई थी। मधुसूदन बीच-बीच में उसके प्रति प्रसन्न होकर कुछ कपड़े और गहने उसके लिए ले आता था, पर इतने से उसके संग्रह की भूख नहीं मिटती थी। प्रलोभन की छोटी-मोटी चीज़ो का संग्रह करने के लिए उसके हाथ सब समय चंचल रहते थे। वहाँ भी उसे बाधा का सामना करना पड़ता था। एक इसी प्रकार की साधारण घटना के कारण कुछ दिन पहले उसे निर्वासन का दंड भी भुगतना पड़ा था। पर मधुसूदन उसकी सेवा और संग का आदी हो चुका था—यह पान और तमाखू की ही तरह सस्ता होने पर भी जबरदस्त अमल था। उसमें विघ्न होने पर मधुसूदन के काम में ही विघ्न होता। इसलिए इस बार श्यामा का दंड रद्द कर दिया गया। पर दंड का भय श्यामा के सिर पर झूलने लगा था।

अपने इस क्षीण अधिकार के बीच में श्यामासुन्दरी के मन में यह आशंका बराबर बनी हुई थी कि कुमुदिना कब फिर से अपने सिंहासन पर अधिकार जमा बैठेगी। इस ईर्ष्या की पीड़ा के कारण उसके मन में तनिक भी शांति नहीं थी। वह जानती थी कि कुमुदिनी के साथ उसकी प्रतियोगिता कभी चल ही नहीं सकती, क्योंकि वह दोनों एक ही ज़मीन पर नहीं खड़ी थीं। कुमुदिनी मधुसूदन के शासन से परे थी, वही उसका ज़ोर सब में अधिक था। और श्यामा इस हद तक उसके अधिकार के भीतर थी कि व्यवहार में आने पर भी उसका कोई मूल्य नहीं था। इस बात को लेकर श्यामा न जाने कितनी रो चुकी थी और कितनी ही बार सोचती थी कि मौत होने पर ही रक्षा है। अपना माथा

पीटती हुई वह अपने ही से पूछती कि "मैं इस क़दर सस्ती क्यों हुई ?" फिर सोचती थी कि सस्ता होने के कारण ही उसे स्थान मिला है। जिसकी दर अधिक होती है उसका आदर भी अधिक होता है, और जो सस्ता है शायद अपने सस्तेपन के कारण ही उसकी जीत होती है।

मधुसूदन ने जब तक श्यामा को ग्रहण नही किया था तब तक श्यामा को इतना असह्य दुःख नहीं था, उसने अपने उपवासी भाग्य को एक प्रकार से स्वीकार कर लिया था। बीच-बीच में सामान्य खुराक को ही वह यथेष्ट समझती थी। पर आज अधिकार पाने और न पाने के बीच किसी प्रकार भी सामंजस्य नही हो पा रहा था। अब खोया तब खोया, इसी आशका से मन घबराया रहता है। भाग्य की रेल-लाइन ऐसे कच्चे ढंग से बिछाई गई थी कि 'डिरेल' होने का भय सर्वत्र और प्रतिक्षण था। मोती की माँ के निकट जी हल्का करके सांत्वना पाने की चेष्टा उसने एक बार की थी, पर मोती की माँ इस तरह मुँह बिचकाकर और सिर झटकाकर उससे कतराकर निकल गई थी कि उसका कोई घातक बदला वह चुका पाती तो यही समय था। पर वह जानती थी कि जहाँ तक परिवार की व्यवस्था का प्रश्न है, मधुसूदन के निकट मोती की माँ का मूल्य है वहाँ उसकी तनिक भी नही चलेगी। तब से दोनों के बीच बोल-चाल बंद थी, भरसक दोनों एक-दूसरे का मुँह तक नहीं देखती थीं। इस तरह इस घर में श्यामा का स्थान पहले से भी अधिक संकीर्ण हो गया है। कहीं भी उसे तनिक भी स्वतन्त्रता प्राप्त नही है। ऐसी स्थिति में एक दिन शाम को सोने के कमरे में आकर उसने देखा, टेबिल के ऊपर दीवार के सहारे कुमुदिनी का फोटो लटक रहा था। जो वज्र सिर पर पड़ेगा उसीकी विद्युत्-शिखा उसकी आँखो में आ लगी। वंशी के काँटे से बिद्ध मछली की तरह उसका हृदय धुक-धुक करने लगा। जी चाहता था उस चित्र से आँखे हटा ले, पर हटा नहीं पाती थी। एकटक देखती रही। चेहरे का रंग उड़ गया, दोनों आँखें दहक रही थी और मुट्ठी कसकर बँधी हुई थी। वह कोई चीज तोड़ना, फोड़ना या फाड़ना चाहती थी। उस कमरे मे अधिक देर खड़े रहने पर वह कोई चीज़ नष्ट कर डालेगी, इस आशंका से वह सहसा बाहर निकल आई। अपने कमरे में जाकर, पलँग पर औंधे लेटकर उसने चादर को टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला।

रात को आई थी। बाहर से बैरे ने ख़बर दी कि महाराज ने सोने के कमरे में बुलाया है। यह कहने की शक्ति उसमें नहीं थी कि 'नहीं जाऊँगी'। तुरंत उठकर, मुँह धोकर ढाका वाली एक बूटेदार साड़ी पहनकर, तनिक इत्र मलकर वह सोने के कमरे में चली गई। कुमुदिनी का चित्र नज़र न आय, इस

बात की चेष्टा कर रही थी। पर ठीक उस चित्र के सामने ही बत्ती जल रही थी, सारा प्रकाश किसी की दीप्त दृष्टि की तरह उस चित्र को उजागर कर रहा था। सारे कमरे में वही एक चित्र दर्शनीय था। श्यामा ने बदस्तूर पान का डिब्बा लेकर मधुसूदन को पान दिया। उसके बाद नीचे बैठकर उसके पाँवों को दोनों हाथों से सहलाने लगी। चाहे जिस कारण से हो, आज मधुसूदन प्रसन्न था। विलायती दुकान से एक चाँदी का फ्रेम फोटो पर चढ़ाने के लिए ले आया था। गंभीर मुद्रा मे उसने श्यामा से कहा, "यह लो!" श्यामा को दुलार जताते समय भी मधुसूदन मधुर रस की सृष्टि मे यथेष्ट कृपणता का परिचय देता था। वह जानता था कि उसे तनिक प्रश्रय मिलते ही फिर मर्यादा का ध्यान नहीं रहेगा। एक भूरे रंग के कागज मे चीज़ लपेटी हुई थी। धीरे-धीरे कागज़ खोलकर श्यामा बोली, "क्या होगा इससे?"

मधुसूदन बोला, "नही जानती हो, इसमें फोटो रखा जाता है।"

श्यामा के भीतर जैसे किसी ने चाबुक मार दिया। बोली, "किसका फोटो इसमें रखोगे?"

"तुम्हारा अपना वाला। उस दिन जो फोटो लिया गया था न!"

"मुझे इतना 'सुहाग' नहीं चाहिए।" कहकर उसने फ्रेम फ़र्श पर पटक दिया।

चकित होकर मधुसूदन ने पूछा, "इसके क्या माने?"

"कुछ भी नही," कहकर मुँह पर हाथ रखकर वह रो पड़ी। उसके बाद पलंग पर से फ़र्श पर जाकर, औंधी होकर सिर पीटने लगी। मधुसूदन ने सोचा, 'कम दाम की चीज़ होने से शायद श्यामा को पसंद नहीं आई—शायद वह एक कीमती गहना चाहती है।' दिन-भर आफिस के कामों में जुटे रहने के बाद घर आते ही यह काण्ड उसे तनिक भी अच्छा नहीं लगा। 'यह तो प्रायः हिस्टीरिया है,' उसने सोचा। हिस्टीरिया से उसे बड़ी चिढ़ थी। जोर से डाँटते हुए बोला, "उठो, मैं कहता हूँ—अभी उठो!"

श्यामा उठकर दौड़ती हुई बाहर निकल गई।

मधुसूदन बोला, "ऐसा किसी तरह भी नहीं चलेगा।"

मधुसूदन श्यामा को खूब अच्छी तरह जानता था। वह निश्चित समझे बैठा था कि कुछ ही देर बाद श्यामा लौट आयगी और पाँवों पर गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगेगी। जब वह ऐसा करेगी तब उसे डाँट देना होगा—ऐसा उसने तय किया।

दस बज गए, पर श्यामा नहीं आई। और एक बार श्यामा के कमरे के

बाहर हाँक पड़ी, "महाराज ने बुलाया है ।"

श्यामा बोली, "महाराज से कह दो, मेरी तबीअत ठीक नहीं है ।"

मधुसूदन ने सोचा, 'दुस्साहस कुछ कम नही है, हुक्म देने पर भी नहीं आती !'

उसने सोचा, 'कुछ देर बाद अपने-आप आयगी ।' पर वह नहीं आई । ग्यारह बजने मे केवल पन्द्रह मिनट बाकी थे । मधुसूदन पलंग छोड़कर सीधा श्यामा के कमरे की ओर गया । देखा, कमरे मे प्रकाश नहीं है । अँधेरे में साफ दिखाई दिया, श्यामा फ़र्श पर पडी हुई थी । मधुसूदन ने सोचा, 'वह सब कांड केवल उससे अधिक दुलार पाने के लिए रचा जा रहा है ।'

वह गरजता हुआ बोला, "उठकर चलो, कह रहा हूँ, तुरंत उठो ! ज्यादा टसन न दिखाओ !"

श्यामा बिना कुछ बोले ही उठकर चली आई ।

५४

दूसरे दिन आफ़िस जाने के पहले भोजन के बाद आराम करने के लिए जब मधुसूदन सोने के कमरे में गया तब उसने देखा कि चित्र गायब है । दूसरे दिनों की तरह आज श्यामा पान लेकर मधुसूदन की सेवा के लिए पहले ही से तैयार नही खड़ी थी । आज वह उपस्थित ही नही थी । उसे बुलाया गया । स्पष्ट देखा गया कि वह तनिक कुंठित भाव से आई । मधुसूदन ने पूछा, "मेज़ पर फोटो रखा हुआ था, क्या हुआ ?"

श्यामा अत्यन्त आश्चर्य का-सा भाव जताती हुई बोली ? "फोटो ? किसका फोटो ?"

उसके आश्चर्य में जो बनावटीपन था उसकी मात्रा कुछ अधिक हो गई थी । उतना भी इसलिए संभव हो पाया था कि साधारणतः पुरुषों की बुद्धि पर स्त्रियों की अश्रद्धा रहती है !

मधुसूदन ने झल्लाकर कहा, "फोटो तुमने नहीं देखा ?"

नितांत सीधे और भले आदमियों का-सा चेहरा बनाती हुई श्यामा बोली, "नहीं तो, मैंने नही देखा ।"

गरजकर मधुसूदन ने कहा, "तुम झूठ बोलती हो ।"

"मैं झूठ क्यों बोलने लगी ? फोटो लेकर मैं क्या करूँगी ?"

"तुमने कहाँ रखा है, मै कहता हूँ, उसे जल्दी निकाल लाओ ! नहीं तो अच्छा नहीं होगा, कहे देता हूँ।"

"बाप रे, क्या आफ़त है ! मैं कहाँ से निकाल लाऊँ ?"

बैरा को बुलाया गया। मधुसूदन बोला, "जाओ, मँझले बाबू को बुला लाओ !"

नवीन आया। मधुसूदन बोला, "बड़ी बहू को बुला लाओ !"

श्यामा मुँह बिचकाकर काठ की पुतली की तरह चुप ही बैठी रही।

नवीन कुछ देर बाद सिर खुजलाता हुआ बोला, "भैया, क्या वहाँ एक बार तुम्हारा जाना उचित नही होगा ? तुम यदि स्वयं जाकर कहोगे तो भाभी प्रसन्न होंगी।"

मधुसूदन कुछ देर तक गंभीर मुद्रा में हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। उसके बाद बोला, "अच्छा कल रविवार है, कल जाऊँगा।"

नवीन मोती की माँ के पास जाकर बोला, "एक काम कर आया हूँ।"

"मेरी सलाह लिये बिना ही ?"

"सलाह लेने का समय नहीं था।"

"तब तो तुम्हें पछताना पड़ेगा।"

"असंभव नहीं है। कुंडली में मेरे बुद्धि स्थान में और कोई ग्रह नहीं है—केवल है मेरी श्रीमती जी। इसलिए सदा मैं तुम्हे अपने हाथ के पास रखकर चलता हूँ। बात यह है कि भैया ने आज भाभी को ले आने का आदेश दिया। मैं चट से बोल बैठा, 'यदि तुम स्वयं जाकर कहो तो ठीक रहेगा।' पता नहीं, भैया का मिजाज़ उस समय कैसा चल रहा था, वह राज़ी हो गए। तभी से मैं इस सोच में पड़ा हूँ कि इसका परिणाम क्या होगा।"

"अच्छा नही होगा। विप्रदास बाबू का मिजाज़ जैसा मैं देख आई हूँ उससे भय लगता है कि न जाने क्या बोल बैठेंगे। अंत में कुरुक्षेत्र की लड़ाई ठन जायगी। ऐसा काम तुमने किया ही क्यों ?"

"पहला कारण यही है कि बुद्धि का कोठा ठीक उसी समय खाली था, क्योंकि तुम कहीं दूसरी जगह थीं। दूसरा कारण यह है कि उस दिन भाभी ने जब कहा कि मैं नहीं जाऊँगी तब उस बात के भीतरी माने मैं समझ गया था। उनके भैया रुग्ण शरीर लेकर कलकत्ता आये, पर महाराज एक दिन के लिए भी उनसे मिलने नही गये—यह अनादर उन्हें सबसे अधिक असहनीय लगा था।"

सुनकर मोती की माँ तनिक चौंक उठी। यह बात उसके ध्यान में पहले

क्यों नहीं आई, इस पर उसे आश्चर्य हुआ। असल बात यह थी कि उसके मन में, उसके अनजाने ही, ससुराल के माहात्म्य के संबंध में एक प्रकार का गर्व का भाव वर्तमान था। साधारण लोगो की तरह ही महाराजा मधुसूदन के ऊपर भी भाई-चारा निभाने का दायित्व है, यह बात उसका मन स्वीकार नहीं करता था।

उस दिन के तर्क को आगे बढ़ाते हुए नवीन ने तनिक टिप्पणी के साथ कहा, "मुझे अपनी बुद्धि से शायद यह बात याद न आती, पर तुम्हीने मुझे इसकी याद दिलाई थी।"

"किस तरह ?"

"तुमने उस दिन कहा था न कि भाई-चारे का दायित्व आत्म-मर्यादा के दायित्व से भी बडा है। तभी मैं यह सोचने का साहस कर सका कि महाराज के समान बडे आदमी को भी विप्रदास से मिलने जाना चाहिए।"

मोती की माँ हार मानने को राजी नही थी। बात काटकर बोली, "काम के समय तुम इतनी बेकार की बातें कहाँ से ले आते हो! अब करना क्या चाहिए, यह सोचो!"

"आरम्भ ही में सभी बातो पर अन्त तक सोचने से धोखा खाना पड़ता है। पहला कर्त्तव्य क्या है, यही इस समय सोचना है। और वह है भैया का विप्रदास बाबू से मिलना। उसके फलस्वरूप जो-कुछ भी घटेगा उसकी चिन्ता अभी से करने से चिन्ताशीलता का परिचय अवश्य मिलेगा, पर बह होगी अतिचिंता-शीलता।"

"क्या पता। मुझे तो लगता है कि झंझट में फँसना पडेगा।"

५५

उस दिन कुमुदिनी ने प्रातःकाल भैया के कमरे में बहुत देर तक गाया-बजाया। प्रातःकाल के सुर में अपनी व्यक्तिगत पीड़ा विश्व-पीड़ा बनकर असीम विस्तार के साथ दिखाई देती है। उसका बंधन ही मुक्ति का रूप धारण कर लेता है। उसके साँप महादेव की जटा में भूषण बन जाते हैं। पीडा की नदियाँ पीड़ा के समुद्र मे जाकर विराम पाती है। उसका रूप बदल जाता है और चंचलता गाम्भीर्य में लुप्त हो जाती है। विप्रदास ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा, "कुमू, संसार में क्षुद्र-काल ही सत्य के रूप में प्रकट होकर दिखाई देता

है, जो असीम काल है वह ओट में छिपा रहता है। जब हम गाते हैं तभी असीम काल सामने आता है और क्षुद्र काल तुच्छ होकर विलीन हो जाता है। इसीसे मन को मुक्ति मिलती है।"

इतने में समाचार मिला कि, "महाराज मधुसूदन आए है।"

पल मे कुमुदिनी के मुँह का रंग उड़ गया। देखकर विप्रदास के मन को बड़ी चोट पहुँची। उसने कहा, "कुमू, तू भीतर जा। तेरी कोई आवश्यकता शायद नहीं पडेगी।"

कुमुदिनी तेज़ी से चली गई। मधुसूदन जान-बूझकर बिना खबर दिये ही चला आया था। दूसरा पक्ष पहले ही से सूचना मिलने पर अपना दैन्य ढकने का अवकाश पा जाय, यह वह नही चाहता था। मधुसूदन का विश्वास था कि बड़े घर का आदमी होने के कारण विप्रदास के भीतर एक स्वाभाविक बड़प्पन है। यह कल्पना उसे सह्य नही थी। इसीलिए वह आज इस तरह से आया, जैसे वह मिलने नही बल्कि दर्शन देने को आया है।

उसका पहनावा भी बड़ा विचित्र था, जिसे देखकर घर के नौकर-चाकर चकित हो सकते थे। डोरिया कमीज़ के ऊपर रंगीन फूलों से कढ़ा रेशम का जाकट था। कंधे पर तहाया हुआ चदरा था। वह यत्न से चुनी हुई काली किनारी वाली शांतिपुरी धोती पहने था। पाँवो में पालिश किया हुआ दरबारी जूता था; बड़ी-बड़ी हीरे-पन्ने वाली अँगूठियाँ उँगलियों में चमक रही थीं। प्रशस्त उदर की परिधि को घेरकर घडी की सोने वाली मोटी चेन झूल रही थी। हाथ में एक फैशन वाली छडी थी, जिसकी सोने की मूठ हाथी की सूँड के आकार में भाँति-भाँति के रत्नो से जड़ी थी। एक असमाप्त नमस्कार की झलक दिखाकर पलंग के बगल वाली एक आराम-कुर्सी पर बैठकर वह बोला : "कैसी तबीअत है, विप्रदास बाबू ? शरीर से तो स्वास्थ्य विशेष अच्छा नहीं लगता।"

विप्रदास इस बात का कोई उत्तर न देकर बोला, "तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक ही लग रहा है।"

"कुछ विशेष अच्छा नहीं है—शाम को सिर में दर्द होने लगता है और भूख भी ठीक से नहीं लगती। भोजन में तनिक भी गड़बड़ी होने पर फल भुगतना पड़ता है। बीच-बीच में अनिद्रा भी हो जाती है—सबसे अधिक कष्ट उसीसे होता है।"

सेवा-शुश्रूषा करने वाले व्यक्ति की एकांत आवश्यकता है, इस बात की भूमिका उसने बाँध दी।

विप्रदास बोला, "शायद आफ़िस के कामों में अधिक परिश्रम करना पड़

रहा होगा।"

"ऐसी बात तो नहा है। आफ़िस का काम अपने-आप चलता रहता है। मुझे खास कुछ देखना नहीं पड़ता। मैकन्टन साहब के ही ऊपर काम का भार अधिक है। सर आर्थर पीबडी भी मेरी सहायता करते रहते है।"

हुक्का आया। पान के डिब्बे में पान और मसाला लेकर नौकर आ खडा हुआ। उसमें से एक छोटी-सी इलायची लेकर उसने मुँह में डाली, और कुछ नही लिया। हुक्के की नली उठाकर दो-एक बार उसने धीरे-से गुडगुड़ाया। उसके बाद वह नली बाई गोद पर लटकती रही। फिर व्यवहार में नहीं आई। अन्तःपुर से सूचना मिली कि नाश्ता तैयार है। मधुसूदन हड़बड़ाता हुआ बोला, "उसके लिए मुझे क्षमा करना होगा। मैने अभी बताया था कि भोजन के संबंध में मुझे बड़ी सावधानी से चलना होता है।"

विप्रदास ने दूसरी बार अनुरोध नहीं किया। नौकर से बोला, "उनकी तबीअत ठीक नही है, कुछ खा नही पायँगे।"

विप्रदास चुप बैठा रहा। मधुसूदन ने आशा की थी कि कुमुदिनी की चर्चा अपने-आप चल पड़ेगी। उसने सोचा था कि इतने दिन हो गए, अब कुमुदिनी को ससुराल लौटा ले जाने का प्रस्ताव विप्रदास स्वयं ही चिन्ता के साथ करेगा—पर वह तो कुमुदिनी का नाम तक मुँह से नही निकाल रहा था। उसके भीतर-ही-भीतर धीरे-धीरे क्रोध जमा होने लगा। वह सोचने लगा, 'यहाँ आकर भूल की है। यह सब नवीन के कारण हुआ।' उसी क्षण लौटकर उसे कड़ा दंड देने के लिए उसका जी छटपटाने लगा।

तभी एक सीधी-सादी काली किनारी वाली साडी पहने और घूँघट निकाले कुमुदिनी कमरे में चली आई। विप्रदास ने इस बात की आशा नही की थी, वह चकित रह गया। पहले पति के और बाद में भैया के पाँवों की धूल लेकर कुमुदिनी मधुसूदन से बोली, "भैया की तबीअत ठीक नहीं है, बीमारी के कारण वह बहुत थक गए है। डॉक्टर ने उन्हें अधिक बोलने को मना किया है। तुम इस बगल वाले कमरे में चलो!"

मधुसूदन का चेहरा लाल हो उठा। तुरंत कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। गोद से हुक्के की नली फ़र्श पर गिर पड़ी। विप्रदास की ओर बिना देखे ही बोला, "अच्छा, तो चलता हूँ।"

एक बार मधुसूदन के मन में आया कि तुरन्त गाडी पर बैठकर घर वापस चला जाय। पर मन बंधन में पड़ चुका था। बहुत दिनों के बाद आज उसने कुमुदिनी को देखा था। उसने उसे सीधी-सादी, सब समय व्यवहार में आने-

वाली साड़ी पहने आज पहली बार देखा था। इतनी सुन्दर इससे पहले वह कभी नहीं दिखाई दी थी। कितना संयत और कितना सहज उसका वह रूप था। मधुसूदन के यहाँ वह पोशाक से सजी हुई बाहरी स्त्री बनकर रहती थी, यहाँ वह एकदम घर की बेटी बनी हुई थी। आज मधुसूदन उसे बहुत निकट से देख पाया। क्या स्निग्ध मूर्ति थी वह ! मधुसूदन का जी करने लगा कि एक क्षण की भी देर किये बिना उसे अभी साथ मे लेकर चल पड़े। 'वह मेरी है, मेरी ही है, मेरे घर की है, मेरे ऐश्वर्य की है, मेरे शरीर से और मन से उसका संबंध है', यह बात उलट-पुलटकर कहने की इच्छा होती थी।

बगल वाले कमरे में एक सोफा दिखाकर कुमुदिनी ने जब उससे बैठने को कहा तब उसे बैठना ही पडा। यदि अपना कमरा होता तो वह कुमुदिनी को पकड़कर अपनी बगल में बिठाता। कुमुदिनी बैठी नहीं। एक चौकी के पीछे, उसकी पीठ पर हाथ रखकर खड़ी रही। बोली, "क्या तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो ?"

प्रश्न का यह ढंग मधुसूदन को अच्छा नही लगा। बोला, "घर नहीं चलोगी क्या ?"

"नहीं।"

चौंककर मधुसूदन ने कहा, "यह क्या कह रही हो तुम ?"

"मेरी तो तुम्हे कोई आवश्यकता नहीं है।"

मधुसूदन समझ गया कि श्यामासुन्दरी वाली बात उसके कानो तक पहुँच चुकी है, इसीलिए यह मान है। यह मान उसे अच्छा ही लगा। बोला, "क्या कहती हो तुम, कुछ समझ में नहीं आता। आवश्यकता नहीं है तो क्या हुआ ? सूना कमरा क्या अच्छा लगता है ?"

इस बात पर बहस करने की इच्छा कुमुदिनी को नहीं हुई। संक्षेप में एक बार फिर बोली, "मैं नहीं जाऊँगी।"

"इसका क्या मतलब हुआ ? घर की बहू घर वापस नहीं जायगी ?"

संक्षेप में कुमुदिनी बोली, "नहीं।"

सोफे से उठकर मधुसूदन खड़ा हो गया और बोला, "क्या ? नहीं जाओगी ? तुम्हें हर हालत में जाना होगा।"

कुमुदिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मधुसूदन ने कहा, "जानती हो पुलिस को बुलाकर तुम्हें कंधे पर लिवा ले जा सकता हूँ। तुम्हारे 'नहीं' कह देने से क्या होगा ?"

कुमुदिनी चुप रही। मधुसूदन गरजता हुआ बोला, "भैया के स्कूल मे

नूरनगरी क़ायदे फिर सीखने लगी हो !"

कुमुदिनी ने एक बार भैया के कमरे की ओर देखकर कहा, "चुप करो ! इस तरह चिल्लाकर न बोलो !"

"क्यों ? तुम्हारे भैया से बचाकर बातें करनी होंगी क्या ? जानती हो, इसी क्षण उसे बाहर रास्ते पर बैठा सकता हूँ ।"

दूसरे ही क्षण कुमुदिनी ने देखा, भैया कमरे के दरवाज़े के पास आकर खड़ा हो गया है । लंबा क़द, दुबला शरीर, पीला पड़ा हुआ मुँह, दो बड़ी-बड़ी दहकती हुई आँखें । एक मोटा चदरा शरीर से नीचे लटकता हुआ फर्श को छू रहा था । कुमुदिनी को लक्ष्य करके बोला, "कुमू, चल मेरे कमरे में ।"

मधुसूदन चिल्ला उठा । बोला, "तुम्हारा यह दुस्साहस मुझे याद रहेगा । तुम्हारे नूरनगर का नूर ही जब नष्ट न कर दिया तो मेरा नाम मधुसूदन नहीं ।"

कमरे मे जाते ही विप्रदास पलंग पर लेट गया । उसने आँखे बंद कर लीं— नींद से नहीं, थकान और चिंता से । कुमुदिनी सिरहाने के पास बैठकर पंखा झलने लगी । इसी तरह कुछ समय बीत चला । तब क्षेमा बुआ बोली, "आज क्या खाने का इरादा नहीं है, कुमू ? बड़ी देर हो गई ।"

विप्रदास आँखे खोलकर बोला, "कुमू, जा तू खाना खा । अपने कालू भैया को भेज देना !"

कुमू बोली, "भैया, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अभी कालू भैया को मत बुलाओ ! सोने की चेष्टा करो !"

विप्रदास कुछ न कहकर गहरी पीड़ा-भरी दृष्टि से कुमुदिनी की ओर देखता रहा । कुछ देर बाद एक लंबी साँस खीचकर फिर उसने आँखे बंद कर लीं । कुमुदिनी धीरे-धीरे बाहर चली गई और उसने किवाड फेर दिए ।

कुछ ही देर बाद कालू ने ख़बर भेजी कि वह मिलना चाहता है । विप्रदास तकिए के सहारे अधलेटी अवस्था मे बैठ गया । कालू बोला, "जमाई आकर कुछ ही देर बाद चले भी गए । क्या हुआ बताओ तो ! कुमू को अपने साथ लौटा ले चलने के बारे में क्या वे कुछ नहीं बोले ?"

"हाँ, वह कह रहा था, पर कुमू ने जवाब में कह दिया कि वह नहीं जायगी ।"

अत्यंत भीत होकर बोला, "यह क्या कहते हो भैया, यह तो सर्वनाश करने वाली बात है ।"

"हम सर्वनाश से कभी नहीं डरते । हम डरते हैं असम्मान से ।"

"तब तैयार हो जाओ, अब अधिक देर नहीं है । तुम लोगों के ख़ून में यह

बात है, वह जायगी कहाँ। मै जानता हूँ कि मजिस्ट्रेट को तुच्छ करने के लिए तुम्हारे पिता ने दो लाख रुपया नष्ट किया था। सीना तानकर अपनी विपत्ति स्वयं घटाना यह तुम लोगों का वंशगत शौक़ है। पर मेरे वंश में इस तरह की कोई बात नहीं है, इसलिए तुम लोगों का घातक पागलपन चुपचाप नहीं सह पाता। पर अब रक्षा कैसे होगी !"

ऊँचे किये हुए बाएँ घुटने पर दायाँ पाँव रखते हुए विप्रदास ने तकिए पर अपना सिर रख दिया। कुछ देर तक आँखें बंद करके कुछ सोचता रहा। उसके बाद आँखें खोलकर बोला, "दस्तावेज की शर्त के अनुसार मधुसूदन छः महीने का नोटिस दिये बिना मुझसे रुपये नही वसूल कर सकता। इस बीच सुबोध असाढ़ में ही यहाँ पहुँच जायगा—तब कोई एक उपाय किया जा सकेगा।"

कालू तनिक खीझकर बोला, "उपाय होगा क्यों नहीं। सभी बत्तियाँ एक झोंके मे बुझ जाती, अब वे एक-एक करके आराम से बुझेंगी।"

"बत्ती तल के बीच में आकर जल रही है। अब जो भी फर्राश आकर उस पर फूँक मारकर उसे बुझाए, उसमें अधिक हाय-हत्या मचाने की कोई बात नहीं रह गई है। उस तल के प्रकाश की सद्‌गति करना अब अच्छा नही लगता। उससे तो एकदम अँधेरा अच्छा—उसमें आराम रहेगा।"

कालू को बड़ी चोट लगी। उसने सोचा, 'यह बीमार आदमी के मुँह से निकली हुई बात है, क्योंकि विप्रदास तो इस प्रकार हाथ-पाँव समेटकर हार मानने वाला आदमी नही है।' परिणाम से बचने के लिए इतने दिन तक विप्रदास कई तरकीबें सोचता आ रहा था। उसे विश्वास था कि संकट टल जायगा। आज न वह सोच पाता है और न विश्वास करने का बल ही उसमें शेष रह गया है।

कालू स्निग्ध दृष्टि से विप्रदास के मुख की ओर देखता हुआ बोला, "तुम्हें कुछ नही सोचना होगा भाई, जो-कुछ करना होगा मै करूँगा। जाता हूँ। एक बार दलाल टोले का चक्कर लगा आऊँ।"

दूसरे दिन विप्रदास को एक अँगरेज़ी मे लिखा पत्र मिला—मधुसूदन का लिखा हुआ। भाषा एटार्नी की शैली से मिलती-जुलती थी। सम्भवतः एटार्नी से ही उसने लिखवाया हो। पत्र में उसने निश्चित रूप से यह बात जाननी चाही थी कि कुमुदिनी उनके यहाँ वापस आयगी या नहीं। उसने लिखा था कि इस बात का उत्तर मिलने पर वह जैसा-कुछ उचित समझेगा, वैसा करेगा।

विप्रदास ने कुमुदिनी से पूछा, "कुमू, क्या तूने सब-कुछ अच्छी तरह सोच-समझ लिया है ?"

कुमुदिनी ने कहा, "मैंने सभी चिन्ताएँ समाप्त कर डाली हैं, इसलिए मेरा

मन आज निश्चिन्त है। मुझे लग रहा है, जैसी मैं यहाँ पहले थी अब भी वैसी ही हूँ—बीच में जो-कुछ भी घटा है, वह सब दुःस्वप्न था।"

"यदि तुझे जबरदस्ती ले जाने की चेष्टा की जायगी तो क्या तू जोर के साथ अपनी रक्षा कर सकेगी ?"

"यदि इससे तुम पर कोई आपत्ति आ पडने की संभावना न हो तो मैं अवश्य अपनी रक्षा कर सकूँगी।"

"इसीलिए तो कह रहा हूँ कि यदि अंत मे वापस जाना ही पड़ा तो जितनी ही देर से जाओगी उतना ही अशोभन होगा। उनके संबंध-सूत्र ने तुम्हारे मन को कही कुछ बाँधा है क्या ?"

"कही नहीं। मै केवल नवीन से, मोती की माँ से और हाबलू से स्नेह करती हूँ। पर वे लोग पराये घर के आदमियों की तरह लगते हैं।"

"देख कुमू, वे लोग उपद्रव मचायँगे। समाज के और कानून के जोर से उपद्रव मचाने की क्षमता उनमें है। इसीलिए उसकी उपेक्षा करनी होगी। लज्जा, संकोच, भय सब त्यागकर समाज के सामने खडा होना होगा। घर-बाहर, चारों ओर से निन्दा का तूफान उठेगा, उसके बीच सिर ऊँचा करके तुझे स्थिर रहना होगा।"

"भैया, इससे तुम्हारा अनिष्ट तो नहीं होगा ? अशांति तो नहीं होगी ?"

"तू अनिष्ट और अशांति किसे कहती है, कुमू ? तू यदि असम्मान में डूबी रहेगी तो उससे अधिक अनिष्ट मेरा और क्या होगा ? यदि मुझे इस बात का पता चल जाय कि जिस घर में तू है वह तेरा अपना घर नहीं बन पाया, जिस पर तेरा एकांत अधिकार होना चाहिए वह तेरा नितांत पराया है, तब जो अशांति मुझे होगी उससे अधिक की कल्पना भी नही कर सकता। बाबूजी तुझे बहुत चाहते थे, पर उन दिनों घर के मालिक लोग सभी झंझटों से दूर रहते थे। तुझे पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता है, यह बात उनके मन में कभी नहीं आई। तुझे प्रारंभ से मैने ही सिखाया है और तेरे व्यक्तित्व के विकास में साथ दिया है।

तेरे माँ-बाप की अपेक्षा मैं तेरे लिए किसी भी अंश में कम नहीं हूँ। व्यक्तित्व के विकास में सहायक होने का दायित्व क्या है, यह मैं आज समझ पा रहा हूँ। तू यदि दूसरी स्त्रियों की तरह होती तो कहीं किसी भी स्थिति में तेरे सामने रुकावट न आती। आज तेरी स्वतन्त्र प्रकृति को जहाँ कोई समझेगा नहीं, उसका आदर नहीं करेगा, वहाँ तेरे लिए नरक है। मै किस साहस से तुझे वहाँ निर्वासित किये रहूँगा ? तू यदि मेरा छोटा भाई होती तो तब जिस तरह मेरे

साथ रहती उसी तरह रह क्यों नहीं जाती ?"

भैया की छाती के पास पलंग के एक किनारे माथा टेककर, दूसरी ओर मुँह करके कुमुदिनी बोली, "पर क्या मैं तुम लोगों के लिए भार नहीं बन जाऊँगी ? क्या तुम ठीक कह रहे हो ?"

"कुमुदिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए विप्रदास बोला, "भार क्यों होगी बहन ? तुझसे बहुत काम करवाऊँगा। अपने सभी काम तुझे ही सौंप दूँगा। कोई भी प्राइवेट सेक्रेटरी वैसा काम नही कर सकेगा। तू मुझे वाद्य-वादन सुनायगी। मेरा घोडा तेरी ही देख-रेख मे रहेगा। इसके अलावा, तू जानती है कि मुझे सिखाना अच्छा लगता है। तेरे समान छात्रा मुझे कहाँ मिलेगी ? एक और काम करना होगा। मुझे बहुत दिनों से फारसी सीखने का शौक़ है। अकेले पढ़ना अच्छा नहीं लगता। तुझे साथ लेकर पढ़ूँगा। तू निश्चय ही आगे बढ़ जायगी। मैं तनिक भी ईर्ष्या नहीं करूँगा, देख लेना !"

सुन-सुनकर कुमुदिनी का मन पुलकित हो उठा। उसने सोचा, 'इससे अधिक जीवन का सुख और क्या हो सकता है !'

कुछ देर बाद विप्रदास फिर बोला, "और एक बात तुझसे कहे देता हूँ कुमू, जल्दी ही हम लोगों का समय बदलेगा। काल के साथ ही हम लोगो की चाल भी बदलेगी। हमें ग़रीबों की तरह रहना होगा। तब तू हम ग़रीबों का ऐश्वर्य बनकर रहेगी।"

कुमुदिनी की आँखें गीली हो आई। बोली, "मेरा यदि ऐसा भाग्य हो जाय तो मै जी उठूँगी।"

विप्रदास ने मधुसूदन की चिट्ठी हाथ में रख ली—कुछ उत्तर नहीं दिया।

५६

दो दिन बाद नवीन मोती की माँ और हाबलू को साथ लेकर आ पहुँचा। हाबलू ताई की गोद में मुँह छिपाकर रोने लगा। वह रोना किस बात के लिए था, यह स्पष्ट बैता सकना कठिन है—अतीत के लिए मान था, या वर्तमान के लिए अधिकार की माँग थी, या भविष्य की चिंता थी ?

कुमुदिनी ने हाबलू को गोद में कस लिया और फिर बोली, "गोपाल, संसार बड़ा ही कष्टकर है, यहाँ रोने का अंत कहाँ है ? क्या है मेरे पास, मैं ऐसा क्या

दे सकती हूँ जिससे किसी मानव-शिशु का रोना थम सके ? स्वयं रोकर दूसरे का रोना बंद करना चाहती हूँ, इससे अधिक शक्ति मुझमें नही है। जो प्यार स्वयं अपने को निछावर कर देता है, उसके अलावा और कुछ नही दे पाता, वही प्यार तुम लोगों ने पाया है । ताई सदा नही रहेगी, पर इतनी-सी बात याद रखना, याद रखना, याद रखना !" कहकर उसने हाबलू का गाल चूमा।

नवीन बोला, "भाभी, इस बार हम लोग रजबपुर में अपने पैतृक घर मे रहने के लिए जा रहे है । यहाँ की पाली समाप्त हुई ।

कुमुदिनी व्याकुल हो उठी । बोली, "मुझ अभागिनी ने आकर तुम लोगों को इस विपत्ति मे डाला।"

नवीन बोला, "बात ठीक इससे उल्टी है । बहुत दिनों से मन वहाँ जाने क लिए छटपटा रहा था । सामान बाँध-बूँधकर हम लोग तैयार ही बैठे थे तब तुम आईं हमारे घर । मन में घर का आदर्श रूप देखने की जो साध थी वह पूरी हो गई। पर विधाता को वह सह्य नहीं हुआ ।"

यह बात समझ में आ गई कि उस दिन मधुसूदन ने घर लौटकर बड़ा कांड खड़ा कर दिया था।

नवीन चाहे कुछ कहे, कुमुदिनी ने ही उनके परिवार को छिन्न-भिन्न कर दिया, मोती की माँ के मन में इस संबध मे तनिक भी संदेह नही था। और उस अपराध को वह सहज ही क्षमा करना नहीं चाहती थी। उसका यह मत था कि अब भी कुमुदिनी को वहाँ सिर नीचा करके वापस चला जाना चाहिए और उसके बाद चाहे कैसी ही लांछना और अपमान क्यों न सहना पडे, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए । गला कुछ कड़ा करके बोली, "तुमने क्या यह निश्चय कर लिया है कि तुम ससुराल क़तई नही जाओगी ?"

कुमुदिनी ने भी उसी कडेपन के साथ उत्तर दिया, "नही, मै नहीं जाऊँगी ।"

मोती की माँ ने पूछा, "तब तुम्हारी गति क्या होगी ?"

कुमुदिनी बोली, "पृथ्वी बहुत बड़ी है । यहाँ कही-न-कहीं तनिक जगह मेरे लिए हो ही जायगी। जीवन मे बहुत-कुछ नष्ट हो जाता है, पर फिर भी कुछ-न-कुछ शेष रह ही जाता है ।"

कुमुदिनी समझ गई थी कि मोती की माँ का मन उसकी ओर से बहुत कुछ हट गया है। उसने नवीन से पूछा, "लाला, तब तुम लोग अब क्या करोगे ?"

"नदी के किनारे थोड़ी-सी जमीन है । उससे कुछ भात की जुगत हो सकेगी और हवा भी खाने को मिलेगी ।"

मोती की माँ कुछ गरम होकर बोली, "नहीं, महाशय जी, नही। उसके लिए तुम्हे सोचना नहीं पड़ेगा। मिर्जापुर के अन्न-जल पर ही हमारा अधिकार और भरोसा है। उसे कोई छीन नहीं सकेगा। हम तो इतने बड़े सम्मानित व्यक्ति भी नही है। जेठजी डाँट बताकर निकाल देंगे तो तभी घर को छोड़कर चल देगे। वही आज नही तो कल हमें वापस बुलायँगे। तब हम लौट भी जायँगे। इस बीच हम धैर्य रख सकेंगे। यह मै बताए देती हूँ।"

नवीन तनिक खिन्न होकर बोला, "यह मै जानता हूँ, मँझली बहू, पर उस बात को लेकर घमंड नही करता। यदि पुनर्जन्म हो तो प्रार्थना है कि सम्मानित होकर ही पैदा हों। उसमें यदि अन्न-जल का टोटा भी पडे तो स्वीकार है।"

असल में नवीन कई बार भैया का आश्रय त्यागकर गाँव में खेती-बारी करने का संकल्प कर चुका था। मोती की माँ मुँह से डाँट बताती रहती थी। काम के समय अपनी बात से सहज में नही हटती थी और नवीन को बार-बार अटकाये रहती थी। वह जानती थी कि जेठजी के ऊपर उसका पूर्ण अधिकार है। जेठ तो ससुर के समकक्ष होते है। जेठजी अन्याय कर सकते है, पर उसे अपमान नही कहा जा सकता। कुमुदिनी के प्रति पति का व्यवहार चाहे कैसा ही क्यों न हो, वह पति के घर का तिरस्कार करे, यह बात उसे सृष्टि से निराली लगती थी।

सूचना मिली कि डॉक्टर आ पहुँचा है। कुमुदिनी बोली, "तनिक ठहर जाओ। डॉक्टर क्या कहता है, जाकर सुन आती हूँ।"

डॉक्टर ने कुमुदिनी को बताया कि नाड़ी ठीक नहीं चल रही है, रात में नींद कम आती है, शायद रोगी को ठीक तरह से आराम नही मिल पा रहा है।

कुमुदिनी अतिथियो के पास वापस चली आ रही थी। इतने में कालू ने आकर कहा, "एक बात बताये बिना रह नहीं पाता हूँ। जाल और जटिल हो उठा है; तुम यदि इस समय ससुराल वापस नहीं जाती हो तो विपत्ति और भी बढ़ जायगी। मैं तो कोई उपाय सोच नहीं पाता।"

कुमुदिनी चुपचाप खड़ी रही। कालू बोला, "तुम्हारे पति के यहाँ से बुलावा आया है। उसकी अवज्ञा करने की शक्ति क्या हम लोगों में है? हम तो एकदम उसकी मुट्ठी में हैं।"

कुमुदिनी ने बरामदे का रेलिंग कसकर पकड लिया और बोली, "मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ, कालू भैया! प्राण हाँफ रहे है, लगता है कि मौत को छोड़कर और कोई रास्ता मेरे लिए खुला नहीं है।" कहकर वह तेजी से चली गई।

जब कुमुदिनी भैया के कमरे में थी तब उस बीच क्षेमा बुआ के साथ मोती की माँ की कुछ बाते हो चुकी थी। विभिन्न लक्षणों से दोनों ही के मन मे यह संदेह होने लगा था कि कुमुदिनी गर्भवती है। मोती की माँ प्रसन्न हो उठी और मन-ही-मन बोली, माँ काली के आशीर्वाद से ऐसा ही हो। वह सोचने लगी कि इस बार मानिनी काबू मे आ जायगी। वह ससुराल की अवज्ञा करना चाहती है, पर यह तो नाडी की गाँठ है, केवल आँचल से आँचल को बाँधने वाली ग्रंथि नही। अब वह कैसे भागेगी!

कुमुदिनी को ओट में ले जाकर मोती की माँ ने अपने संदेह की बात उसे बताई। सुनकर कुमुदिनी के चेहरे का रंग उड़ गया। वह मुट्ठी बाँधती हुई बोली, "नहीं, नहीं, यह नही हो सकता, किसी भी हालत में नहीं।"

मोती की माँ खीझकर बोली, "क्यों नही हो सकता, भाई? तुम चाहे कितने ही बड़े घर की लड़की क्यों न होओ! केवल तुम्हारे ही लिए तो संसार का नियम नहीं उलट जायगा। तुम घोषाल-वंश के घर की बहू हो, क्या उस वंश के इष्ट देवता तुम्हें सहज में छुट्टी दे देंगे सोचती हो? वह भागने का रास्ता रोके खडे है।"

कुमुदिनी के साथ पति का थोडे समय का परिचय दिन-पर-दिन भीतर-ही-भीतर किस प्रकार विकृत रूप धारण करता चला जा रहा है, गर्भ की आशंका से यह बात उसके आगे स्पष्ट हो उठी। मनुष्य और मनुष्य के बीच जो भेद सबसे प्रबल है, उसके उपादान अक्सर बड़े ही सूक्ष्म होते हैं। उसके लक्षण भाषा में, हाव-भाव में, छोटे-छोटे संकेतो में, निश्चेष्ट अवस्था के अव्यक्त इंगितों में, गले के सुर मे, रुचि में, रीति में और जीवन-यात्रा के आदर्शों में अपना आभास देते है। मधुसूदन के भीतर कोई ऐसी बात थी जो कुमुदिनी को केवल चोट ही नहीं पहुँचाती थी, उसे अत्यन्त लज्जित भी करती थी। उसे वह अश्लील लगती थी। जीवन के आरंभ में मधुसूदन बहुत ही विकट ग़रीबी में दिन काटता था, इसलिए रुपये-पैसे के माहात्म्य के संबंध में वह बात-बात में जो मत प्रकट करता था उस गर्वोक्ति के भीतर उसकी रक्तगत दरिद्रता की हीनावस्था का आभास मिलता था। इस कलदार-पूजा की बात मधुसूदन बार-बार कुमुदिनी के पितृ-कुल पर छीटा कसने के लिए ही चलाता था। उस स्वभाव-गत हीनता, भाषा की कर्कशता और दंभ-भरी अशिष्टता से मधुसूदन के शरीर और मन की और उसके परिवार की आंतरिक अशोभनता से प्रतिदिन कुमुदिनी भीतर-ही-भीतर संकोच का अनुभव करती रहती थी। इन सब बातों को वह जितना ही अपने मन से दूर रखने की चेष्टा करती थी उतनी ही वे चारों ओर

कूड़े के ढेर की तरह जमा होती जाती थीं। वह अपने मन की घृणा से स्वयं ही प्राणपण से लडती रहती थी। पति-पूजा के कर्त्तव्य के संबंध में संस्कार को विशुद्ध रखने की दिशा में उसके प्रयासों का अन्त नहीं। पर इन सबके बावजूद उसकी कितनी बड़ी हार हुई, इसके पहले यह बात उसकी दृष्टि में नहीं आई थी। मधुसूदन के साथ उसके रक्त-मांस का बंधन अविच्छिन्न हो गया, इस बात की वीभत्सता से उसे विकट पीड़ा का अनुभव हुआ। अत्यन्त चिंतित होकर उसने मोती की माँ से पूछा, "तुमने यह बात निश्चित रूप से कैसे जान ली?"

मोती की माँ को क्रोध आ गया। सँभलकर बोली, "मै बच्चों की माँ हूँ, मैं नही जानूँगी तो कौन जानेगा? फिर भी अभी निश्चित रूप से कह सकने का समय नही हुआ है। किसी अच्छी दाई को बुलाकर दिखा लेना अच्छा है।"

नवीन, मोती की माँ और हाबलू के जाने का समय हो गया था। पर कुमुदिनी विधि के इस चरम अन्याय के अतिरिक्त और कोई भी बात नही सोच पा रही थी। इसलिए ससुराल के साथियो को उसने अत्यन्त साधारण रूप से विदा किया। जाते समय नवीन बोला, "भाभी, संसार मे सभी चीजों का अन्त होता है। पर तुम्हारी सेवा का जो अधिकार एक दिन सहसा पाया था वह इस बेढंगे रूप से एक दिन अचानक समाप्त हो सकता है, इसकी कल्पना भी मै नहीं कर सकता था। अवश्य ही फिर मिलना होगा।" कहकर नवीन ने प्रणाम किया। हाबलू रोने लगा, मोती की माँ अपने मुख के भाव को रूखा बनाए रही, एक शब्द भी नही बोली।

५७

खबर विप्रदास के कानों तक पहुँची। दाई आई, इसमें कोई संदेह न रहा कि कुमुदिनी गर्भवती है। मधुसूदन तक भी यह समाचार पहुँच गया। मधुसूदन ने धन चाहा था, वह पूरे परिमाण में ही इकट्ठा हो गया था और धन के उपयुक्त उपाधि भी उसे मिल गई थी। अब अपनी उस महिमा को भावी वंश में प्रतिष्ठित कर पाने पर उसका कर्त्तव्य चरम लक्ष्य तक पहुँच जायगा। यह सोचकर उसका मन जितना ही प्रसन्न हुआ उतना ही उसने अपराध का सारा दायित्व कुमुदिनी के ऊपर से हटाकर विप्रदास के ऊपर लाद दिया। उसके लिए उसने एक दूसरा पत्र लिया। उसे 'Whereas' से शुरू किया और समाप्त किया

'Your obedient servant मधुसूदन घोषाल' लिखकर। बीच में लिखा था I Shall have the painful necessity' आदि। इस प्रकार की धमकी की चिट्ठी का चटर्जी-वंश पर उलटा प्रभाव पड़ता था—विशेष रूप से क्षति की आशंका होने पर। विप्रदास ने वह पत्र कालू को दिखाया। उसका चेहरा लाल हो उठा। वह बोला, "इस प्रकार के पत्र से मेरे समान सामान्य मनुष्यो के शरीर में भी खून एकदम शाही ढंग से गरम हो उठता है। अदृश्य कोतवाल को पुकारकर कहने की इच्छा होती है कि उसका सिर उतार लो!"

दिन में विप्रदास लिखने-लिखाने के कामों मे व्यस्त रहा। उन सबको समाप्त कर चुकने के बाद शाम को उसने कुमुदिनी को अपने पास बुला लिया। कुमुदिनी आज दिन-भर भैया के पास नहीं गई थी। अपने को छिपाये फिर रही थी।

विप्रदास पलंग छोड़कर कुर्सी पर आकर बैठ गया। रोगी की तरह लेटे रहने से मन दुर्बल रहता है। सामने की ओर उसने कुमुदिनी के लिए एक छोटी कुर्सी रखवा दी थी। बत्ती कमरे के एक कोने में ओट मे रखी हुई थी। सिर के ऊपर एक बडा पंखा फर्राटे से चल रहा था। वैशाख के अन्त के समय के आकाश में उस समय भी गरमी जमी हुई थी, दखिनी हवा बीच-बीच मे तनिक श्वास छोड़कर पसीने से तर हो उठती थी। पेड़ो की पत्तियाँ एकांत ध्यान से कान लगाए रहने की तरह निस्तब्ध थी। समुद्र के मुहाने पर गंगा ने जहाँ नीले जल को फीका बना दिया है, अधकार का रूप ठीक वैसा ही दिखाई देता था। गोधूलि का अन्तिम प्रकाश अँधेरे की कालिमा के भीतर-ही-भीतर घुल रहा था। बाग का तालाब छाया में अदृश्य हो गया होता, पर एक चमकते हुए तारे का स्थिर प्रतिबिंब आकाश की उँगलियों के संकेत की तरह उसकी ओर ध्यान आकर्षित कर रहा था। पेड़ों के नीचे से होकर नौकर-चाकर क्षण-क्षण में लालटेन हाथ में लेकर आते-जाते थे। बीच-बीच में एक उल्लू बोल उठता था।

कुमुदिनी टाल-मटूल करती हुई कुछ देर करके आई। विप्रदास के निकट कुर्सी पर बैठते ही बोली, "भैया, मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। मेरी इच्छा यहाँ से कहीं चले जाने की हो रही है।"

विप्रदास बोला, "तू ग़लत समझ रही है, कुमू, तुझे अच्छा ही लगेगा। कुछ ही दिन बाद तेरा मन भर उठेगा।"

"पर ऐसा होने पर···" कहकर कुमुदिनी रुक गई।

"वह मैं जानता हूँ—अब तेरा बंधन तोड़ेगा कौन?"

"तब क्या मुझे जाना ही होगा, भैया?"

"तुझे मना कर सकूँ, यह अधिकार अब मुझे नहीं रहा। तेरी संतान को

घर से मैं अलग करूँ किस बूते पर ?"

कुमुदिनी बहुत देर तक चुप बैठी रही। विप्रदास भी कुछ नही बोला।

बाद में अत्यन्त कोमल स्वर में कुमुदिनी ने पूछा, "तब मुझे यहाँ से कब जाना होगा ?"

"कल ही। अब अधिक देर करना उचित न होगा।"

"भैया, एक बात शायद तुम समझ गए होगे —इस बार जब मैं वहाँ चली जाऊँगी, तब फिर कभी वे लोग मुझे तुम्हारे पास नही आने देंगे।"

"यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

"अच्छी बात है, तब यही सही। पर एक बात तुमसे कहे देती हूँ, तुम किसी दिन किसी भी कारण से उनके घर नहीं जा सकोगे। मैं जानती हूँ, भैया, कि तुमसे मिलने के लिए मेरे प्राण छटपटा उठेंगे, पर किसी भी हालत मे उन लोगो के यहाँ तुम्हें मैं नहीं देखना चाहती। ऐसा मैं सहन नहीं कर पाऊँगी।"

"नहीं कुमू, इसके लिए तुम्हे चिंतित होने की आवश्यकता नही रहेगी।"

"पर वे लोग तुम्हें संकट में डालने का प्रयत्न करेंगे।"

"वे लोग जो कुछ कर सकते हैं उसे कर चुकने के साथ ही उनकी क्षमता भी समाप्त हो जायगी। तभी मैं स्वाधीन हूँगा। उसे तू संकट क्यों कह रही है ?"

"भैया, उसी दिन तुम मुझे भी स्वाधीन बना देना। तब तक उनके बच्चे को मैं उन्हीं लोगों के हाथ सौंप सकूँगी। कुछ ऐसा भी इस संसार में है, जिसे संतान के लिए भी नही खोया जा सकता।"

"अच्छा, पहले बच्चा हो तो जाय, उसके बाद कहना।"

"तुम्हें विश्वास नहीं होता, पर माँ की बात तो तुम्हे याद है न ? उनकी तो इच्छा-मृत्यु हुई थी। उस दिन संसार में उन्हें अपनी जगह नहीं मिल रही थी, इसीलिए अपनी संतान को आसानी से त्यागकर वह मुक्त हो पाई थी। मनुष्य जब मुक्ति चाहता है तब कोई भी चीज़ उसे रोक नही सकती। मैं तुम्हारी ही बहन हूँ भैया, मैं मुक्ति चाहती हूँ। जिस दिन मैं बंधन काट सकूँगी उस दिन माँ मुझे आशीर्वाद देगी, यह मैं तुम्हें बताये देती हूँ।"

फिर काफ़ी देर तक दोनों चुप हो रहे। सहसा हवा का एक झोंका फुफकार उठा। तिपाई पर विप्रदास के पढ़ने की पुस्तक रखी थी, उसके पन्ने फर-फर करके उड़ने लगे। बाग़ से बेले की गंध आकर कमरे मे छा गई।

कुमुदिनी बोली, "यह न समझना कि उन लोगों ने जान-बूझकर मुझे दुःख दिया है। मेरा निर्माण ही इस ढंग से हुआ है कि वे लोग मुझे सुखी नहीं कर सकते। मैं भी तो उन्हें सुखी नही कर पाऊँगी। जो लोग उन्हे सुखी कर सकते

हैं उनकी जगह घेरने से एक-न-एक कठिनाई आती रहेगी। तब यह विडंबना क्यों ? समाज से अपराध की सारी लांछना मैं अकेली ही अपने ऊपर ओट लूँगी, उन लोगों को कलंक छू तक न सकेगा। पर एक दिन उन लोगों को मैं मुक्ति दे दूँगी और स्वय भी मुक्त हो जाऊँगी। मै निश्चय ही लौट आऊँगी, यह तुम देख लेना। स्वयं मिथ्या बनकर मैं झूठ के बीच में रह नही पाऊँगी। मैं उनकी बड़ी बहू हूँ, इस बात का क्या कोई अर्थ शेष रह जाता है यदि मै कुमुदिनी बनकर न रह पाऊँ ? भैया, तुम देवता पर विश्वास नही करते, पर मै करती हूँ। तीन महीने पहले जितना विश्वास करती थी आज उससे अधिक ही करती हूँ। आज दिन-भर मैं यही सोचती रही हूँ कि चारो ओर इतनी उलझने है, ऐसी उथल-पुथल मची हुई है, फिर भी इस जंजाल ने संसार को एकदम छा नही लिया है। इन सबको छोड़ देने पर भी चद्र-सूर्य से संसार का काम चल रहा है। और जहाँ वे भी छोड़ जाते है वहीं पर है वैकुण्ठ, वहीं विराजते है मेरे देवता। तुमसे ये सब बाते बताने में संकोच होता है—पर इसके वाद तो फिर कभी नहीं बता पाऊँगी, इसलिए आज सब-कुछ कह जाना चाहती हूँ। नहीं तो तुम मेरे लिए व्यर्थ में चितित रहोगे। सब-कुछ चले जाने पर भी कुछ शेष रहता है, यह बात मैं आज समझ पाई हूँ। वही मेरा अशेष है, वही मेरा देवता है। यदि यह बात मैं न समझ पाती तो यही तुम्हारे पैरों पर सिर पटककर मर जाती, उस जेल में न जाती। भैया, इस संसार मे तुम मेरे साथ हो, इसीलिए यह बात मैं समझ पाई हूँ।" यह कहकर कुमुदिनी कुर्सी पर से उठी और भैया के चरणों पर सिर रखकर पड़ी रही। रात बढ़ती चली जा रही थी। विप्रदास खिड़की से बाहर की ओर एकटक देखता हुआ सोचने लगा।

५८

दूसरे दिन सुबह विप्रदास ने कुमुदिनी को अपने पास बुलाया। कुमुदिनी ने आकर देखा कि वह पलँग पर बैठा हुआ है, एक इसराज उसकी गोद में पड़ा है और दूसरा बगल में लिटाकर रखा है। कुमुदिनी से बोला, "ले इसे, हम दोनों मिलकर बजायें।" तब भी थोड़ा अँधेरा शेष था। सारी रात बीतने पर हवा तनिक ठण्डी होकर पीपल के पत्तों के बीच में फुरफुरा रही थी। कौए बोलने लगे थे। दोनों ने भैरव राग में आलाप शुरू किया—गम्भीर, शांत और करुण।

सती-विरह के अचंचल होने पर महादेव ने उस प्रभात में जो ध्यान आरम्भ किया था, ठीक उसी तरह। बजाते-बजाते कृष्णचूड़ा फूल की डाल के भीतर अरुण आभा और अधिक उज्ज्वल हो उठी। बाग की दीवार के ऊपर सूर्य दिखाई दिया। नौकर दरवाज़े के पास तक आकर लौट गए। कमरा साफ न कर पाए। धूप कमरे के भीतर घुस आई। दरबान धीरे से अख़बार तिपाई के ऊपर रखकर चुपचाप लौट गया।

अंत में इसराज बजाना बंद करके विप्रदास बोला, "कुमू, तू समझती है कि मेरा कोई धर्म नहीं है। मेरा धर्म शब्दों द्वारा बताने पर समाप्त हो जाता है, इसीलिए उसके बारे मे मैं कुछ कहता नही, मैं गीत-सुर में उसका रूप देखता हूँ, उसमें गहन दुःख और अपार आनंद एक होकर मिल गए हैं, उसे मैं कोई नाम नहीं दे पाता। कुमू, तू तो आज चली जा रही है; अब फिर शायद मिलना न हो सकेगा, इसलिए आज सुबह तुझे उन सब बेसुरे और बेमेल तत्त्वों के उस पार आगे बढ़ाने में तेरी सहायता करने का प्रयास मैने किया है। 'शकुंतला' नाटक तूने पढ़ा है—जब शकुन्तला दुष्यत के घर की ओर चल पडी थी तब कण्व ने कुछ दूर तक उसका साथ दिया था। जिस लोक में उसे पार कराने के लिए वह निकले थे उसके बीच में था दुःख और अपमान। पर वहीं पर समाप्ति नहीं हो गई—उसे भी पार करके शकुन्तला अचंचल शांति के बीच में पहुँच गई। आज सुबह के भैरव राग के बीच शांति का वह सुर मेरे अंतःकरण के समस्त आशीर्वाद के साथ तुझे उस निर्मल परिपूर्णता की ओर आगे बढ़ावे; वह परिपूर्णता तेरे अंतर में और बाहर तेरे सारे दुःख और अपमान को बहा ले जाय।"

कुमुदिनी कुछ न बोली। विप्रदास के पैरों पर सिर रखकर उसने उसे प्रणाम किया। कुछ देर तक वह खिड़की के बाहर धूप की ओर देखती हुई खड़ी रही। उसके बाद बोली, "भैया, तुम्हारे लिए चाय और रोटी तैयार करके ले आती हूँ।"

मधुसूदन ने आज ज्योतिषी को बुलाकर शुभ यात्रा का लग्न ठीक कर रखा था। सबेरे दस बजने के तनिक बाद। ठीक समय पर ज़री का काम की हुई लाल बनात से ढकी पालकी दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई। बड़े समारोह के साथ कुमुदिनी को मिर्ज़ापुर वाले महल में ले जाया गया। आज वहाँ नौबत बज रही थी और ब्राह्मण-भोज का आयोजन चल रहा था।

मानिक बार्ली का प्याला हाथ में लेकर विप्रदास के कमरे में आया। आज विप्रदास पलँग पर लेटा नहीं था, खिड़की के पास कुर्सी खींचकर स्थिर बैठा हुआ था। जब बार्ली आई तब उसने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। नौकर

लौट गया। तब क्षेमा बुआ पथ्य लेकर आईं और विप्रदास के कंधे पर हाथ रखकर बोली, "विपू, दिन चढ़ आया है, बेटा!"

विप्रदास धीरे से कुर्सी पर से उठकर पलँग पर लेट गया। क्षेमा बुआ चाहती थी कि वे लोग कैसी धूम-धाम से आदर के साथ कुमुदिनी को ले गए, इसका विस्तृत ब्योरा विप्रदास को सुनाकर कुछ देर बातचीत करें। पर विप्रदास का गम्भीर मौनभाव देखकर उन्हें कुछ भी बताने का साहस न हुआ। उन्हें लगा कि विप्रदास की आँखों के सामने एक अतलस्पर्शी शून्यता नाच रही थी।

विप्रदास ने जब कहा, "बुआ, तनिक कालू को भेज दो," तब यह साधारण बात भी जैसे अदृष्ट की एक विराट् निःशब्द छाया के भीतर से गूँज उठी। बुआ सिहर उठी।

कालू जब आया तब विप्रदास ने उसके हाथ में एक पत्र दिया। विलायत से आया हुआ पत्र था, सुबोध के हाथ का लिखा हुआ। उसने लिखा था, यदि वह 'बार' का 'डिनर' समाप्त किये बिना ही स्वदेश चला आयगा तो उसे फिर लौट जाना पड़ेगा। इसलिए अंतिम 'डिनर' समाप्त करके माघ-फागुन में देश को लौटना अधिक सुविधाजनक रहेगा, उससे व्यर्थ के खर्च की आशंका भी नहीं रहेगी। उसकी यह धारणा थी कि विषय-संपत्ति-संबंधी आवश्यक काम तब तक के लिए रुका रह सकता है।

आज के दिन विषय-संपत्ति से संबंधित बातों से विप्रदास को कष्ट देने की तनिक भी इच्छा कालू को नहीं हुई। उसने कहा, "भैया, अभी रुपया वापस माँगने की कोई बात नहीं उठी है। अभी कुछ दिन और यदि हम सावधानी से चलें और किसी को न उचकायें तो जल्दी ही किसी संकट की संभावना नहीं है। जो भी हो, तुम तनिक भी चिंता न करो!"

विप्रदास ने कहा, "मुझे कोई चिंता नहीं है, कालू! लेश-मात्र भी नहीं।"

विप्रदास का चिंतित होना कालू को अच्छा नही लगता था, पर इस सीमा तक निश्चिन्त रहना उसे और भी बुरा लगता था।

विप्रदास अखबार उठाकर पढ़ने लगा। कालू समझ गया कि इस संबंध में किसी प्रकार की आलोचना करने की तनिक भी इच्छा उसे नहीं है। और दिन काम की बात समाप्त होते ही कालू चला जाता था, पर आज वह चुपचाप बैठा ही रहा। उसे और कोई दूसरी बात चलाने की इच्छा होती थी। वह विप्रदास की किसी-न-किसी सेवा में संलग्न रहना चाहता था। उसने पूछा, "बाहर की ओर की वह खिड़की बंद कर दूँ क्या? धूप आ रही है।"

विप्रदास ने हाथ हिलाकर जता दिया कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

कालूं फिर भी बैठा ही रहा। भैया के कमरे में आज कुमू नहीं है, यह शून्यता जैसे उसकी छाती को जकड़े हुए थी। सहसा उसने पलँग के नीचे टाम कुत्ते को फफक-फफककर रोते सुना। कुमुदिनी को जाते उसने देखा था, कुछ बात उसके मन में थी, पर ठीक से समझ नहीं पा रहा था।

●

'योगायोग' ग्रन्थ-रूप में बँगला संवत् १३३६ के आषाढ़ महीने में प्रकाशित हुआ था।

'विचित्रा' पत्रिका में 'योगायोग' धारावाहिक रूप से (आश्विन १३३४—चैत्र १३३५ बँगला संवत्) प्रकाशित हुआ था। पहले दो अंकों में उपन्यास 'तिन पुरुष' नाम से छपा था। तीसरे अंक मे कवि ने उसका नाम बदलकर 'योगायोग' कर दिया। इस सम्बन्ध में 'विचित्रा' में जो निवेदन प्रकाशित हुआ था, वह नीचे दिया जा रहा है—

नामान्तर

'तिन पुरुष' नाम से 'विचित्रा' में मेरी जो कहानी निकल रही है, उसका नाम ज्यों-का-त्यों रहे, यह ज़रूरी नही है। मैने तय किया है कि नाम पक्का होने के पहले ही बदल डालूँ। पाठकों की कचहरी में इसका कारण प्रस्तुत करता हूँ।

नवजात बालक-बालिकाओं के नाम रख देने के लिए मेरे पास अनुरोध आते रहते है, अवकाश के अनुसार उन अनुरोधों का पालन भी करता रहता हूँ। क्योंकि इसमे कोई बोझ नही पड़ता। जहाँ तक व्यक्ति का संबंध है, नाम मनुष्य का विशेषण नहीं होता, संबोधन मात्र होता है। लौकी के डण्ठल से लौकी के गुण-दोष कोई नहीं परखता, वह तो पकड़ने की सुविधा के लिए है। जिसे मैंने सुशील नाम दिया है, उसके शील के बारे में मेरी कोई जवाबदेही नहीं है। सुशील के पते पर यदि पत्र भेजा जाय, तो उस शब्द के प्रयोग के औचित्य-अनौचित्य पर डाक-हरकारा अखबार में लिखा-पढी नहीं करता, सही ठिकाने पर चिट्ठी पहुँचा देता है।

व्यक्ति का नाम संबोधन के लिए होता है, विषय का नाम स्वभाव-निर्देश के लिए। मनुष्य को भी जब हम व्यक्ति रूप में नहीं, विषय रूप में देखते है, तब उसके गुण अथवा उसकी अवस्था के अनुसार उसे उपाधि देते हैं—किसी को 'बड़ीबहू' कहते हैं, किसी को 'मास्टर साहब'।

साहित्य में जब नामकरण का मुहूर्त आता है, तब हम दुविधा में पड़ जाते हैं। साहित्य-रचना का स्वभाव विषयगत है अथवा व्यक्तिगत। पहली समस्या यही है। विज्ञान-शास्त्र में तो विषय ही सर्वेसर्वा है, वहाँ गुण-धर्म का परिचय ही एक-मात्र परिचय है। मनोविज्ञान की पुस्तक के माथे पर यदि लिखा मिले : 'पत्नी के संबंध में पति की ईर्ष्या' तो सोच लूँगा कि विषय की व्याख्या के कारण नाम सार्थक है। लेकिन यही नाम अगर 'ओथलो' नाटक पर लिखा मिलता तो मैं पसन्द न कर पाता। क्योंकि यहाँ विषय प्रधान नहीं है, प्रधान है

नाटक। अर्थात् कथा-वस्तु, रचना-शिल्प, चरित्र-चित्रण, भाषा, छन्द, व्यंजना, नाट्य-रस आदि के मेल से निर्मित एक समग्र वस्तु। इसी को व्यक्तित्व कहा जा सकता है। विषय की ओर से हमें सूचना मिलती है, व्यक्ति की ओर से हमें उसका आत्मप्रकाश-जनित रस मिलता है। विषय को विशेषण के द्वारा मन में बसाया जाता है, व्यक्ति को संबोधन के द्वारा याद किया जाता है।

मैं एक ऐसी चीज का सहारा लेकर कहानी लिखने बैठ गया जिसे विषय कहा जा सकता है। अगर मूर्ति गढता तो मिट्टी का ढेर लेकर बैठना पडता। और अगर शीर्षक मे 'मिट्टी' शब्द से उसका निर्देश करता तो विज्ञान अथवा तत्त्वज्ञान को कोई आपत्ति न होती। विज्ञान जब कुंडल की उपेक्षा करके उसके स्वर्ण-तत्त्व की चर्चा करने लगता है, तब हम उसे प्रणाम करते है। लेकिन जब कन्या के कुंडल पर वर उसी प्रकार की चर्चा को प्राधान्य देने लगता है, तब उसे कहते है बर्बर। रस-शास्त्र में मूर्ति मिट्टी से बढ़कर है, कहानी भी विषय की अपेक्षा बडी होती है। इसीलिए विषय को ही शिरोधार्य करके कहानी का नाम रखने की ओर मेरी प्रवृत्ति नही होती। सच तो यह है कि रस-सृष्टि में वैषयिकता को मुख्य स्थान देना उचित नहीं होता। जो पाठक वैषयिक प्रकृति के है, उनकी माँग के बल पर यदि साहित्य के क्षेत्र में बाजार खोल डाला जाय तो दुःख की बात होगी। बाजार का मालिक तो विषय-बुद्धि-प्रधान विज्ञान है।

इधर सम्पादक जी आकर कहते है, संसार में नाम और रूप दोनों ही अत्यन्त आवश्यक हैं। मैंने सोचकर देखा, हम रूप का नाम रखते है, वस्तु की संज्ञा। संदेश[1] जहाँ रूप है वहाँ उसे 'नीरव चक्र' कहते है, जहाँ वस्तु है वहाँ मिष्टान्न। संपादक जी की संज्ञा है 'संपादक', यहाँ अर्थ का मिलान करके अदालत में हलफ उठाकर कह सकता हूँ कि शब्द के साथ विषय का सोलह आनों मेल बैठता है। लेकिन जहाँ वे विषय नही हैं, रूप हैं—अर्थात् स्वतन्त्र हैं और एक-मात्र हैं—वहाँ कोई एक संज्ञा देकर उन्हे बाँध देना असंभव है। उसके लिए है नाम। शत्रु-मित्र कोई भी उनके नाम से मिलान करके उनकी जाँच नही करता। माता-पिता यदि उनका नाम 'संपादक' रख देते तो अपना नाम सार्थक करने के लिए उन्हे संपादक बनने की कोई जरूरत नहीं होती।

कहानी भी एक तरह से रूप ही है, अंग्रेजी में जिसे कहते हैं, क्रियेशन। इसीलिए मैं कहता हूँ कि कहानी का ऐसा नाम रखना उचित नहीं है जो संज्ञा हो, अर्थात् जिसमें रूप की बजाय वस्तु का निर्देश हो। 'विषवृक्ष' नाम पर मुझे

---

१. एक बंगाली मिठाई।

आपत्ति है। 'कृष्णकान्तेर विल' नाम में कोई दोष नहीं। क्योंकि उस नाम के द्वारा कहानी की कोई व्याख्या नही की गई है।

सम्पादकजी ने कहानी के नाम के लिए जब प्यादा भेजा तब झट से 'तिन पुरुष'[१] नाम रखकर उसे विदा कर दिया गया। अगले ही क्षण से वह नाम कहानी के पल्ले से बँधकर कानों-कान क्षण-प्रतिक्षण कहने लगा, 'यदेतत् अर्थ मम तदस्तु रूपं तव।' तुम्हें मेरे साथ पूरी तरह हिल-मिलकर चलना होगा। छायेवानुगतास्वच्छा इत्यादि। कहानी ने पूछा, इसका मतलब ? नाम बोला, "आज से वाक्यों में भावों में मुझे प्रमाणित करते चलना ही तुम्हारा धर्म है।" कहानी ने कहा, "रजिस्ट्री के खाते में मालिक के हुकुम से मैंने राजीनामे पर सही ज़रूर किया है, लेकिन आज मै हज़ारों पाठकों के सामने खड़ी होकर उससे इन्कार करना चाहती हूँ।

मालिक कहते है, कहानी 'तिन पुरुष' के तीन तोरण वाली सड़क से चले, यह तो मेरी बस एक खामखयाली थी। यह गमन किसी बात को सिद्ध करने के लिए नही था, विशुद्ध भ्रमण के ही लिए था। अतएव इस नाम को छोड़ देने से मेरी कहानी के स्वत्व की कोई भी दलील कमज़ोर नही पड़ेगी।

अत: सबके सामने आज मेरी कहानी अपना नाम खोने बैठी है। हम त्रिवाचा में विश्वास करते हैं, 'विचित्रा' के पन्नों में दो-बार नामोच्चार हो चुका है। तीसरी बार के मौके पर मुँह बंद किया जा रहा है।

और एक नाम ठहराया है। वह इतना निर्विशेष है कि कहानी मात्र पर बिना किसी सोच-विचार के ठीक बैठ सकता है। सरकारी चीज़ों की ही भाँति उस नाम में कोई चमत्कारिता नहीं है। न सही। जापान में देखा है, तलवार के फल पर कारीगर अपने कारु-शिल्प का रस ढाल देता है, पर म्यान को नितान्त निरलंकार रहने देता है। कहानी स्वयं ही अपना परिचय देने का साहस कर सके, नाम को ऊँचे सुर में घोषणा करने के लिए आगे-आगे न चलाए—यही कामना है।

'तिन पुरुष' नाम हटाकर अब अपनी कहानी का नाम रख दिया है 'योगायोग'।

४ अक्तूबर, १९२७, विचित्रा, अग्रहायण १३१४।
'किन्ता' जहाज। स्याम-पथ पर।